भारतीय ग्रन्थमाला — संख्या १.

भारतीय शासन

'राजनीति ही राष्ट्रों का जीवन है'
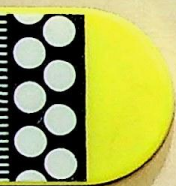
भारतीय ग्रन्थ माला — संख्या १.

भारतीय शासन

(सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार संशोधित और परिवर्द्धित)

लेखक

नागरिक शिक्षा, भारतीय राष्ट्र निर्माण, नागरिक शास्त्र, भारतीय जागृति, और भारतीय राजस्व, आदि के

रचयिता,

भगवानदास केला

प्रकाशक

व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, बृन्दावन

मु[illegible]

त्रिभुवननाथ शर्मा, जमुना प्रिन्टिंग वर्क्स, मथुरा।

सातवां संस्करण १२५० प्रति | सन् १९३६ ई० | मूल्य सवा रुपया
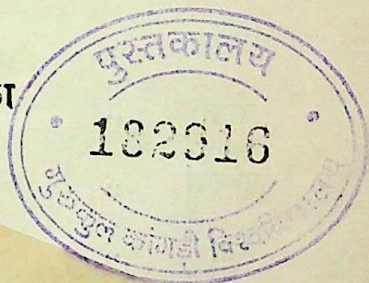
भारतीय शासन के संस्करण

पहला संस्करण	१००० प्रतियां	सन् १६१५ ई०	
दूसरा ,,	१००० ,,	,, १६१६ ,,	
तीसरा ,,	१००० ,,	,, १६२२ ,,	
चौथा ,,	१००० ,,	,, १६२५ ,,	
पांचवां ,,	१२०० ,,	,, १६२७ ,,	
छटा ,,	१२५० ,,	,, १६२६ ,,	
सातवां ,,	१२५० ,,	,, १६३६ ,,	

'भारतीय शासन' के सातवें संस्करण की

प्रस्तावना

गत बीस वर्ष में इस पुस्तक के छः संस्करण समाप्त हुए, अब यह सातवां छपा है; तथा सन् १६२६ ई० से इस का एक सरल और छोटा संस्करण 'सरल भारतीय शासन' भी पाठकों के सामने है। यह प्रचार इस दृष्टि से तो बुरा नहीं कि हमारे पास इसकी सर्वसाधारण में विज्ञप्ति करने के साधन नहीं थे (और न अब ही हैं); तथापि जब यह विचार किया जाता है कि यह पुस्तक विविध शिक्षा विभागों द्वारा पसन्द की जाचुकी है, और देश में राजनैतिक जागृति दिन दिन बढ़ती जारही है, तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि अभी प्रचार की बहुत गुँजायश है।

भारतवर्ष के उज्वल भविष्य में विश्वास रखते हुए, हम उस समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब स्वराज्य प्राप्ति के लिये एवं प्राप्त स्वराज्य की सुरक्षा के लिये, प्रत्येक भारत-सन्तान स्वदेश के शासन यन्त्र से भली भांति परिचित रहना अपना धर्म समझेगी। तब नागरिकों की भिन्न भिन्न रुचि और योग्यता के अनुसार, राष्ट्र-भाषा की ऐसी पुस्तक के कई प्रकार के, और कई कई हज़ार प्रतियों के, नये नये संस्करणों की मांग, प्रतिवर्ष ही, होगी, वह समय कब आयेगा ? यह राजनैतिक शिक्षा प्रेमियों के उद्योग और सहानुभूति पर निर्भर है।

हमने सोचा था कि इस पुस्तक का यह सातवां संस्करण हम सन् १६३० ई० में ही प्रकाशित कर सकेंगे; परन्तु नया शासन विधान बनने में कल्पनातीत समय लगा; कमीशन, कमेटियों, और गोलमेज़ परिषदों की सुदीर्घ शृङ्खला बनगयी, कभी एक की रिपोर्ट छपी, कभी दूसरी की; अब इस पर विचार होता है, अब उसपर। अन्ततः विविध मंज़िलें समाप्त होकर गत वर्ष यह विधान बना। तभी से हम भारतीय शासन का नया संस्करण करने में लग गये। उसे जल्दी से जल्दी हिन्दी पाठकों की सेवा में उपस्थित करना

हमने अपना कर्तव्य समझा। परन्तु साधनों की कमी थी, उधर और भी कई प्रकार की बाधाएं आयीं। जैसे तैसे हम प्रयाग गये, श्री० मित्रवर प्रोफ़ेसर दयाशंकरजी दुबे एम. ए. से बहुमूल्य सहायता ली, कुछ विषयों पर अन्य सज्जनों से भी विचार विनिमय किया, और जो कुछ साहित्य हिन्दी अंगरेज़ी का इस विषय पर मिलसका, उसका अवलोकन किया। फलस्वरूप, जैसी भी बन सकी. यह कृति पाठकों के सामने है। जिन सज्जनों से हमें इस कार्य में किसी भी प्रकार सहायता मिली है, उनके हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

इस संस्करण में विधान सम्बन्धी अधिक से अधिक बातें देने के लिये, हमने पहले के कई गौण विषय इससे पृथक् कर दिये हैं। नवीन विधान की एक ख़ास विशेषता संघ शासन की योजना है, इस पर पर्याप्त प्रकाश डालना आवश्यक था। दूसरे खंड में यही कार्य किया गया है। पुस्तक का आकार यथा-सम्भव संक्षिप्त रखने के लिये दूसरे खण्ड की जो बातें पहले खण्ड के समान थी, उनको दोहराया नहीं गया है, वरन् उनके प्रसंग में प्रथम खण्ड के सम्बन्धित पृष्ठों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया है। फिर भी पुस्तक पहले की अपेक्षा काफ़ी बड़ी होगयी है।

स्वराज्य प्रेमी पाठकों के लिये आवश्यक है कि न केवल यह ज्ञान प्राप्त करें कि नवीन विधान में क्या है, वरन् यह भी जानलें कि विधान कैसा है, वह कहां तक देश की आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने वाला है; यह हमें राजनैतिक दृष्टि से आगे बढ़ाता है, या पीछे हटाता है; इसमें क्या सुधार होने चाहिये। आशा है, ब्रिटिश भारत एवं देशी राज्यों के पाठकों को इस पुस्तक में इस विषय की यथेष्ट विचार-सामग्री मिलेगी।

विनीत

भगवानदास केला

❀ भूमिका ❀

स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है, और उसे प्राप्त करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को तन मन धन से प्रयत्न करना चाहिये। किसी देश के शासन यंत्र को भली भांति समझे बिना, कोई व्यक्ति उसके राजनैतिक उत्थान में पूरी तरह भाग नहीं ले सकता। अतः भारतवर्ष में राजनैतिक विषयों के ज्ञान का प्रचार करने की बहुत आवश्यकता है। जब भारतीय जनता देश की वर्तमान शासन पद्धति की त्रुटियों को अच्छी तरह समझने लगेगी और संगठित होकर दिलोजान से, उनको हटाने की तथा स्वराज्य प्राप्त करने की, कोशिश करेगी तो सफलता अवश्य मिलेगी।

बड़े हर्ष की बात है कि राष्ट्र भाषा हिन्दी में भारतीय शासन पद्धति पर तीन चार अच्छी पुस्तकें प्रकाशित होगयी हैं। मेरे मित्र श्री० भगवान दासजी केला की इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसके केवल पौने तीन सौ पृष्ठों में ही भारतवर्ष के शासन से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः सब बातों का स्थूल ज्ञान, सरल भाषा में दे दिया गया है। मैं इस पुस्तक के किसी समालोचक के इस कथन से सहमत हूं कि वास्तव में यह पुस्तक साधारण लोगों के लिये राजनैतिक नेता, विद्यार्थियों के लिये शिक्षक, राजनीतिज्ञों के लिये ज्ञान वर्द्धक, और सम्पादकों के लिये सुवर्ण अङ्कों का सन्दूक है।

इस पुस्तक की लोक-प्रियता का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि बड़ौदा और गवालियर राज्य, तथा संयुक्त प्रान्त और पंजाब के शिक्षा विभागों द्वारा यह पुस्तक स्कूलों के पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत होगयी है। मध्य प्रान्त में तो इसका खूब ही प्रचार हुआ है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, गुरुकुल कांगड़ी,

प्रभृति कितनी ही राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की पाठ विधि में भी इसे स्थान मिला हुआ है, और बिना विशेष प्रयत्न किये, बीस वर्ष के अन्दर ही इसके छः संस्करण समाप्त हो चुके और यह सातवां संस्करण पाठकों के सामने है।

इस संस्करण में सन् १९३५ ई० के विधान की शासन सम्बन्धी प्रायः सब महत्व-पूर्ण बातों का समावेश कर दिया गया है। इसके लिये पुस्तक में कई नये परिच्छेद जोड़ने पड़े हैं, और आधी से अधिक पुस्तक को फिर से लिखना पड़ा है। वर्तमान शासन विधान बहुत पेचीदा है। वह अनेक बारीकियों से भरा है। अँगरेज़ी का साधारण ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों को उसका समझना कठिन है। चार सौ से अधिक पृष्ठों में दिये हुए विधान की महत्वपूर्ण बातों को आलोचना-सहित एक छोटी सी पुस्तक में लाना आसान काम नहीं है। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि श्री० केलाजी ने इस कार्य को सफलता-पूर्वक कर दिया है।

राजनैतिक शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा का प्रधान अङ्ग है; और भारतीय शासन पद्धति के ज्ञान बिना भारतीय विद्यार्थियों की शिक्षा अपूर्ण है। इस लिये देशी राज्यों, राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं के संचालकों, तथा म्युनिसिपैलिटियों और ज़िला-बोर्डों को चाहिये कि अपने अपने विद्यालयों की पाठ-विधि में इस पुस्तक को अवश्य स्थान दें। प्रत्येक स्वराज्य प्रेमी व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इस पुस्तक का स्वयम् अध्ययन करे और सर्व साधारण में इसका प्रचार करने में यथा शक्ति सहयोग करे।

दयाशङ्कर दुबे,
एम० ए०, एल-एल० बी०
अध्यापक, अर्थ शास्त्र विभाग,
प्रयाग विश्व विद्यालय

दारागंज,
प्रयाग
ता० १-१-३६

' भारतीय शासन ' सम्बन्धी

सहायक साहित्य

भारतीय शासन का विषय महान है। इस पुस्तक में उसका संक्षेप में ही परिचय दिया गया है। जो पाठक इस विषय में विशेष अनुराग रखते हों, उन्हें चाहिये कि इस विषय सम्बन्धी अन्य उपयोगी पुस्तकों तथा सामयिक पत्र पत्रिकाओं का भी अवलोकन करें। साथ ही जिन्हें यह पुस्तक कुछ कठिन प्रतीत होती हो, उन्हें पहले इस विषय की सरल पुस्तकें पढ़नी चाहियें। पाठकों तथा अध्यापकों के लिए हम यहां यह बतलाते हैं कि इस विषय में, हमारी कौन-कौनसी पुस्तक कहां तक सहायक हो सकती है।

माध्यमिक श्रेणियों (मिडल क्लासों) के विद्यार्थियों को, तथा साधारण योग्यता वाले पाठकों को सबसे पहले हमारी (१) **नागरिक शिक्षा** (Elementary Civics) पढ़ना उपयोगी होगा। इस पुस्तक में सरकार तथा उसके द्वारा किये जाने वाले विविध कार्यों का परिचय मिलेगा।

इसके पश्चात् पाठकों को हमारी (२) **' सरल भारतीय शासन '** पढ़ना उचित है, इसमें भारतीय शासन पद्धति वर्णनात्मक रूप से, सरल भाषा में समझायी गयी है। इन दो पुस्तकों के बाद पाठक इस पुस्तक (भारतीय शासन) से अधिक लाभ उठा सकते हैं।

शासन कार्य में मत का क्या महत्व है, मतदाताओं, (निर्वाचकों) और उम्मेदवारों का क्या उत्तरदायित्व है, उन्हें किस प्रकार अपने महान कर्तव्य का पालन करना चाहिये, आदि विषयों के विचार के लिए हमारी (३) **' निर्वाचन नियम '** (Election Guide) पुस्तक देखनी चाहिये।

भारत सरकार, प्रान्तिक सरकारों, म्युनिसिपैलिटियों और ज़िला-बोर्डों के कुल मिलाकर लगभग दो सौ करोड़ रुपये वार्षिक आय व्यय का ज्ञान (४) **'भारतीय राजस्व'** (Indian Finance) में मिलेगा।

राष्ट्र किसे कहते हैं, वह किस प्रकार, किन किन साधनों से बनता है, भारतीय राष्ट्र किस दशा में है, उसके सम्यक् निर्माण के लिए अन्यान्य बातों में स्वाधीनता की कितनी आवश्यकता है, यह बात जानने के लिए (५) **'भारतीय राष्ट्र निर्माण'** (Indian Nation Building) का अध्ययन किया जाना चाहिये।

इस अधिकार युग में हमें क्या क्या नागरिक अधिकार प्राप्त होने चाहिये, जानमाल की रक्षा, भाषण स्वातन्त्र्य, लेखन और प्रकाशन की स्वतन्त्रता, सामाजिक धार्मिक और आर्थिक स्वतन्त्रता आदि का क्या आशय है, हमें किस प्रकार इनकी प्राप्ति तथा सदुपयोग का प्रयत्न करना चाहिये, हमारे अपने प्रति तथा दूसरों के प्रति क्या कर्तव्य हैं, आदि विषयों पर विचार करने के वास्ते (६) **'नागरिक शास्त्र'** (Citizen ship) से सहायता लीजिये।

वर्तमान समय में भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत है, इस देश की शासन पद्धति इस साम्राज्य के स्वाधीन उपनिवेशों के ढंग पर चलाने का प्रयत्न हो रहा है। अतः इस सम्बन्ध में, इस पुस्तक में एक परिच्छेद दिया गया है। इस विषय का स्वतन्त्र विवेचन, (७) **'ब्रिटिश साम्राज्य शासन'** पुस्तक में किया गया है।

प्रथम संस्करण की प्रस्तावना का कुछ अंश

शासन कार्य यदि कठिन है तो इस विषय को समझाने के अभिप्राय से कोई पुस्तक लिखना भी सहज नहीं । यह विचार हमें पहिले भी था, और कार्य आरम्भ करने पर तो इसकी गुरुता और भी अच्छी तरह ध्यान में आगयी । परन्तु जिस भाषा का प्रचार आज दिन भारतवर्ष की अन्य किसी भी भाषा से अधिक है, एवं जो हमारे राष्ट्र-भाषा होने का सच्चा दम भर सकती है, उस परम हितकारिणी हिन्दी भाषा में शासन जैसे महत्व के विषय की मोटी मोटी बातों का समावेश रखने वाली पुस्तकों के न मिलने का दुख, जब हमें असहनीय होचला तो अल्प योग्यता और क्षुद्र शक्ति रखने पर भी, हम इस पुस्तक को लिखने के लिये वाध्य होगये । नहीं मालूम, कितने पाठक हमारी कठिनाइयों का अनुमान कर सकेंगे । × × × हम जानते हैं कि इस पुस्तक के कई एक विषयों पर पृथक् पृथक् स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे जासकते हैं, परन्तु यह कार्य योग्यतर पात्रों के लिये छोड़, हमने एक ही स्थान पर सब के दिग्दर्शन मात्र से सन्तोष किया है ।* × × × प्रस्तुत पुस्तक से हमारा उद्देश्य यहहै कि हमारे भारतवासी बन्धु अपनी मातृ भूमि के उत्तम नागरिक बनें, वे जानलें कि उनके देश के राज्य प्रबन्ध की कल किस प्रकार चलती है, और वे उसमें क्या भाग ले सकते हैं ।

ब्यावर,
जुलाई, सन् १९१५ ई०

भगवानदास केला.

---

* अब हमारी, सरकारी आय व्यय पर 'भारतीय राजस्व', और चुनाव के सम्बन्ध में 'निर्वाचन नियम', नागरिकों के साधारण ज्ञान के लिये 'नागरिक शिक्षा', नागरिकों के कर्तव्य और अधिकारों पर 'नागरिक शास्त्र', और ब्रिटिश साम्राज्य के राज्य प्रबन्ध पर 'ब्रिटिश साम्राज्य शासन' पुस्तकें छप चुकी हैं ।

भूल सुधार

पृष्ठ ४४—पांचवीं पंक्ति में '१०००' की जगह '२०००' होना चाहिये।

पृष्ठ ११४–अन्तिम पंक्ति में 'इन अन्य मदों के' की जगह 'उपर्युक्त (क) से (ज) तक की मदों को छोड़कर अन्य मदों के' होना चाहिये।

विषय सूची

प्रथम खण्ड

दूसरा खण्ड

❀ भारतीय शासन ❀

प्रथम खण्ड

पहला परिच्छेद

विषय प्रवेश

शासन पद्धति—उन्नत समाज वाले देशों में एक ऐसी संस्था होती है जो वहां के निवासियों की सामुहिक उन्नति का ध्यान रखते हुए आवश्यक नियम बनाए और उन नियमों का पालन कराए, देश के भीतर शान्ति रखे, तथा उसकी विदेशियों के आक्रमण से रक्षा करे। इस संस्था को सरकार (गवर्मेंट) कहते हैं। सरकार कुछ ऐसे कार्यों का भी सम्पादन करती है, जिन को आदमी अलग अलग न कर सकें, या जिन के लिए बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता हो।

उपर्युक्त विविध कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए तीन प्रकार के अधिकारियों की आवश्यकता होती है:—(१) व्यवस्था अर्थात् विविध विषयों के क़ानून बनाने वाले, (२) शासन अर्थात् क़ानूनों पर अमल कराने, उनका अच्छी तरह पालन कराने वाले, और (३) न्याय अर्थात् क़ानूनी अधिकारों की रक्षा करने, और

कानून-भंग के अपराधियों को दंड देने वाले। कहीं कहीं ये तीन प्रकार के अधिकारी बिल्कुल पृथक् पृथक् होते हैं, और कहीं कहीं, इनमें से दो या तीनों के कार्य एक ही प्रकार के अधिकारियों के सुपुर्द होते हैं। अस्तु, इन तीन प्रकार के अधिकारियों के संगठन और कार्य प्रणाली आदि के नियम-संग्रह को शासन पद्धति कहते हैं।

व्यवस्था—सरकार के कार्य बड़े बड़े राज्यों में दो भागों में विभक्त किये हुए होते हैं, केन्द्रीय सरकार के कार्य, और प्रान्तीय (या स्थानीय) सरकार के कार्य। इन कार्यों का संचालन करने के लिए क्रमशः केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाएँ क़ानून बनाती हैं। प्रायः केन्द्रीय विषयों को व्यवस्था के लिए दो दो सभाएँ होती हैं; प्रान्तीय विषयों के लिए बहुधा एक ही सभा होती है, परन्तु कहीं कहीं दो दो सभाएँ भी होती हैं। इन सभाओं के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। किसी व्यवस्थापक सभा में लोगों का प्रतिनिधि रूप से भाग लेना, एक महत्व-पूर्ण कार्य है। इसके लिए सुयोग्य व्यक्तियों का ही निर्वाचन होना चाहिये; और जो व्यक्ति निर्वाचित हों उन्हें बड़े परिश्रम तथा ईमानदारी से अपने महान कर्तव्य का पालन करना चाहिये।

शासन कार्य—भिन्न भिन्न विषयों के क़ानून बना देने से ही सरकार का कार्य पूरा नहीं हो जाता। इन क़ानूनों के अनुसार व्यवहार करना होता है, सर्वसाधारण को इनके अनुसार चलाना होता है। किसी जगह में क़ानून को अमल में लाने तथा क़ानून-भंग के अपराधियों को गिरफ्तार करने, और शान्ति सुव्यवस्था रखने का कार्य करने वालों को शासक कहा जाता है। इनकी सभा को प्रबन्धकारिणी सभा या कार्यकारिणी सभा कहते हैं। यह सभा भिन्न भिन्न विभागों के आय व्यय का चिट्ठा बना कर

व्यवस्थापक सभा में पेश करती है और उसकी स्वीकृति के अनुसार सर्व साधारण से विविध कर आदि द्वारा आय प्राप्त करती है, और प्राप्त आय को ख़र्च करती है। किसी क्षेत्र के प्रबन्ध कार्य की गुरुता को देखकर यह निश्चय किया जाता है कि उसकी प्रबंधकारिणी के कुल कितने सदस्य हों, अथवा एक एक सदस्य के सुपुर्द क्या क्या कार्य या विभाग रहें। इसमें समय समय पर परिवर्तन होता रहता है।

शासकों का संगठन केन्द्र, प्रान्त तथा ज़िला वार होता है। अपने अपने क्षेत्र में निर्धारित अधिकार रखते हुए ज़िलों के शासक तो प्रान्तीय शासक के अधीन होते हैं और प्रान्तीय शासक कुछ बातों में (सार्वदेशिक विषयों में) केन्द्रीय शासकों के अधीन होते हैं।

उन्नत और विकसित राज्यों में शासक पूर्णतया व्यवस्थापकों के प्रति उत्तरदायी होते हैं; इनका वेतन निश्चय करने का अधिकार व्यवस्थापक सभा को ही होता है। जिस समय यह जान पड़े कि शासक अपना कर्तव्य ठीक पालन नहीं करते, व्यवस्थापकों को अधिकार है कि उन्हें उनके पद से हटाने का आन्दोलन करें। बहुत से अनुभवों से, शासकों (या मन्त्री मण्डल) को उनके पद से हटाने के लिए एक शिष्टाचार–मूलक पद्धति का आविष्कार हो गया है। वैध राज तन्त्र या लोक तन्त्र राज्यों में व्यवस्थापक सभा को असन्तुष्ट देखकर या उसके उन पर अविश्वास प्रकट करने पर, वे त्याग पत्र दे देते हैं।

अब हम सरकार के तीसरे अङ्ग, न्याय का विचार करते हैं।

न्याय कार्य–किसी देश के सुप्रबन्ध के लिए समय समय

पर यह भी विचार करना आवश्यक होता है कि किसी स्थान में किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह ने क़ानून का उल्लंघन तो नहीं किया है। क़ानून जैसे नागरिकों के लिए होता है, वैसे ही शासकों अर्थात् सरकारी कर्मचारियों के वास्ते भी होता है। अपनी रक्षा और उन्नति के लिए नागरिक अपने बहुत से अधिकार शासकों को दे देते हैं, तथापि उन्हें भी कुछ अधिकार रहते हैं। यदि किसी समय नागरिकों और शासकों में किसी विषय पर मत-भेद हो तो उसका निपटारा करने के लिए न्यायालय होते हैं। वे यह भी विचार करते हैं कि यदि दो या अधिक नागरिकों का पारस्परिक झगड़ा है तो क़ानून की दृष्टि से किसका पक्ष उचित है, और किसका अनुचित। ऐसे विचार या निर्णय को 'न्याय' कहते हैं, और इस कार्य को करने वाले न्यायाधीश, जज या मुन्सिफ़ आदि कहलाते हैं। न्याय का उद्देश्य तभी सफल हो सकता है, जब वह सस्ता और निष्पक्ष हो। उसमें जाति, रंग, धनी और निर्धन, राज-कर्मचारी और नागरिक, आदि का लिहाज़ न होना चाहिये। विशेषतया पराधीन देशों में, राजनैतिक विषयों में बहुधा अन्याय होने, शासकों के त्रुटि–युक्त पक्ष का भी समर्थन होने, और शासक जाति के आदमियों से अनुचित रियायत होने की सम्भावना रहती है। इस ओर न्यायाधीशों का विशेष ध्यान रहना चाहिये।

इस प्रसंग में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि न्याया-धीशों की नियुक्ति, उनके पद या वेतन की वृद्धि तथा उन्हें हटाने का अधिकार शासकों के अधीन न होकर, व्यवस्थापक संस्थाओं के अधीन रहना चाहिये। और, किसी भी दशा में न्याय कार्य शासकों के सुपुर्द न होना चाहिये। पुनः विशेषतया फ़ौजदारी मामलों में यह सर्वथा सम्भव है कि एक न्यायाधीश अभियोग को समुचित रीति से न समझे, अथवा उसका निर्णय एकांगी हो। इस लिए उन्नत राज्यों में अभियुक्त की जाति तथा देश के कुछ

सुयोग्य सज्जनों की 'जूरी' या पंचायत द्वारा विचार होने की प्रथा है। जूरी यह विचार करती है कि अभियोग को वास्तविक घटनाएं क्या हैं। उन घटनाओं के आधार पर, जज तत्सम्बन्धी क़ानूनी निर्णय सूचित करता है।

अस्तु, हमने संक्षेप में सरकार के तीनों अङ्गों का वर्णन करके, इनके महत्व का दिग्दर्शन करा दिया। अपने अपने स्थान पर सभी उच्च हैं। प्रत्येक के अपना अपना कर्तव्य भली भांति पूरा करने में ही राज्य की, और देश के नागरिकों की, उन्नति है।

इस पुस्तक में भारतवर्ष की शासन पद्धति का वर्णन किया जायगा, इस लिए यह जान लेना आवश्यक है कि इस देश के राजनैतिक भाग कितने हैं, तथा उनका क्षेत्रफल और जनसंख्या आदि क्या है।

भारतवर्ष के राजनैतिक भाग—राजनैतिक दृष्टि से भारतवर्ष के पांच भाग हैं:—

१—स्वाधीन राज्य।
२—देशी राज्य।
३—ब्रिटिश या अंगरेज़ी भारत।
४—बर्मा।
५—अन्य विदेशी राज्य।

इन पांचों भागों का क्षेत्रफल कुल मिलाकर लगभग उन्नीस लाख वर्गमील और जनसंख्या लगभग छत्तीस करोड़ है। उपर्युक्त भागों में से देशी राज्यों और ब्रिटिश भारत की ही शासन पद्धति का विवेचन आगे सविस्तर किया जायगा। यहां अन्य भागों के सम्बन्ध में केवल कुछ मुख्य मुख्य बातें दी जाती हैं।

स्वाधीन राज्य--भारतवर्ष में स्वाधीन राज्य केवल नैपाल और भूटान ही हैं। इनकी सीमा पर भारत सरकार का रेज़ीडैंट रहता है, पर उसे इनके आन्तरिक राज्य प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का कुछ अधिकार नहीं होता।

नैपाल, हिमालय के दक्षिण में, अधिकांश में पहाड़ी राज्य है। इसकी लंबाई पांच छः मील से अधिक,और चौड़ाई लगभग एकसौ चालीस मील है। सन् १९३१ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार यहां का क्षेत्रफल चव्वन हज़ार वर्गमील, और जन संख्या छप्पन लाख है। नैपाल में छोटे बड़े कुल २२ राज्य हैं। यहां का प्रधान शासक 'महाराजाधिराज श्री पांच सरकार' कहलाता है। वस्तुतः शासन कार्य का सम्पादन प्रधान मंत्री करता है, यह 'महाराज तीन सरकार' कहलाता है। इससे नीचे जंगी लाट होता है, वह इसके देहान्त के बाद इसके पद का अधिकारी होजाता है। अंगरेज़ सरकार इस राज्य को प्रति वर्ष दस लाख रुपये भेंट करती है। यहां के क़ायदे क़ानून प्राचीन हिन्दू शास्त्रों के अनुसार हैं। शासन पद्धति में कठोरता है, चोरी डाके आदि को रोकने का कड़ा प्रबंध है। मुकदमे स्वयं 'तीन सरकार' सुनते हैं, उनमें वकीलों की आवश्यकता नहीं होती।

सन् १९३१ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार भूटान का क्षेत्रफल बीस हज़ार वर्ग मील, और जन संख्या ढाई लाख है। इसे भारत सरकार से सालाना एक लाख रुपया मिलता है और यह बाहरी मामलों में उसकी सलाह से काम करता है। भीतरी मामलों में यह स्वतन्त्र है। प्रधान शासक महाराजा कहाता है।

देशी राज्य

संख्या	देशी राज्य	क्षेत्रफल (वर्ग मील)	जन संख्या (सन् १९३१ ई०)
१	हैदराबाद ...	८२,६९८	१,४४,३६,१४८
२	मैसूर ...	२९,३२६	६५,५७,३०२
३	बड़ौदा ...	८,१६४	२४,४३,००७
४	कशमीर ...	८४,५१६	३६,४६,२४३
५	गवालियर ...	२६,३६७	३५,२३,०७०
६	सिक्कम ...	२,८१८	१,०९,०८८
७	पश्चिम भारत एजन्सी	३५,४४२	३९,९९,२५०
८	पंजाब एजन्सी ...	३१,२४१	४४,७२,२१८
९	पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत ए.	२२,८३८	२२,५९,२२८
१०	बिलोचिस्तान एजन्सी	८०,४१०	४,०५,१०९
११	मध्य भारत एजन्सी	५१,५९७	६६,३२,७९०
१२	राजपूताना एजेन्सी	१,२९,०५९	१,१२,२५,७१२
१३	मदरास एजन्सी ...	१०,६९८	६७,५४,४८४
१४	पंजाब में ...	५,८२०	४,३७,७८७
१५	बिहार उड़ीसा में ...	२८,६४८	४६,५२,२०७
१६	बंगाल में ...	५,४३४	९,७३,३३६
१७	बम्बई में ...	२७,९९४	४४,६८,३९६
१८	मध्य प्रान्त में ...	३१,१७५	२४,८३,२१४
१९	आसाम में ...	१२,३२०	६,२५,६०६
२०	संयुक्त प्रान्त में ...	५,९४३	१२,०६,०७०
	योग	७,१२,५०८	८,१३,१०,८४५

ब्रिटिश भारत

संख्या	प्रान्त	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जन संख्या (सन् १९३१ ई०)
१	आसाम	५५,०००	८६,२२,०००
२	बंगाल	७८,०००	५,०१,१४,०००
३	बिहार	६९,०००	३,२३,७२,०००
४	बम्बई	७७,०००	१,८०,४४,०००
५	मध्य प्रान्त और बरार	९९,०००	१,५३,२३,०००
६	मदरास	१,३६,०००	४,५३,२६,०००
७	पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	१४,०००	२४,२५,०००
८	उड़ीसा	३२,०००	६९,०५,०००
९	पंजाब	९९,०००	२,३५,८१,०००
१०	संयुक्तप्रान्त आगरा अवध	१,०६,०००	४,८४,०९,०००
११	सिंध	४६,०००	३८,८७,०००
योग	गवर्नरों के प्रान्त	८,०१,०००	२५,५०,०८,०००
१	बिलोचिस्तान	५४,२००	४,६३,०००
२	अजमेर मेरवाडा	२,७००	५,६०,०००
३	अन्दमान निकोबार	३,१००	२९,०००
४	कुर्ग	१,६००	१,६३,०००
५	देहली	६००	६,३६,०००
६	पंथ पिपलोदा	×	×
योग	चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्त	६२,२००	१८,५१,०००
	ब्रिटिश भारत	८,६३,२००	२५,६८,५९,०००

बर्मा—यह अब तक ब्रिटिश भारत का ही एक प्रान्त था। सन् १९३५ ई० के शासन विधान से इसे भारतवर्ष से पृथक् करके, इसके लिए पृथक् शासन व्यवस्था निर्धारित कर दी गयी है। इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ज्ञातव्य हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में भारतवर्ष पर अधिकार कर लेने के बाद, अंगरेज़ों ने बर्मा लेने का प्रयत्न किया, और उक्त शताब्दी के अन्तिम भाग में उसे क्रमशः प्राप्त कर लेने पर ब्रिटिश भारत के अन्तर्गत एक प्रान्त बना दिया; कारण, अङ्गरेज़ों को उसके लिए अलग सरकार स्थापित करने की सुविधा न थी, और बर्मा को जीतने में भारतवर्ष के ही जन धन का उपयोग हुआ था। बर्मा अपनी पैदावार के कारण अङ्गरेज़ों के लिए बहुत लाभप्रद रहा, और, विशेषतया मिट्टी के तेल के कारण आधुनिक मोटर तथा वायुयान के युग में, यह राजनैतिक दृष्टि से भी साम्राज्य के लिए बहुत उपयोगी प्रमाणित हुआ। इसके अतिरिक्त, सिंगापुर में जल सेना का केन्द्र बनाने की योजना से बर्मा का महत्व और भी बढ़ गया। ऐसी स्थिति में, ब्रिटिश भारत में स्वातन्त्र्य आन्दोलन क्रमशः अधिकाधिक अग्रसर होने से, अंगरेज़ों को उसके साथ बर्मा के भी स्वतन्त्र हो जाने की आशङ्का होना स्वाभाविक था। अस्तु अंगरेज़ों ने उसे ब्रिटिश भारत से अलग करने का प्रयत्न उठाया, और इसके विविध कारण उपस्थित किये। यह बताया गया कि यह कार्य बर्मा-निवासियों को इच्छा और हित को लक्ष्य में रखकर किया जा रहा है। परन्तु बर्मा की कौंसिल ने तथा कितने ही नेताओं ने यह स्पष्ट सूचित कर दिया कि बर्मा निवासी, बर्मा के ब्रिटिश भारत से पृथक् किये जाने के विरोधी ही हैं। भारत और बर्मा का इतने समय तक ऐसा घनिष्ट सन्बन्ध रहा है कि भारतवासियों को बर्मा का भारत से पृथक् किया

जाना कदापि रुचिकर नहीं हो सकता। तथापि भारतवासियों का यही कथन रहा कि पृथक्करण का निश्चय बर्मा की जनता की स्वन्त्रता-पूर्वक प्रकट की हुई इच्छा के अनुकूल होना चाहिये। परन्तु इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया, और, अब बर्मा के लिये पृथक् शासन पद्धति का निर्माण कर दिया गया है।

यहां की सरकार वे सब कार्य करती हैं जो भारतवर्ष में प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार करती हैं, अर्थात् यहां शासन सम्बन्धी विषयों का केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों में विभाजन नहीं किया गया है। यहां का प्रधान शासक गवर्नर है, और उसका सम्राट् से सीधा सम्बन्ध है। सपरिषद सम्राट् ऐसे भी नियम बना सकता है जिनसे बर्मा के मुद्रा-विषयक सम्बन्ध नियमित हों, जो बर्मा के भारतवर्ष से पृथक् किये जाने से पूर्व के पारस्परिक समझौतों को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक प्रतीत हों, तथा जिनसे इनके पारस्परिक व्यापार की अनुचित वाधाओं का निवारण और बर्मा के आर्थिक हितों का संरक्षण हो। बर्मा के लिए अलग रिज़र्व बैंक नहीं है, भारतवर्ष का ही रिजर्व बैंक बर्मा सम्बन्धी कार्य भी करता है। बर्मा के व्यवस्थापक मंडल की दो सभाएं हैं:—(१) सीनेट और (२) प्रतिनिधि सभा (हाऊस-आफ-रिप्रेज़ेन्टेटिव)। सन् १९३१ ई० की मनुष्य गणना के अनुसार यहां की जनसंख्या एक करोड़ सैंतालीस लाख, और क्षेत्रफल २ लाख ३३ हज़ार वर्गमील है।

अन्य विदेशी राज्य—भारत के अन्य विदेशी राज्यों से अभिप्राय उन भागों से है जो अंगरेज़ों के अतिरिक्त अन्य योरपियन शक्तियों के अधीन हैं। यनाम, माही, कारीकल, पांडेचेरी, और चन्द्रनगर फ़्रांस के अधीन हैं। इनका क्षेत्रफल दो सौ वर्ग

मील और जन संख्या तीन लाख से कुछ कम है । इन स्थानों में पांडेचरी मुख्य है । यही इन सब की राजधानी है, जिसमें इनका प्रबन्ध करने के लिए एक गवर्नर तथा उसकी सहायतार्थ एक मन्त्री, कुछ विविध विभागों के सेक्रेटरी, और एक न्यायाध्यक्ष रहते हैं । फ्रांस की भारतीय प्रजा को एक ऐसा अधिकार प्राप्त है, जो ब्रिटिश भारत के निवासियों को भी प्राप्त नहीं है; अर्थात् तीन लाख से कम जन संख्या के रहते, वे अपनी ओर से दो प्रतिनिधि फ्रांस की पार्लिमैंट में भेज सकते हैं ।

गोवा, डामन, और डयू पुर्तगाल के अधीन हैं । इन तीनों स्थानों का क्षेत्रफल साढ़े चौदह सौ वर्गमील और जनसंख्या लगभग छः लाख है । इन स्थानों के लिए एक गवर्नर-जनरल, गोवा (राजधानी) में रहता है । उसकी प्रायः पांच साल में बदली होती है । उसकी प्रबन्धकारिणी और व्यवस्थापक दोनों प्रकार की सभाएं हैं ।

दूसरा परिच्छेद

ब्रिटिश साम्राज्य और भारतवर्ष

प्राक्कथन--भारतवर्ष के शासन का ब्रिटिश पार्लिमैंट, और इंगलैंड* के बादशाह (भारतवर्ष के सम्राट्) से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ब्रिटिश भारत तो इनके अधीन ही है; यहां जो शासन पद्धति प्रचलित है, वह ब्रिटिश पार्लिमैंट द्वारा निश्चित की गयी है, और वही इसमें सुधार करती है। पुनः यहां का शासन इंगलैंड तथा उसके स्वाधीन उपनिवेशों की शैली पर चलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसलिए, भारतीय शासन पद्धति को अच्छी तरह समझने के वास्ते, ब्रिटिश साम्राज्य की शासन पद्धति जान लेना उपयोगी है; यहां कुछ मुख्य मुख्य बातें दी जाती हैं।†

बादशाह और शाही खानदान--इंगलैंड का बादशाह वंश के ही कारण पैत्रिक सिंहासन का उत्तराधिकारी होता है, अपने गुण कर्मानुसार नहीं होता। सिंहासन का अधिकारी प्रोटेस्टेंट मत का ही ईसाई हो सकता है, रोमन कैथलिक मत का

---

* इस पुस्तक में इङ्गलैंड से अभिप्राय ब्रिटिश संयुक्त राज्य अर्थात् इङ्गलैंड, वेल्ज़, तथा स्काटलैंड, और उत्तरी आयर्लैंड से है। इनमें इंगलैंड ही प्रधान है।

† इस विषय का सविस्तर वर्णन, स्वतन्त्र रूप से, भारतीय ग्रन्थ माला की 'ब्रिटिश साम्राज्य शासन' पुस्तक में किया गया है।

ईसाई नहीं हो सकता। पुरुष भी गद्दी पर बैठ सकता है और स्त्री भी; परन्तु शाही ख़ानदान में भाई का अधिकार, बहिन के अधिकार से अधिक माना जाता है। बादशाह के बड़े लड़के को 'प्रिंस-आफ़-वेल्स' (युवराज) कहते हैं। शाही परिवार के ख़र्च के लिये प्रति वर्ष पार्लिमैंट द्वारा निर्धारित रक़म दी जाती है। इस रक़म के अतिरिक्त, सम्राट् राष्ट्रीय कोष से अपने लिए और कुछ ख़र्च नहीं करता।*

बादशाह के अधिकार—यद्यपि बादशाह के कुछ ऐसे भी अधिकार हैं, जिनका वह पार्लिमैंट की सम्मति या स्वीकृति बिना उपयोग कर सकता है, परन्तु आम तौर से वह इन अधिकारों को अपने मंत्रियों की सलाह बिना अमल में नहीं लाता। ब्रिटिश शासन पद्धति का एक मुख्य सिद्धान्त यह है कि बादशाह कोई ग़लती नहीं कर सकता। बात यह है कि वह किसी भी राज्य-कार्य का उत्तरदायी नहीं। सब कामों के उत्तरदाता मन्त्री हैं, उनकी सम्मति या अनुमति बिना बादशाह कुछ नहीं करता। जिन प्रस्तावों को पार्लिमैंट स्वीकार करले, वह नियम बन जाते हैं। बादशाह के हस्ताक्षर रीति पूरी करने के लिए कराए जाते हैं।

पार्लिमैंट—ब्रिटिश पार्लिमैंट की दो सभाएं हैं, अङ्गरेज़ी सरदार सभा या 'हाऊस-आफ़-लार्ड्स' (House of Lords) और प्रतिनिधि सभा या 'हाऊस-आफ़-कामन्स' (House of

* यह बात भारतीय नरेशों के लिए बहुत अनुकरणीय है, जो अपने अपेक्षाकृत बहुत कम आय वाले राज्य के कोष से, अपने व्यक्तिगत या पारिवारिक हित के लिए बड़ी बड़ी रक़में ख़र्च कर डालते हैं, और उन पर कोई बन्धन या सीमा नहीं रखते।

Commons)। 'लार्डस' का अर्थ है स्वामी या प्रभु, और 'कामन्स' का अर्थ है सर्व साधारण। सरदार सभा में लगभग ७०० सदस्य हैं। इनमें से छः सौ से अधिक वंशागत हैं, ये लोग प्रायः स्वभाव से ही परिवर्तन-विरोधी या अनुदार होते हैं। देश के व्यवस्था कार्य में इनका हाथ होने से जहां क्रांतिकारी परिवर्तनों को रोकने में सहायता मिल सकती है, वहां यह बड़ी हानि भी है कि इनके कारण कोई सुधार होने में बहुत बिलम्ब हो जाता है।

प्रतिनिधि सभा के सदस्य निर्वाचित होते हैं, उनकी संख्या छः सौ पन्द्रह है। स्त्रियों को निर्वाचन अधिकार पुरुषों के समान है। इस सभा का प्रत्येक ग़ैर-सरकारी सदस्य ४०० पौंड वार्षिक वेतन पाता है। सदस्यों का निर्वाचन प्रायः पांचवें वर्ष होता है।

व्यवस्था--कोई क़ानून (ऐक्ट) बनने से पहले सम्राट् और पार्लिमैंट की दोनों सभाओं का एक मत होना आवश्यक है। साधारण तौर से क़ानूनी मसविदे तीन प्रकार के होते हैं:—(१) सार्वजनिक, जो जनता के सम्बन्ध में हों, (२) व्यक्तिगत, जो किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्ति-समूह से सम्बन्ध रखते हों, (३) धन सम्बन्धी, जो सार्वजनिक कामों के लिए रुपया देने या टैक्स लगाने आदि के सम्बन्ध में हो। धन सम्बन्धी मसविदे केवल प्रतिनिधि सभा में ही आरम्भ होते हैं। उनको छोड़ कर, अन्य मसविदे किसी भी सभा में आरम्भ हो सकते हैं। हर एक सभा दूसरी सभा के पास किये मसविदे का संशोधन कर सकती है, लेकिन सरदार सभा धन सम्बन्धी मसविदों का संशोधन नहीं कर सकती। अगर कोई मसविदा सरदार सभा से दो बार अस्वीकृत होजाय तो प्रतिनिधि सभा से तीसरी बार स्वीकृत होने पर उसे बादशाह की स्वीकृति के लिए भेज दिया

जाता है, और उसकी स्वीकृति मिल जाने पर वह क़ानून बन जाता है। इन विशेष दशाओं के अतिरिक्त, साधारणतः हर एक मसविदा सम्राट् की स्वीकृति पाने से पूर्व, दोनों सभाओं में तीन बार पढ़ा जाना और पास होना आवश्यक है। प्रायः दोनों सभाएं सहमत हो जाती हैं, या मत भेद की दशा में कुछ समझौता कर लेती हैं। यद्यपि पार्लिमैंट के शासन और प्रबन्ध सम्बन्धी भी अधिकार हैं, उसने अपने ये अधिकार छोटी छोटी संस्थाओं—प्रिवी कौंसिल, मंत्री मण्डल आदि—को दे दिये हैं।

गुप्त सभा—बादशाह को शासन कार्य में परामर्श देने के लिए एक गुप्त सभा अर्थात् 'प्रिवी कौंसिल' रहती है। इस के सदस्यों को बादशाह स्वयं नियत (एवं बर्ख़ास्त) करता है। राजनैतिक महत्व या राज्य परिवार से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति, तथा मंत्री मंडल के सदस्य आदि इस सभा के मेम्बर होते हैं। सभा का प्रधान 'लार्ड प्रेसीडेन्ट' कहलाता है,यह हमेशा मंत्री मंडल का सदस्य होता है। बादशाह का देहान्त होने पर, गुप्त सभा का अधिवेशन होकर उस (बादशाह) का उत्तराधिकारी नियत किया जाता है,जो इंगलैंड के प्रचलित क़ानूनों के अनुसार शासन करने की प्रतिज्ञा करता है।

गुप्त सभा की जुडिशंल (न्याय सम्बन्धी) कमेटी को भारतवर्ष, उपनिवेशों तथा पादरियों की ऊंची अदालतों के फ़ैसलों की अपील सुनने का अधिकार है। गुप्त सभा के कुल सदस्यों की संख्या ३०० से ऊपर हो जाती है। बहुधा छः सदस्यों की ही उपस्थिति में ही काम कर लिया जाता है। 'सम्राट् की परिषद्' कहने से इसी सभा का आशय लिया जाता है। इस सभा की सलाह से सम्राट् की जो आज्ञाएं निकलती है, उन्हें 'सपरिषद्

सम्राट् की आज्ञाएं' (आर्डर्स-इन-कौंसिल) कहा जाता है। गुप्त सभा के बहुत बड़ी होने के कारण बहुत से विषयों में बादशाह को सलाह देने का काम में मंत्री मंडल करता है।

मंत्री मंडल--आज कल इंगलैंड में तीन राजनैतिक दल या पार्टियां मुख्य हैं, (१) उदार या 'लिबरल' (२) अनुदार या 'कंज़र्वेटिव' और (३) मज़दूर या 'लेबर' दल। शासन सम्बन्धी विविध विभागों के उच्च पदाधिकारी उस राजनैतिक दल के आदमियोंमें से नियत किये जाते हैं, जिसके सदस्यों की संख्या प्रतिनिधि सभा में सब से अधिक हो, या जो विशेष प्रभावशाली हो, और इतने अन्य सदस्यों का सहयोग प्राप्त करसके कि कुल सदस्य मिलकर विरोधी दल के सदस्यों से अधिक होजांय। ये पदाधिकारी लगभग पचास होते हैं और मन्त्री या 'मिनिस्टर' कहलाते हैं। इनके समूह को मन्त्री दल अर्थात् 'मिनिस्टरी' कहते हैं।

कुछ मुख्य मुख्य विभागों के मन्त्रियों की एक अन्तरङ्ग सभा होती है। इसे मन्त्री मण्डल या 'केबिनेट' कहते हैं। मन्त्री मंडल को ब्रिटिश राज्य चक्र की धुरी समझना चाहिये। यह सब शासन कार्य का उत्तरदायी है। इसमें प्रधान मन्त्री के अतिरिक्त लगभग बीस मन्त्री रहते हैं। जब एक मन्त्री मण्डल त्याग पत्र देता है तो बादशाह दूसरा मन्त्री मण्डल बनाने के लिए किसी दूसरे राज-नीतिज्ञ को बुलाता है। अगर यह राजनीतिज्ञ अपने कार्य में सफल होजाय तो इसे प्रधान मन्त्री बना दिया जाता है। प्रधान मंत्री, मंत्री मण्डल के अधिवेशनों में सभापति होता है और सरकार की नीति ठहराता है और अन्य विविध विभागों की निगरानी करता है। भारत मन्त्री, मन्त्री मण्डल का एक सदस्य होता है; इसके विषय में अगले परिच्छेद में लिखा जायगा।

ब्रिटिश साम्राज्य—इस परिच्छेद में अभी तक ब्रिटिश साम्राज्य के मातृ-प्रदेश अर्थात् इंगलैंड की शासन पद्धति का वर्णन हुआ है। ब्रिटिश साम्राज्य में, इसके अतिरिक्त स्वाधीन, पराधीन कई भू-भाग हैं। केनेडा, दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, न्यूफ़ाउंडलैंड और आयरिश फ्री स्टेट को अपने आन्तरिक शासन के लिये पूर्ण, तथा वैदेशिक प्रबन्ध के लिए बहुत कुछ, स्वतन्त्रता प्राप्त है। इन देशों में उत्तरदायी शासन पद्धति प्रचलित है। भारतवर्ष का राजनैतिक ध्येय भी यही माना गया है। इस लिये इसके सम्बन्ध में कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त करना उपयोगी होगा।

उत्तरदायी शासन---स्वाधीन उपनिवेशों में प्रचलित उत्तरदायी शासन पद्धति की मुख्य मुख्य बातें ये हैं—

(१) शासन सम्बन्धी सब कार्य प्रधान शासक के नाम से किये जाते हैं। वह व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदाता नहीं होता, इसलिये वह उसके द्वारा हटाया भी नहीं जा सकता। इसे कहीं गवर्नर-जनरल, और कहीं गवर्नर कहते हैं।

(२) उसके कार्य मन्त्रियों के परामर्श से, और उन्हीं के उत्तरदायित्व पर होते हैं। मंत्री, नाम मात्र से उसके द्वारा, परन्तु वास्तव में प्रजा प्रतिनिधियों द्वारा, साधारणतः व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों में से, चुने जाते हैं। इस प्रकार प्रजा-प्रतिनिधी अपने निर्वाचित मंत्रियों द्वारा, देश का वास्तविक शासन करने वाले होते हैं।

(३) जब प्रतिनिधी सभा का इन मन्त्रियों पर विश्वास नहीं रहता, तो ये (यदि ये व्यवस्थापक मण्डल बर्ख़ास्त नहीं करते) त्यागपत्र दे देते हैं, और उनके स्थान पर नये मन्त्री चुने जाते हैं।

इस प्रकार प्रबन्धक और व्यवस्थापक शक्ति उस दल के हाथ में होती है, जिसका प्रतिनिधी सभा में बहुमत हो।

(४) व्यवस्थापक मंडल और मन्त्री मंडल अपनी विवाद-ग्रस्त बातों को न्याय विभाग के सम्मुख रखे बिना ही तय कर लेते हैं।

साम्राज्य परिषद——इस परिषद में साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों के विवाद-ग्रस्त विषयों का विचार होता है तथा उनकी उन्नति के उपाय सोचे जाते हैं, यथा साम्राज्य के विविध भागों का पारस्परिक आर्थिक, व्यापारिक या राजनैतिक सम्बन्ध किस प्रकार रहे। इसका अधिवेशन दूसरे तीसरे वर्ष, प्रायः लन्दन में होता है, परन्तु साम्राज्य के अन्य स्थानों में भी होसकता है। उदाहरणवत् इसका सन् १९३२ ई० का अधिवेशन केनेडा की राजधानी ओटावा में हुआ था। उसमें साम्राज्य के भिन्न भिन्न देशों के पारस्परिक व्यापार के लिये 'साम्राज्यान्तर्गत रियायत' का विचार हुआ था। इसका भारतवर्ष से क्या सम्बन्ध था, और यह कैसा हानिकर हुआ, यह हमने अपनी 'भारतीय जागृति' में बताया है। इस परिषद के स्वीकृत प्रस्ताव केवल परामर्श रूप में होते हैं, और विरुद्ध मत रखने वालों पर बाध्य नहीं होते। इंगलैंड और साम्राज्य के स्वराज्य-प्राप्त भागों के प्रधान मंत्री, परतन्त्र उपनिवेशों की ओर से ब्रिटिश सरकार का उपनिवेश मंत्री, और भारतवर्ष की ओर से भारत मंत्री इस परिषद के सदस्य होते हैं। प्रत्येक सदस्य को अपने साथ कुछ सलाहकार लेजाने का अधिकार है, परन्तु साम्राज्य के प्रत्येक मुख्य भाग की सरकार का केवल एक मत (वोट) रहता है। इंगलैंड का प्रधान मंत्री इस परिषद का सभापति होता है।

साम्राज्य परिषद में स्वराज्यभोगी भागों के मंत्री अपने अपने

देशवासियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं, और इसलिये उनका मत प्रकट करते हैं, परन्तु भारत मन्त्री और उसके सलाहकार, भारत वासियों के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। इन्हें भारतवर्ष का प्रतिनिधी कहना सर्वथा अशुद्ध और हास्यास्पद है।

राष्ट्र संघ और भारतवर्ष--ब्रिटिश साम्राज्य के भागों में से इंगलैंड, चार बड़े बड़े स्वाधीन उपनिवेश, और आयरिश फ्री स्टेट के अतिरिक्त भारतवर्ष भी राष्ट्र-संघ* का सदस्य है। परन्तु इस देश का जो प्रतिनिधी राष्ट्र-संघ में सम्मिलित होता है, वह भारत सरकार का ही प्रतिनिधी होता है (भारतीय जनता का नहीं), उसे हर दशा में इंगलैंड की आज्ञा पालन करनी होती है। भारतवर्ष को इस संघ के कार्य संचालन के व्यय का ख़ासा हिस्सा देना पड़ता है, परन्तु इस देश का उसमें कुछ प्रभाव नहीं है। यहां तक कि उसके बड़े बड़े पदों से भी भारतीय वंचित ही रहते हैं। इन बातों का विचार करने से स्पष्ट है, कि जब तक परिस्थिति में सुधार न हो भारतवर्ष को इस संस्था से पृथक् रहना और इसके व्यय-भार से बचना ही उचित है।

राष्ट्र संघ में स्वीकृत समझौतों का भारतवर्ष पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है, यद्यपि वह अप्रत्यक्ष रूप से है। यहां मज़दूरों के काम करने के घंटे कम करने तथा उनके कुशल-क्षेम की रक्षा करने के कुछ नियम बने हैं, तथा इस देश का चीन से अफ़ीम

---

* यह एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है, जिसके उद्देश्य संसार में युद्ध को यथा सम्भव कम करना, निरस्त्रीकरण, पारस्परिक सद्भाव की वृद्धि, मादक द्रव्य के उपभोग का निषेध, और मज़दूरों का स्वास्थ सुधार आदि हैं। अभी तक इसे बहुत कम सफलता मिली है। इसका विशेष विचार हमने अपनी 'ब्रिटिश साम्राज्य शासन' पुस्तक में किया है।

का व्यापार बन्द करने के लिये, इस पदार्थ की पैदावार घटायी गयी है, इसका श्रेय भारतीय जनता के आन्दोलन के अतिरिक्त अंशतः राष्ट्र संघ को भी है।

ब्रिटिश साम्राज्य और भारतवर्ष---जन संख्या और क्षेत्रफल की दृष्टि से भारतवर्ष एक विशाल साम्राज्य है, परन्तु वर्तमान राजनैतिक स्थिति में यह ब्रिटिश साम्राज्य का एक अङ्ग मात्र है, और कई बातों में इसका दर्जा ब्रिटिश साम्राज्य के स्वराज्य-प्राप्त भागों से बहुत कम है। उनमें बहुत समय से उत्तर-दायी शासन है, भारतवर्ष में इसका श्रीगणेश ही किया गया है।

सन् १६१६ ई० तक भारतवर्ष में शासन सुधार सम्बन्धी जो भी आन्दोलन हुए उनमें यह बात अनिवार्य रूप से मानी जाती थी कि भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य का अङ्ग रहे। परन्तु ब्रिटिश सरकार की कई बातें बहुत असन्तोष प्रद रहने के कारण यहां की महान संस्था कांग्रेस ने सन् १६२० ई० में अपने उद्देश से, भारतवर्ष के ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहने की बात निकाल दी। अब, कांग्रेस के वर्तमान विधान के अनुसार, भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य से बाहर भी रह सकता है। भारतवर्ष में कुछ आदमी अब भी ऐसे हैं जो इस देश का लक्ष्य साम्राज्य के अन्तर्गत, स्वाधीन उपनिवेशों के समान पद प्राप्त करना समझते हैं, पर इनकी संख्या बहुत कम है, और क्रमशः घटती जा रही है। पुनः जो लोग औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में हैं, वे भी विशेषतया इसलिये हैं कि वर्तमान नीति के अनुसार स्वाधीन उपनिवेशों पर, इंगलैंड की ओर से व्यापार, विदेश नीति, या संधि विग्रह आदि किसी प्रकार का बन्धन नहीं रहता, वे स्वतन्त्र राष्ट्रों के समान ही हैं।

तीसरा परिच्छेद

भारत मंत्री

[सन् १९३५ ई० के शासन विधान के अनुसार भारत मन्त्री के, भारतीय शासन सम्बन्धी अधिकारों और कर्तव्यों में तथा उसकी कार्य पद्धति में कुछ परिवर्तन किया गया है। परन्तु ये परिवर्तन संघ की स्थापना होने तक, सम्भवतः सन् १९४० ई० तक अमल में नहीं आएंगे; उन परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाली स्थिति का विचार इस पुस्तक के दूसरे खण्ड में किया जायगा। यहां हम यह बतलाते हैं कि इस समय अर्थात् सन् १९१९ ई० के विधान अनुसार, भारत मन्त्री को भारतीय शासन के कार्य के निरीक्षण या नियंत्रण सम्बन्धी क्या अधिकार प्राप्त हैं।]

भारत मन्त्री और उसका कार्य्य--भारत मन्त्री को सम्राट्, अपने प्रधान मन्त्री के परामर्श से, नियत करता है। ब्रिटिश मन्त्री मण्डल का सदस्य होने के कारण, भारतमन्त्री की नियुक्ति व बरख़ास्तगी के इंगलैंड अन्य राजमंत्रियों के साथ लगी हुई है। वह पार्लिमैंट के सामने प्रति वर्ष मई महीने को पहली तारीख़ के बाद, जिस दिन पार्लिमैंट का अधिवेशन आरम्भ हो उससे २८ दिन के भीतर, भारतवर्ष के आय व्यय का हिसाब पेश करता है। उसी समय, वह इस बात की सविस्तर रिपोर्ट देता है कि गत आलोचनीय वर्ष की नैतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक उन्नति किस प्रकार अथवा कितनी हुई है। ब्रिटिश प्रतिनिधि सभा की एक कमेटी इस पर विचार करती है और भारत मन्त्री या उसका प्रतिनिधी इसे समझाने के लिए व्याख्यान देता है।

उस समय पार्लिमैंट के सदस्य भारतवर्ष के शासन सम्बन्धी विषयों पर आलोचना प्रत्यालोचना करसकते हैं। इसे 'भारतीय बजट की बहस' कहते हैं।

समय समय पर पार्लिमैंट को भारत सम्बन्धी आवश्यक सूचना देते रहना भी भारत मन्त्री ही का काम है। सम्राट् इसके द्वारा भारत सरकार के बनाये कुछ क़ानूनों को रद्द कर सकता है। भारतवर्ष के जंगी लाट (कमांडरन चीफ़) बंगाल, बम्बई और मदरास के गवर्नर, इनकी कौंसिलों के सदस्य, हाईकोर्ट के जज, तथा अन्य उच्च राजकर्मचारियों को नियुक्ति के लिये, यह सम्राट् को सम्मति देता है। भारत सरकार के सब बड़े बड़े अफ़सरों को यह आज्ञा देसकता है। यह उन्हें अपने अधिकार का अनुचित बर्ताव करने से रोक सकता है।

यदि भारत मंत्री भारत सरकार को किसी से युद्ध करने की आज्ञा दे तो उसे इस बात की सूचना तीन महीने के अन्दर, पार्लिमैंट की दोनों सभाओं को देनी पड़ती है। यदि पार्लिमैंट बन्द हो तो खुलने पर, एक महीने भीतर सूचना दीजाती है। यदि भारत की सीमा के बाहर युद्ध हो तो पार्लिमैंट की दोनों सभाओं की स्वीकृति बिना, उसका व्यय भारत के कोष से नहीं दिया जा सकता।*

भारत मन्त्री भारतीय शासन के लिये पार्लिमैंट के सामने उत्तरदाता है, उसे भारतीय शासन व्यवस्था के निरीक्षण और नियंत्रण का अधिकार है। उसके दो सहायक मंत्री होते हैं। एक स्थायी, और दूसरा ब्रिटिश पार्लिमैंट की उस सभा का सदस्य

* स्वीकृति मिलने में प्रायः विशेष बाधा नहीं होती; अब तक कई बार मिल चुकी है।

जिसमें भारत मन्त्री न हो। भारत मन्त्री के दफ्तर को 'इंडिया आफ़िस' कहते हैं, यह लन्दन (इंगलैंड) में है।

इण्डिया कौंसिल—भारत मन्त्री को शासन सम्बन्धी कार्य में सहायता या परामर्श देने वाली सभा 'इंडिया कौंसिल' कहलाती है। इसका अधिवेशन भारत मन्त्री की आज्ञा से एक मास में एक बार होता है। इसके सभापति भारत मन्त्री अथवा उसका सहकारी मंत्री; या भारतमन्त्री द्वारा नामज़द, कौंसिल का कोई सदस्य, होता है। इस कौंसिल के सदस्यों को भारत मंत्री नियुक्त करता है। भारत मंत्री को कौंसिल में साधारण मत (वोट) देने के अतिरिक्त एक अधिक वोट देने का भी अधिकार है। वह विशेष अवसरों पर इस कौंसिल के बहुमत बिना भी कार्य कर सकता है।

भारत मन्त्री इण्डिया कौंसिल की कुछ कमेटियां बना सकता है और यह आदेश कर सकता है कि उन कमेटियों के अधीन क्या क्या विभाग रहेंगे, और कौंसिल का कार्य किस पद्धति से किया जायगा। साधारणतया भारतवर्ष को कोई आज्ञा या सूचना भेजने, अथवा गवर्नर-जनरल या प्रान्तिक सरकारों के साथ भारत मन्त्री का पत्र व्यवहार होने का ढङ्ग कौंसिलयुक्त भारत मन्त्री द्वारा निश्चित किया जाता है।

कौंसिल के सदस्य—भारतमन्त्री की कौंसिल के सदस्य, ८ से १२ तक होते हैं। इनमें से आधे सदस्य वे ही हो सकते हैं, जो भारतवर्ष में भारत सरकार की नौकरी, कम से कम दस वर्ष तक करचुके हों, और जिन्हें वह नौकरी छोड़े पांच वर्ष से अधिक न हुए हों। प्रत्येक सदस्य पांच वर्ष के लिये नियुक्त किया जाता है, विशेष कारण होने से उसका समय पांच वर्ष तक और बढ़ाया

जासकता है। सदस्य किसी भी देश या धर्म का हो, इस बात का कोई बन्धन नहीं है, परन्तु सन् १९०७ ई० से पहले कोई भारतवासी इस कौंसिल का सदस्य न था; अब इसमें प्रायः तीन हिन्दुस्तानी होते हैं। प्रत्येक सदस्य का वार्षिक वेतन १२०० पौंड है, भारतीय सदस्यों को ६०० पौंड वार्षिक भत्ता और मिलता है।

कौंसिल के सदस्य वैदेशिक विषयों में, युद्धनीति में, तथा देशी राज्यों के मामलों में बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं कर सकते, उन्हें कोई स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त नहीं है, ये भारत मन्त्री की आज्ञानुसार लन्दन में भारतवर्ष सम्बन्धी काम करते हैं। इन सदस्यों को पार्लिमैंट में बैठने का अधिकार नहीं है, इन्हें इनके काम से हटाने का अधिकार पार्लिमैंट को ही है।

भारत मन्त्री और उसकी कौंसिल के नाम से, लन्दन के बैंक-आफ़-इंगलैंड में भारत का खाता है। उसका हिसाब जांचने के लिये एक लेखा परीक्षक (आडीटर) नियत है।

हाई कमिश्नर----यह अधिकारी पांच वर्ष के लिये नियुक्त होता है, इसका वार्षिक वेतन तीन हज़ार पौंड है, जो भारतीय कोष से दिया जाता है। यह कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के अधीन है, और उसी के द्वारा भारत मन्त्री की अनुमति से नियुक्त किया जाता है। इसका काम है, ठेके देना, इण्डिया आफ़िस के 'स्टोर्स' (Stores) विभाग, और इस के सम्बन्ध की हिसाब की शाखा, भारतीय विद्यार्थियों की शाखा, और भारतीय ट्रेड (व्यापार) कमिश्नर के कार्य का निरीक्षण।

चौथा परिच्छेद

भारत सरकार

[सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार, भारत सरकार के स्वरूप में बहुत परिवर्तन होगया है ; भविष्य में इसका नाम 'भारतवर्ष की संघ सरकार' होगा; परन्तु उपर्युक्त परिवर्तन संघ की स्थापना होने तक, सम्भवतः सन् १९४० ई० तक अमल में नहीं आएंगे। तब तक इस का संगठन आदि बहुत कुछ वर्तमान रूप में ही रहेगा। हम यहां इसी का वर्णन करते हैं। इसके भावी स्वरूप का विचार आगे दूसरे खण्ड में किया जायगा।]

भारत सरकार या 'गवर्नमेंट-आफ़-इण्डिया' का अर्थ है, 'गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल' अर्थात् कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल। स्मरण रहे कि यहां कौंसिल से मतलब गवर्नर-जनरल की प्रबन्धकारिणी सभा का है, व्यवस्थापक सभा का नहीं। इस का कारण यह है कि गवर्नर-जनरल के साथ कौंसिल शब्द का प्रयोग, व्यवस्थापक सभा के जन्म से बहुत वर्ष पहिले से हो रहा है।

गवर्नर-जनरल या वायसराय—गवर्नर-जनरल भारत सरकार का सब से महत्त्व पूर्ण अंग है, और उसे उसके अन्य पदाधिकारियों की अपेक्षा विशेष अधिकार हैं। उसे वायसराय भी कहते हैं। वह भारतवर्ष के शासन या व्यवस्था कार्य में भारत मन्त्री और पार्लिमैंट की आज्ञाओं का पालन करता या करवाता है, और, ब्रिटिश भारत के प्रान्तीय शासन की निगरानी

करता है इसलिए वह गवर्नर-जनरल कहलाता है। यह सम्राट् के प्रतिनिधी के रूप से रहता है। इस हैसियत से वह देशी राज्यों में जाता है, सभा या दरबार करता है, और घोषणा-पत्र आदि निकालता है, इसलिए वह वायसराय कहलाता है। 'वायसराय' का अर्थ बादशाह का प्रतिनिधी है। साधारण व्यवहार में 'गवर्नर-जनरल' और 'वायसराय' शब्दों में कोई भेद नहीं माना जाता। अपने प्रधान मन्त्री की सिफ़ारिश से सम्राट् किसी योग्य अनुभवी, एवं साधारणतः 'लार्ड' उपाधि-प्राप्त व्यक्ति को गवर्नर-जनरल नियत करता है। इसकी अवधि प्रायः पांच साल की होती है, परन्तु यह समय सुभीते के अनुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है। इसका वार्षिक वेतन २,५०,८०० रुपये है, इसके अतिरिक्त उसे बहुतसा भत्ता आदि मिलता है, जिससे वह अपने पद का कार्य सुविधा और मान मर्यादा पूर्वक कर सके, अर्थात् उसकी शान शौकत भली भांति बनी रहे।

गवर्नर-जनरल के अधिकार—अपनी प्रबन्धकारिणी सभा की अनुपस्थिति में गवर्नर-जनरल, किसी प्रान्तीय सरकार या किसी पदाधिकारी के नाम, स्वयं कोई आज्ञा निकाल सकता है। आवश्यकता होने पर वह ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग की शान्ति और सुशासन के लिए छः महिने के वास्ते अस्थायी क़ानून (आर्डिनैंस) बना सकता है। यदि वह चाहे तो किसी आदमी को, जिसे किसी अदालत ने फ़ौजदारी के मामले में अपराधी ठहराया हो, बिना किसी शर्त के, या कुछ शर्त लगाकर, क्षमा कर सकता है। उसे (१) भारत सरकार, (२) भारतीय व्यवस्थापक मंडल, (३) प्रान्तीय सरकारों, (४) प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों, और (५) नरेन्द्र मंडल के सम्बन्ध में विविध अधिकार हैं। उनका वर्णन आगे प्रसंगानुसार किया जायगा।

उसकी प्रबन्धकारिणी सभा (कौंसिल)—गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या प्रायः छः होती है, यह आवश्यकतानुसार घट बढ़ सकती है। हां, कम से कम तीन सदस्य ऐसे होने चाहियें जिन्होंने भारतवर्ष में दस वर्ष भारत सरकार की नौकरी की हो, क़ानूनी योग्यता के लिए एक सदस्य हाईकोर्ट का ऐसा वकील, अथवा इंगलैंड या आयर्लैंड का ऐसा बैरिस्टर होना चाहिये जिसने दस वर्ष वकालत (प्रैक्टिस) की हो। इस तरह का कोई नियम नहीं कि इस सभा में हिन्दुस्थानियों की अमुक संख्या रहे, प्रायः तीन सदस्य भारतीय होते हैं। प्रत्येक सदस्य सम्राट् की अनुमति से प्रायः पांच साल के लिए नियुक्त होता है।

उपर्युक्त छः सदस्यों में से प्रत्येक को भारत सरकार के एक एक विभाग का कार्य सुपुर्द रहता है। इन विभागों का नाम तथा कार्य क्षेत्र आवश्यकतानुसार समय समय पर बदलता रहता है। वर्तमान अवस्था में ये विभाग (१) अर्थ या 'फ़ाइनैंस' (२) स्वदेश या 'होम' (३) क़ानून (४) उद्योग तथा श्रम, (५) शिक्षा, स्वास्थ और भूमि, तथा (६) रेल और वाणिज्य विभाग हैं।* इनके अतिरिक्त, भारत सरकार के दो विभाग और होते हैं, विदेश विभाग, और सेना विभाग। विदेश विभाग स्वयं गवर्नर-जनरल के अधीन होता है, और सेना विभाग पर जंगी लाट अर्थात् 'कमांडरन चीफ़' का प्रभुत्व रहता है। अगर जंगी लाट गवर्नर-जनरल की प्रबन्धकारिणी सभा का सदस्य हो, तो सभा

* रेलों के लिए पृथक् व्यवस्था हो रही है, (इसका वर्णन आगे छटे परिच्छेद में किया जायगा)। इससे इन विभागों के नाम और कार्य क्षेत्र में शीघ्र परिवर्तन होने की सम्भावना है।

में उसका पद और स्थान गवर्नर-जनरल से दूसरे दर्जे पर होता है।

सेक्रेटरी तथा अन्य पदाधिकारी--प्रबन्धकारिणी सभा के प्रत्येक सदस्य को सहायता देने के लिए उपयुक्त प्रत्येक विभाग में एक सेक्रेटरी, एक डिप्टी सेक्रेटरी, कई ऐसिस्टेंट सेक्रेटरी तथा कुछ क्लर्क आदि रहते हैं। ये प्राय: भारतीय सिविल सर्विस के होते हैं, परन्तु गवर्नर-जनरल चाहे तो कुछ सेक्रेटरियों को भारतीय व्यवस्थापक सभा के निर्वाचित अथवा नामज़द, सरकारी या ग़ैर-सरकारी सदस्यों में से नियुक्त कर सकता है। ऐसे सेक्रेटरियों को कौंसिल-सेक्रेटरी कहते हैं। इनका पद उस समय तक बना रहता है, जब तक गवर्नर-जनरल चाहता है, और वे उसकी प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्यों को सहायता देने का ऐसा काम करते हैं जो उनके सुपुर्द किया जाय। इनका वेतन भारतीय व्यवस्थापक सभा निश्चय करती है। अगर कोई सेक्रेटरी छ: महिने तक उक्त सभा का सदस्य न रहे तो वह अपने पद से पृथक् होजाता है। सेक्रेटरी अपने विभाग के दफ्तर को संभालता है, और सभा की बैठक में उपस्थित रहता है।

भारत सरकार के अधीन डायरेक्टर-जनरल और इन्सपेक्टर-जनरल आदि कुछ और भी अधिकारी होते हैं, जिनका काम यह है कि भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारों के विविध विभागों के कार्य की निगरानी रखें और उन्हें यथोचित परामर्श दें।

प्रबन्धकारिणी सभा के अधिवेशन-- इस सभा का अधिवेशन प्राय: प्रति सप्ताह होता है। उसमें उन विषयों पर विचार होता है जिन पर गवर्नर-जनरल विचार करवाना चाहे, अथवा जिन्हें वह अस्वीकार करे और जिन पर कोई सदस्य

सभा का निर्णय चाहे। अधिवेशन में सभापति स्वयं गवर्नर-जनरल होता है। उसकी अनुपस्थिति में उप-सभापति उसका कार्य सम्पादन करता है। उप-सभापति के पद के लिए गवर्नर--जनरल इस सभा के सदस्यों में से किसी को नियुक्त करता है। सभा के अधिवेशन में गवर्नर--जनरल (या ऐसा अन्य व्यक्ति जो सभापति का कार्य करे) और सभा का एक सदस्य (कमांडरन चीफ़ को छोड़कर) कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के सब कार्यों का सम्पादन कर सकते हैं।

काम करने का ढंग----जब किसी विभाग सम्बन्धी कोई विचारणीय प्रश्न उठता है, तो उस विभाग का सेक्रेटरी उसका मसविदा तैयार करके गवर्नर-जनरल या उस सदस्य के सामने पेश करता है, जिसके अधीन उक्त विभाग हो। साधारणतया सदस्य इस पर जो निर्णय करता है वही अन्तिम फ़ैसला समझा जाता है,परंतु यदि प्रश्न विवादग्रस्त हो या उसमें सरकारी नीति की बात आती हो तो सेक्रेटरी से तैयार किया हुआ मसविदा सभा में पेश होता है, और यहां से जो हुक्म हो उसे सेक्रेटरी प्रकाशित करता है। सभा के साधारण अधिवेशनों में, मतभेद वाले प्रश्नों के विषय में, बहुमत से काम करना पड़ता है। यदि दोनों पक्ष समान हों तो जिस तरफ़ गवर्नर–जनरल (सभापति) मत प्रकट करे, उसीके पक्ष में फ़ैसला होता है। मगर गवर्नर–जनरल को इस बात का अधिकार रहता है कि यदि उसकी समझ में सभा का निर्णय देश के लिये हितकर न हो तो सभा के बहुमत की भी उपेक्षा कर, वह अपनी सम्मति अनुसार कार्य कर सकता है, परन्तु ऐसी प्रत्येक दशा में विरुद्ध पक्ष के दो सदस्यों की इच्छा होने पर उसे अपने कार्य की, कारण सहित सूचना देनी होती है, तथा सभा के सदस्यों ने उस विषय में जो कार्रवाई लिखी हो, उसकी कापी भारतमन्त्री के पास भेजनी होती है।

गवर्नर-जनरल आदि का अवकाश तथा अनुपस्थिति–भारतमन्त्री गवर्नर-जनरल को, और कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल की सिफ़ारिश पर कमांडरन-चीफ़ को, उनके कार्य-काल में एक बार चार मास तक की छुट्टी, सावजनिक हित के कारण, या स्वास्थ अथवा व्यक्तिगत कारण दे सकता है। और, कौंसिलयुक्त गवर्नर-जनरल, कमांडरन-चीफ़ को छोड़कर कौंसिल के अन्य सदस्यों को उनके कार्य काल में एक बार चार मास तक की छुट्टी स्वास्थ या अथवा व्यक्तिगत कारण देसकता है। इस छुट्टी के समय में, उक्त पदाधिकारियों को निर्धारित भत्ता मिलता है। गवर्नर-जनरल और कमांडरन-चीफ़ को तो, उक्त भत्ते के अतिरिक्त, सफ़र ख़र्च सम्बन्धी इतना भत्ता और भी मिलता है जितना भारत मंत्री उचित समझें। गवर्नर-जनरल और कमांडरन-चीफ़ के स्थानापन्न व्यक्ति की व्यवस्था सम्राट् की अनुमति से होती है।

यदि गवर्नर-जनरल का पद रिक्त होते समय उसका उत्तराधिकारी भारतवर्ष में न हो, तो मदरास, बम्बई या बंगाल के गवर्नरों में से जिसकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा पहिले हुई हो, वह गवर्नर–जनरल का कार्य करता है। जब तक उपर्युक्त गवर्नर द्वारा गवर्नर–जनरल का कार्य भार ग्रहण न किया जाय, कौंसिल का उप-सभापति और उसकी अनुपस्थिति में कौंसिल का सीनियर (अधिक समय से काम करने वाला) मेम्बर (कमांडरन-चीफ़ को छोड़कर), गवर्नर-जनरल का कार्य करता है।

अगर कमांडरन-चीफ़ को छोड़कर प्रबन्धकारिणी कौंसिल के किसी अन्य मेम्बर का स्थान ख़ाली होजाय, और उसका कोई उत्तराधिकारी विद्यमान न हो तो सकौंसिल गवर्नर-जनरल अस्थायी नियुक्ति करके उस रिक्त स्थान की पूर्ति कर सकता है।

भारत सरकार का कार्य—शासन सम्बन्धी विषयों के दो भाग हैं—(१) अखिल भारतवर्षीय या केन्द्रीय विषय, और (२) प्रान्तीय विषय। इसी वर्गीकरण के आधार पर भारत सरकार (केन्द्रीय सरकार) और प्रान्तीय सरकारों के कार्यों, तथा उनकी आय के श्रोतों का विभाग किया गया है। केन्द्रीय विषयों का उत्तरदायित्व भारत सरकार पर है। यदि किसी विषय के सम्बन्ध में यह सन्देह हो कि यह प्रान्तीय है या केन्द्रीय, तो इसका निपटारा कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल करता है, परन्तु इस विषय में अंतिम अधिकार भारत मन्त्री को है।

संक्षेप में, भारतवर्ष में मुख्य मुख्य केन्द्रीय विषय यह हैं:—(१) देश रक्षा; भारतीय सेना तथा हवाई जहाज़, (२) विदेशी तथा विदेशियों से सम्बन्ध (३) देशी राज्यों से सम्बन्ध, (४) राजनैतिक ख़र्च, (५) बड़े बन्दरगाह, (६) डाक, तार, टेलीफ़ोन और बेतार के तार, (७) आयात निर्यात-कर, नमक और अखिल भारतवर्षीय आय के अन्य साधन, (८) सिक्का, नोट आदि, (९) भारतवर्ष का सरकारी ऋण, (१०) पोस्ट आफ़िस सेविंग बैंक, (११) भारतीय हिसाब परीक्षक विभाग, (१२) दीवानी और फ़ौजदारी क़ानून तथा उनके कार्य विधान, (१३) व्यापार, बैंक और बीमा कम्पनियों का नियंत्रण, (१४) तिजारती कम्पनियां और समितियां, (१५) अफ़ीम आदि पदार्थों की पैदावार, खपत और निर्यात का नियंत्रण, (१६) कापी-राइट, (किताब आदि छापने का पूर्ण अधिकार) (१७) ब्रिटिश भारत में आना, अथवा यहां से विदेश जाना, (१८) केन्द्रीय पुलिस का संगठन, (१९) हथियार और युद्ध-सामग्री का नियंत्रण, (२०) मनुष्य गणना, और आंकड़े या 'स्टेटिसटिक्स' (२१) अखिल भारतवर्षीय नौकरियां, (२२) प्रान्तों की सीमा, और (२३) मज़दूरों सम्बन्धी नियंत्रण।

भारत सरकार के अधिकार—भारत सरकार को नियमों का पालन करते हुए ब्रिटिश भारत के शासन तथा सेना प्रबन्ध के निरीक्षण, तथा नियंत्रण का अधिकार है। वह ब्रिटिश भारत की किसी सम्पत्ति को बेच सकती है। वह प्रबन्धकारिणी सभा के अधिवेशन का स्थान निश्चय करती है। कुछ विषयों में प्रान्तीय सरकारों को उसकी आज्ञायें माननी होती हैं। वह प्रान्तों की सीमा नियत या परिवर्तन कर सकती हैं। प्रान्तीय सरकारों के निवेदन पर वह ब्रिटिश भारत के किसी हिस्से की शान्ति और सुशासन के लिए नियम बना सकती है। वह हाईकोर्टों का अधिकार-क्षेत्र बदल सकती है और दो साल तक के लिए जज नियत कर सकती है। वह एशिया के राज्यों से सन्धि या समझौता कर सकती है, विदेशी राज्यों में वह अपनी सत्ता और अधिकारों का उपयोग कर सकती है। उसे अपने अधीन भू-भाग किसी राज्य को देने और उसके अधीन भू-भाग लेने का अधिकार है। (भारतीय व्यवस्थापक मण्डल, प्रान्तीय सरकारों, प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों और देशी राज्यों के सम्बन्ध में उसके जो अधिकार है, उनका विवेचन अन्यत्र प्रसंगानुसार किया जायगा।) सारांश यह है कि सम्राट् की प्रतिनिधी होने के कारण उसे उसकी ऐसी शक्तियां और अधिकार प्राप्त हैं जो भारतीय प्रचलित व्यवस्था के विरुद्ध न हों।

भारत सरकार का उत्तरदायित्व—भारत सरकार अपने कार्यों के लिए ब्रिटिश पार्लिमैंट के प्रति उत्तरदायी है, भारतीय जनता के प्रति नहीं। अगर गवर्नर-जनरल या उसकी प्रबन्ध-कारिणी सभा के सदस्य इंगलैंड की सरकार से किसी बात में सहमत न हों तो या तो उन्हें अपने मत को दबाना पड़ता है, अथवा त्यागपत्र देना होता है। पहली हालत में वे ब्रिटिश

सरकार की कठपुतली मात्र हैं, दूसरी दशा में उन्हें कोई क़ानूनी अधिकार प्राप्त नहीं कि वे जनता के प्रति अपने मत की सत्यता प्रकट कर सकें। अगर वे भारतीय जनता से निर्वाचित, तथा उसके प्रति उत्तरदायी हों तो जब कभी ब्रिटिश सरकार उनके प्रस्ताव को रद्द करे, वे त्याग पत्र देकर अपने निर्वाचक संघों से अपील कर सकते हैं; और, अगर उन्हें उनका सहारा मिले तो ब्रिटिश सरकार उनके प्रस्तावों को स्वीकार करने पर वाध्य हो। भारत सरकार के सदस्य वर्तमान अवस्था में त्याग-पात्र दे सकते हैं, परन्तु इससे स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता, क्योंकि उनकी जगह नियुक्त होने वाले नये सदस्य भी अपने उच्च अधिकारियों की आज्ञानुसार चलने के लिये वाध्य रहते हैं।

पांचवां परिच्छेद

भारतीय व्यवस्थापक मण्डल

[सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल के सङ्गठन में बहुत परिवर्तन हो गया है, भविष्य में इसका नाम 'संघीय व्यवस्थापक मण्डल' होगा। परन्तु उपर्युक्त परिवर्तन संघ की स्थापना होने तक, सम्भवतः सन् १९४० ई० तक, अमल में नहीं आएंगे। तब तक इसका सङ्गठन आदि वर्तमान रूप में ही रहेगा। हम यहां इसी का वर्णन करते हैं। इसके भावी स्वरूप का विचार आगे इस पुस्तक के दूसरे खण्ड में किया जायगा।]

भारतीय व्यवस्थापक मण्डल अर्थात् 'इण्डियन लेजिस्लेचर' के दो भाग हैं:—(१) राज्य परिषद या 'कौंसिल-आफ़-स्टेट' और (२) भारतीय व्यवस्थापक सभा या 'लेजिस्लेटिव एसेम्बली'। ये दोनों सभाएँ इंगलैण्ड की सरदार सभा और प्रतिनिधी सभा के ढंग पर बनायी गयी हैं, यद्यपि यहां राज्य परिषद में निर्वाचित सदस्य भी रहते हैं; यही नहीं, उनका आधिक्य भी होता है।

सिवाय कुछ खास हालतों के कोई क़ानूनी मसविदा पास हुआ नहीं समझा जाता, जब तक दोनों सभाएँ उसे मूल रूप में, अथवा कुछ संशोधनों सहित, स्वीकार न कर लें। दोनों सभाएँ कुछ सदस्यों का स्थान ख़ाली रहने पर भी अपना कार्य कर सकती हैं। किसी सरकारी पदाधिकारी को निर्वाचित नहीं किया जा सकता; अगर सभा का कोई ग़ैर-सरकारी सदस्य सरकारी नौकरी करले तो उसकी जगह ख़ाली हो जाती है। अगर

किसी सभा का कोई निर्वाचित सदस्य दूसरी सभा का सदस्य हो जाय तो पहली सभा में उसकी जगह ख़ाली हो जाती है। अगर किसी व्यक्ति का दोनों सभाओं में निर्वाचन हो जाय तो वह किसी सभा में सम्मिलित होने से पूर्व, लिखकर यह सूचित करेगा कि वह कौनसी सभा का सदस्य रहना चाहता है; ऐसा होने पर दूसरी सभा में उसकी जगह ख़ाली हो जायगी।

गवर्नर-जनरल की प्रबन्धकारिणी सभा का हर एक सदस्य दोनों सभाओं में से किसी एक सभा का सदस्य नामज़द किया जाता है; उसे दूसरी सभा में बैठने और बोलने का अधिकार रहता है, लेकिन वह दोनों सभाओं का सदस्य नहीं हो सकता। इन सभाओं का संगठन जानने से पूर्व मुख्य मुख्य निर्वाचन नियम जान लेना आवश्यक है।

निर्वाचक संघ—निर्वाचन के सुभीते के लिये प्रत्येक प्रान्त, ज़िला या नगर सरकार द्वारा कई भागों या क्षेत्रों में विभक्त किया गया है, प्रत्येक क्षेत्र के निर्वाचक समूह को निर्वाचक संघ कहते हैं। प्रत्येक निर्वाचक संघ अपनी ओर से प्रायः एक एक (कहीं कहीं एक से अधिक) प्रतिनिधी चुनता है।

भारतवर्ष में दो प्रकार के निर्वाचक संघ हैं, साधारण और विशेष। व्यवस्थापक सभा या परिषदों (तथा कुछ स्थानों में म्युनिसिपैलिटियों और ज़िला-बोर्डों) के लिये साधारण निर्वाचक संघ, जाति-गत निर्वाचक संघों में विभाजित किये गये हैं, जैसे मुसलमानों का निर्वाचक संघ, ग़ैर-मुसलमानों का निर्वाचक संघ, इत्यादि। भारतीय व्यवस्थापक सभा (तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के लिये) जाति-गत निर्वाचक संघ, प्रायः नगरों और ग्रामों में विभक्त किये गये हैं, जैसे मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक संघ, मुसलमानों का नगर-निर्वाचक संघ, इत्यादि।

विशेष निर्वाचक संघों में ज़मीदार, विश्व विद्यालय, व्यापारी, खान, नील और खेती, तथा उद्योग और वाणिज्य वाले निर्वाचक होते हैं।

कौन कौन व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकते ?—निम्न लिखित व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकते :—

१—जो ब्रिटिश प्रजा न हों।

[देशी राज्यों के नरेश और प्रजा निर्वाचक हो सकते हैं।]

२—जो अदालत से पागल ठहराये गये हों।

३—जो इक्कीस वर्ष से कम आयु के हों।

[बर्मा में अठारह वर्ष या इससे अधिक आयु के व्यक्ति निर्वाचक हो सकते हैं।]

४—जिसे भारतीय दंड विधान के ६-अ परिच्छेद के अनुसार (सरकारी अफ़सर के विरुद्ध) ऐसे अपराध में सज़ा दी गयी हो, जिसके लिये छः मास से अधिक दंड दिया जा सकता है।

[दण्डित होने के पांच वर्ष बाद वह व्यक्ति निर्वाचक हो सकता है।]

५—जो निर्वाचन-कमिश्नरों द्वारा निर्वाचन के समय धमकी या रिश्वत आदि दूषित कार्य करने का अपराधी ठहराया गया हो।

[कुछ अपराधों में उस समय से पांच वर्ष बाद, और कुछ में तीन वर्ष बाद ऐसा व्यक्ति निर्वाचक हो सकता है।]

नोट—कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि उपर्युक्त (४) और (५) में उल्लिखित व्यक्तियों को उक्त अवधि से पूर्व भी निर्वाचक सूची में दर्ज करे जाने का आदेश कर सकता है। स्त्रियों को अब प्रायः सब प्रान्तों में मताधिकार है।

राज्य परिषद—राज्य परिषद में ६० सदस्य होते हैं; ३३ निर्वाचित, और सभापति को मिलाकर २७ गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द। नामज़द सदस्यों में २० तक (अधिक नहीं) अधिकारियों में से हो सकते हैं। बरार प्रान्त का एक सदस्य निर्वाचित होता है, परन्तु यह प्रान्त क़ानूनन ब्रिटिश भारत में न होने से इसका निर्वाचित सदस्य सरकार द्वारा नामज़द कर दिया जाता है। अतः वास्तव में निर्वाचित सदस्य ३४, और (सभापति को छोड़ कर) नामज़द सदस्य २५ होते हैं। इनका विशेष व्यौरा अगले पृष्ठ की तालिका से स्पष्ट होगा।

राज्य परिषद का सभापति साधारणतः उसके सदस्यों द्वारा निर्वाचित होकर, गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किया जाता है। परिषद के सदस्यों के नामों से पहले सम्मानार्थ 'माननीय' ('आनरेबल') शब्द लगाया जाता है। परिषद का निर्वाचन प्रायः प्रति पांचवें वर्ष होता है। गवर्नर-जनरल इस समय को आवश्यकतानुसार घटा बढ़ा सकता है।

सरकार या प्रान्त	निर्वाचित						नामज़द		
	जनरल	ग़ैर-मुसलिम	मुसलिम	सिक्ख	योरपियन व्यापारी	कुल	सरकारी	ग़ैर-सरकारी	कुल
भारत सरकार	...	...	...	...	...	...	१२	...	१२
मदरास	...	४	१	...	...	५	१	१	२
बम्बई	...	३	२	...	१	६	१	१	२
बंगाल	...	३	२	...	१	६	१	१	२
संयुक्त प्रान्त	...	३	२	...	...	५	१	१	२
पंजाब	...	१	१½*	१	...	३½*	१	२	३
बिहार-उड़ीसा	...	२½*	१	...	...	३½*	१	...	१
बर्मा	१	...	...	...	१	२	...	...	...
मध्यप्रान्त बरार	२	...	...	...	...	२	...	...	...
आसाम	...	½†	½†	...	...	१	...	...	...
देहली	...	...	...	...	...	...	१	...	१

* एक निर्वाचन में पञ्जाब के मुसलिम निर्वाचकों को दो, और बिहार-उड़ीसा के ग़ैर-मुसलिम निर्वाचकों को दो; और दूसरे निर्वाचन में पंजाब के मुसलिम निर्वाचकों को एक, और बिहार-उड़ीसा के ग़ैर-मुसलिम निर्वाचकों को तीन, प्रतिनिधी चुनने का अधिकार होता है।

† एक निर्वाचन में ग़ैर-मुसलिम और एक निर्वाचन में मुसलिम निर्वाचकों को बारी बारी से एक सदस्य चुनने का अधिकार है।

निर्वाचक की योग्यता—जिन व्यक्तियों में निर्वाचक होने की (पहले बतलायी हुई) अयोग्यताएँ न हों, तथा जिनमें निम्न लिखित योग्यताएँ हों, वे ही निर्वाचक सूची में अपना नाम दर्ज करा सकते हैं* :—

१—जो निर्वाचन क्षेत्र की सीमा के अन्दर रहने वाले हों, और

२-(क) जिनके अधिकार में निर्धारित मूल्य की ज़मीन हो, या

(ख) जो निर्धारित आय पर आय-कर देते हों, या

(ग) जो किसी व्यवस्थापक सभा या परिषद् के सदस्य हों, या रहे हों, या

(घ) जो किसी म्युनिसिपैलिटी या ज़िला--बोर्ड के निर्धारित पदाधिकारी हों, या रहे हों, या

(च) जिन्हें किसी विश्व-विद्यालय की निर्धारित योग्यता प्राप्त हो, या

(छ) जो किसी सहकारी बैंकके निर्धारित पदाधिकारी हों।

(ज) जिन्हें सरकार द्वारा शमशुल-उलमा या महामहोपाध्याय की उपाधि मिली हो।

नोट—किसी जाति-गत निर्वाचक संघ में वे ही व्यक्ति निर्वाचक होसकते हैं जो उसी जाति के हों, जिस जाति का वह निर्वा-

---

* जिन व्यक्तियों का नाम सरकार द्वारा तैयार की हुई निर्वाचक सूची में दर्ज होता है, उन्हें ही मत देने का अधिकार होता है, औरों को नहीं।

चक संघ है, जैसे मुसलमान निर्वाचक संघ से मुसलमान, और ग़ैर–मुसलमान निर्वाचक संघ से ग़ैर-मुसलमान व्यक्ति निर्वाचक हो सकते हैं; दूसरे व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकते।

भिन्न भिन्न प्रान्तों में निर्वाचक की योग्यता प्राप्त करने के लिये आयकर या ज़मीन के लगान की सीमा अलग अलग है। कुछ प्रांतों में मुसलमान निर्वाचकों के लिये आर्थिक योग्यता का परिमाण कुछ कम है। तथापि बड़े बड़े ज़मींदारों और पूँजी वालों को ही निर्वाचन अधिकार दिया गया है; इनकी संख्या देश में बहुत कम है *।

सदस्य कौन होसकता है----राज्य परिषद के लिये वे ही व्यक्ति मेम्बरी के उम्मेदवार होसकते हैं या निर्वाचित या नामज़द किये जासकते हैं, जिनका नाम किसी निर्वाचक संघ की सूची में दर्ज हो, बशर्ते कि—

१—वे ऐसे वकील न हों, जो किसी न्यायालय द्वारा वकालत करने के अधिकार से वंचित कर दिये गये हों।

[यदि भारत सरकार या कोई प्रान्तीय सरकार चाहे तो ऐसे व्यक्ति को उम्मेदवार होने का अधिकार देसकती है।]

२—वे ऐसे दिवालिये न हों, जो बरी न किये गये हों, अर्थात् जिनका पूरा भुगतान न हुआ हो।

---

* सन् १९३० ई० के निर्वाचन में राज्य परिषद के निर्वाचकों की संख्या समस्त ब्रिटिश भारतवर्ष में केवल ४०,५१३ थी । इस में से ११,५०३ निर्वाचकों ने अपने मताधिकार का उपयोग किया था। इन के अतिरिक्त कुछ निर्वाचक ऐसे थे जिन्हें मत देने का अवसर ही नहीं मिला, क्योंकि उनके निर्वाचक संघों से उम्मेदवार बिना विरोध चुनलिये गये।

३—उनकी आयु २५ वर्ष से कम न हो।

४—वे ऐसे व्यक्ति न हों जिनको फ़ौजदारी अदालत द्वारा एक वर्ष से अधिक दंड, या देश-निकाला दिया जा चुका हो।

[दंड, समाप्त होने के पांच वर्ष बाद, और भारत सरकार चाहे तो पहले भी, एसे दोषी व्यक्ति उम्मेदवार हो सकते हैं।]

५—वे सरकारी नौकर न हों।

जिन प्रान्तों की व्यवस्थापक परिषदें अपने यहां प्रस्ताव पास करके स्त्रियों को सदस्यता का अधिकार देदें, उन प्रान्तों की स्त्रियां भारतीय व्यवस्थापक सभा की सदस्य हो सकती हैं*। राज्य परिषद् द्वारा ऐसा प्रस्ताव पास हो जाने पर, स्त्रियां राज्य परिषद की भी सदस्य हो सकती हैं।

निर्वाचित और नामज़द सदस्यों को राजभक्ति की शपथ लेने के बाद, राज्य परिषद के कार्य में भाग लेने का अधिकार होता है।

भारतीय व्यवस्थापक सभा—इस सभा के सदस्यों की कुछ संख्या १४३ है, इसमें ४० नामज़द हैं। नामज़द सदस्यों में २६ से अधिक सरकारी नहीं होसकते। सदस्यों की कुल संख्या घट बढ़ सकती है, और निर्वाचित तथा नामज़द सदस्यों का परस्पर में अनुपात भी घट बढ़ सकता है, परन्तु कम से कम ५/७

* अब प्रायः सब प्रान्तों की व्यवस्थापक परिषदों ने स्त्रियों को सदस्यता का अधिकार देदिया है।

सदस्य निर्वाचित होने चाहियें और नामज़द सदस्यों में कम से कम एकतिहाई ग़ैर-सरकारी होने चाहियें। इनका विशेष व्यौरा नीचे दिया जाता है:—

सरकार या प्रान्त	निर्वाचित							नामज़द			कुल जोड़
	ग़ैर-मुसलिम	मुसलिम	सिक्ख	योरपियन	ज़मींदार	व्यापारी मंडल	जोड़	सरकारी	ग़ैर-सरकारी	जोड़	
भारत सरकार	...	...	...	...	...	...	...	१२	...	१२	१२
मदरास	१०	३	...	१	१	१	१६	२	२	४	२०
बम्बई	७	४	...	२	१	२	१६	२	४	६	२२
बंगाल	६	६	...	३	१	१	१७	२	३	५	२२
संयुक्त प्रान्त	८	६	...	१	१	...	१६	२	१	३	१९
पंजाब	३	६	२	...	१	...	१२	१	१	२	१४
बिहार-उड़ीसा	८	३	...	...	१	...	१२	१	१	२	१४
मध्यप्रान्त	३	१	...	...	१	...	५	१	...	१	६
आसाम	२	१	...	१	...	...	४	१	...	१	५
बर्मा	३ ग़ैर-योरपियन			१	...	...	४	१	...	१	५
बरार	...	...	...	...	...	...	...	...	२	२	२
अजमेर	...	...	...	...	...	...	...	...	१	१	१
देहली	...	...	...	१ जनरल			१	...	...	...	१

व्यवस्थापक सभा की आयु तीन वर्ष है, परन्तु गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह इसका समय आवश्यकतानुसार घटा बढ़ा सके।

जिस तरह ब्रिटिश पार्लिमेन्ट के मेम्बरों को एम. पी. (M. P.) कहा जाता है, भारतीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों को एम. एल. ए. (M. L. A.) का पद रहता है। यह " मेम्बर लेजिस्लेटिव एसेम्बली " का संक्षेप है। इन्हें राज्य परिषद के सदस्यों की भांति माननीय ('आनरेबल') की पदवी नहीं दी जाती।

निर्वाचक की योग्यता—जिन व्यक्तियों में निर्वाचक होने की अयोग्यताएँ न हों, और निम्न लिखित योग्यताएँ हों, वे भारतीय व्यवस्थापक सभा के साधारण निर्वाचक संघ में निर्वाचक हो सकते हैं:—

१—जो निर्वाचक संघ के क्षेत्र की सीमा के अन्दर रहने वाले हों, और

२ (क)—जो निर्धारित या उससे अधिक मूल्य की ज़मीन के मालिक हों, या

(ख)—जिनके अधिकार में निर्धारित या उससे अधिक मूल्य की ज़मीन हो, या

(ग)—जो ऐसे मकान के मालिक हों, या ऐसे मकान में रहते हों, जिसका वार्षिक किराया निर्धारित रक़म या उससे अधिक हो, या

(घ)—जो ऐसे शहरों में, जहां म्युनिसिपैलिटियों द्वारा हैसियत-

कर लिया जाता है, निर्धारित आय या उससे अधिक पर म्युनिसिपैलिटी को हैसियत-कर देते हों, या

(च)—जो भारत सरकार को आय-कर देते हों अर्थात् जिनकी कृषि की आय के अतिरिक्त, अन्य वार्षिक आय १००० रु० या इससे अधिक हो।

नोट १—किसी जाति-गत निर्वाचक संघ से वे ही व्यक्ति निर्वाचक हो सकते हैं जो उस जाति के हों, जिस जाति का वह निर्वाचक संघ है।

नोट २—भारतीय व्यवस्थापक सभा के निर्वाचक होने के लिए साम्पत्तिक योग्यता राज्य परिषद् के निर्वाचकों की अपेक्षा कम रखी गयी है; और, यह योग्यता भिन्न भिन्न प्रान्तों में पृथक् पृथक् है।

विशेष निर्वाचक संघों के वास्ते, ज़मींदारों और व्यापारियों के लिये, भिन्न भिन्न प्रान्तों के भिन्न भिन्न भागों में विविध मालगुज़ारी या आय-कर देने से निर्वाचक की योग्यता मानी जाती है।

जो व्यक्ति भारतीय व्यवस्थापक सभा (एवं राज्य परिषद्) के लिये किसी निर्वाचक संघ से खड़ा होना चाहता है, उसे ५००) ज़मानत के रूप में जमा करने होते हैं। यदि उसके निर्वाचक संघ के तमाम मतों में से, उसके पक्ष में, आठवें हिस्से से कम आवें तो यह ज़मानत ज़प्त हो जाती है।

निर्वाचन नियमों की कुछ आलोचना—व्यवस्थापक मण्डल के सदस्यों के निर्वाचन में जनता के अधिकांश लोगों को मत देने का अधिकार नहीं होता। इसलिये इसकी सभाएं संपूर्ण जनता की प्रतिनिधी नहीं कही जा सकतीं। राज्य परिषद् के

विषय में पहिले लिखा जा चुका है। भारतीय व्यवस्थापक सभा की स्थिति उसकी अपेक्षा कुछ अच्छी होने पर भी संतोषप्रद नहीं है।* ज़मीदारों को अलग प्रतिनिधी भेजने का अधिकार दिया गया है, परन्तु किसानों को ऐसा अधिकार (पृथक् रूप से) नहीं दिया गया। जाति विशेष के पृथक् निर्वाचन-अधिकार ने यहां हिन्दू मुसलमानों में बड़ा वैमनस्य बढ़ा दिया है। मुसलमानों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधी प्रायः हिन्दुओं के हितों की ओर ध्यान नहीं देते, और ग़ैर-मुसलमान निर्वाचक संघों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों से मुसलमान बहुत आशंकित रहते हैं। इस प्रकार राष्ट्र-निर्म्माण कार्य में बड़ा विघ्न हो रहा है। पुनः मुसलमान अपने अधिकाधिक प्रतिनिधी रखे जाने का दावा करते जा रहे हैं। निदान, निर्वाचन नियम बहुत असंतोष-प्रद हैं।

सदस्य और सभापति--भारतीय व्यवस्थापक सभा की सदस्यता के नियम वैसे ही हैं, जैसे राज्य परिषद की सदस्यता के हैं, और ये हम पहले बता आये हैं। इस सभा के सभापति और उप-सभापति, सभा के ऐसे सदस्य होते हैं जिसे यह चुनले, और गवर्नर-जनरल पसन्द करले। ये उस समय तक ही पदाधिकारी रहते हैं, जब तक वे इस सभा के सदस्य होते हैं।

व्यवस्थापक मंडल का कार्य क्षेत्र—भारतीय व्यवस्थापक मंडल ऐसी संस्था नहीं है जो स्वतन्त्रता-पूर्वक क़ानून बना सके। उसके अधिकारों की सीमा बहुत परिमित है। वह निम्न लिखित

* सन् १९३० के निर्वाचन में भारतीय व्यवस्थापक सभा के कुल निर्वाचकों की संख्या केवल १२, १२, १७२ थी। जिन निर्वाचक संघों में उम्मेदवारों की संख्या, चुने जाने वाले सदस्यों की निर्धारित संख्या से अधिक थी, उनके निर्वाचक ४,६८,४९१ थे, इनमें से १,२४,८५२ निर्वाचकों ने अपने मताधिकार का उपयोग किया था।

विषयों के सम्बन्ध में क़ानून बना या बदल सकता है:—(क) ब्रिटिश भारत के सब आदमियों, अदालतों, स्थानों और ऐसे विषयों के लिए जो प्रान्तीय नहीं हैं। (ख) देशी या भारत के वैदेशिक राज्यों में रहने वाली ब्रिटिश प्रजा और नौकरों के लिए। (ग) सम्राट् की भारतीय प्रजा के लिए, जो ब्रिटिश भारत में या बाहर (किसी भी देश में) हो।

जब तक पार्लिमैंट के ऐक्ट से स्पष्टतया ऐसा अधिकार प्राप्त न हो, भारतीय व्यवस्थापक मंडल ऐसा क़ानून नहीं बना सकता, जो पार्लिमैंट के भारतवर्ष की राज्य पद्धति सम्बन्धी किसी ऐक्ट, या अधिकार, अथवा सम्राट् के आदेश पर प्रभाव डाले, या उसे संशोधित करे।

व्यवस्थापक मण्डल की कार्य पद्धति—व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं के अधिवेशन साधारणतः दिन के ग्यारह से पांच बजे तक होते हैं। आरम्भ के, पहिले घंटों में प्रश्नों के उत्तर दिये जाते हैं। सभाओं के अन्य कार्य के दो भाग होते हैं, सरकारी और ग़ैर-सरकारी। ग़ैर-सरकारी काम के लिए गवर्नर-जनरल द्वारा कुछ दिन निर्धारित कर दिये जाते हैं, इनमें ग़ैर-सरकारी सदस्यों के प्रस्तावों पर ही विचार होता है, अन्य दिनों में सरकारी काम होता है। सेक्रेटरी विचारणीय विषयों की सूची तैयार करता है, उसी के अनुसार कार्य होता है, और सभापति की आज्ञा बिना, किसी नवीन विषय पर विचार नहीं किया जाता।

राज्य परिषद् में १५, और व्यवस्थापक सभा में २५ सदस्यों की उपस्थिति के बिना कार्यारम्भ नहीं हो सकता। सदस्यों के बैठने का क्रम सभापति निश्चय करता है। सभाओं की भाषा अंगरेज़ी रखी गयी है; सभापति अंगरेज़ी न जानने वाले सदस्य

को देशी भाषा में बोलने की अनुमति देसकता है। प्रत्येक सदस्य सभापति को सम्बोधन करके बोलता है और उसी के द्वारा प्रश्न कर सकता है। जहां तक कोई सदस्य सभाओं के नियमों की अवहेलना न करे, उसे भाषण करने की स्वतन्त्रता है; और भाषण या मत देने के कारण, किसी सदस्य पर मुक़दमा नहीं चलाया जा सकता। प्रत्येक विषय का निर्णय सभापति को छोड़ कर सभा के सदस्यों के बहुमत से होता है; दोनों ओर समान मत होने से सभापति के मत से निपटारा हो जाता है। सभा में शान्ति रखना सभापति का कर्तव्य है। और, इसके लिए आवश्यकता होने पर वह किसी सदस्य का एक दिन, या एक वर्ष तक के लिए सभा में आना बन्द कर सकता है, अथवा अधिवेशन भी स्थगित कर सकता है।

प्रश्न—व्यवस्थापक मण्डल की सभाओं का कोई सदस्य निर्धारित नियमों का पालन करते हुए सार्वजनिक महत्व का प्रश्न पूछ सकता है। प्रश्न उनही विषयों के हो सकते हैं, जिनके सम्बन्ध में प्रस्ताव उपस्थित किये जा सकते हैं। जब एक प्रश्न का उत्तर मिल चुके तो ऐसा भी प्रश्न पूछा जा सकता है जिससे पूर्व प्रश्न के विषय के सम्बन्ध में अधिक प्रकाश पड़े। सभापति को अधिकार है कि कुछ दशाओं में वह किसी प्रश्न, उसके अंश, या पूरक प्रश्न के पूछे जाने की अनुमति न दे। किसी सरकारी विभाग के सदस्य से वही प्रश्न किये जा सकते हैं,जिनसे सरकारी तौर पर उसका सम्बन्ध हो; ऐसे प्रश्न पूछे जाने की सूचना कम से कम दस दिन पहले देनी होती है।

प्रस्ताव---व्यवस्थापक मंडल के प्रस्ताव केवल सिफ़ारिश के रूप में होते हैं, वे भारत सरकार पर बाध्य नहीं होते। इस संस्था में निम्न लिखित विषयों के प्रस्ताव उपस्थित नहीं हो सकते:—

ब्रिटिश सरकार, गवर्नर-जनरल, या कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल का विदेशी राज्यों या भारत के देशी राज्यों से सम्बन्ध, देशी राज्यों का शासन, किसी देशी नरेश सम्बन्धी कोई विषय, और ऐसे विषय जो सम्राट् के अधिकार-गत किसी स्थान की अदालत में पेश हों।

निम्न लिखित विषयों के लिये गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति बिना, कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जासकता:- धार्मिक विषय या रीतियां, जल, स्थल, या वायु सेना, विदेशी राज्यों या भारत के देशी राज्यों से सरकार का सम्बन्ध, प्रान्ताय विषय का नियंत्रण, प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद का कोई क़ानून रद्द या संशोधन करना, गवर्नर-जनरल के बनाये किसी ऐक्ट या आर्डिनैंस को रद्द या संशोधन करना।

भारतीय व्यवस्थापक सभा या राज्य परिषद में प्रस्ताव दो प्रकार के होते हैं, (१) किसी आवश्यक विषय पर वादानुवाद करने के लिये सभा के साधारण कार्य को स्थगित करने के, और (२) भारत सरकार से किसी कार्य के करने की सिफ़ारिश के। पहिले प्रकार का प्रस्ताव, सभा के अधिवेशन में प्रश्नोत्तर बाद ही, सेक्रेटरी को सूचना देकर, किया जासकता है। सभापति इस प्रस्ताव को पढ़कर सुना देता है। यदि किसी सदस्य को, प्रस्ताव करने की अनुमति देने में आपत्ति हो तो सभापति कहता है कि अनुमति देने के पक्ष वाले सदस्य खड़े होजांय। यदि राज्य परिषद में १५, व्यवस्थापक सभा में २५ सदस्य खड़े होजांय तो सभापति यह सूचित करदेता है कि अनुमति है, और ४ बजे या इससे पहले, प्रस्ताव पर विचार होगा।

दूसरे प्रकार के प्रस्ताव के लिये, प्रायः १५ दिन और कुछ दशाओं में इससे अधिक समय पहले, सूचना देनी होती है।

प्रस्ताव उपस्थित किया जासकता है या नहीं, इसका निर्णय सभापति करता है। अधिवेशन से दो दिन पहले एक काग़ज़ पर १, २, ३, आदि संख्याएं लिखकर उसे कार्यालय में रखदिया जाता है। जिन सदस्यों के प्रस्ताव उपस्थित किये जा सकने का निर्णय सभापति द्वारा होजाता है, वे उन संख्याओं के सामने अपना नाम लिख देते हैं। तीसरे दिन काग़ज़ के उतने टुकड़े लेकर उन पर क्रमशः १, २, ३, आदि संख्याएं लिखी जाती हैं, और उन्हें एक बक्स में डाल दिया जाता है। इन प्रस्तावों पर विचार करने के लिये जो दिन नियत होते हैं, उन दिनों में जितने प्रस्ताव उपस्थित होसकने की सम्भावना हो, उतने काग़ज़ों को, एक आदमी बक्स में से बिना विचारे, एक एक करके, निकालता है। जिस क्रम से काग़ज़ निकलते हैं, उसी क्रम से, नाम एक सूची में लिख दिये जाते हैं *। अधिवेशन में इस सूची के क्रम के अनुसार ही प्रस्ताव उपस्थित किये जाते हैं। सभापति की आज्ञा बिना किसी अन्य प्रस्ताव पर विचार नहीं होता।

सभापति की अनुमति से प्रस्तावक अपना प्रस्ताव अन्य सदस्य से उपस्थित करा सकता है, और वह चाहे तो उसे वापिस भी ले सकता है। प्रस्तावक के अनुपस्थित होने पर उसका प्रस्ताव रद्द समझा जाता है। प्रस्ताव में संशोधन के लिए कोई सदस्य संशोधक प्रस्ताव कर सकता है, पर इसके लिए भी साधारणतः दो दिन पहले सूचना देनी पड़ती है।

क़ानून किस प्रकार बनते हैं ?—जब किसी सभा का कोई सदस्य किसी क़ानूनी मसविदे (बिल) को पेश करना चाहता है तो वह नियमानुसार उसकी सूचना देता है। यदि उसके पेश

* नामों का कम निश्चय करने के इस ढंग को 'बैलट' पद्धति कहते हैं।

करने के लिये नियम के अनुसार, पहले ही गवर्ननर--जनरल की अनुमति लेने की आवश्यकता हो, तो वह मांगी जाती है। अनुमति मिलजाने पर, निश्चित किये हुए दिन मसविदा सभा में पेश किया जाता है। उस समय पूरे मसविदे के सिद्धांतों पर विचार होता है। यदि आवश्यकता हो तो मसविदा साधारणतया उसी सभा की (जिसका सदस्य मसविदा पेश करता हो) या दोनों सभाओं की सिलैक्ट कमेटी * में विचारार्थ भेजा जाता है। यह कमेटी उसके सम्बन्ध में संशोधन, परिवर्तन, या परिवर्द्धन आदि करके अपनी रिपोर्ट देती है। पश्चात् बिल के वाक्यांशों पर एक एक करके विचार किया जाता है और वे आवश्यक सुधार सहित पास किये जाते हैं। फिर सम्पूर्ण मसविदा, स्वीकृत संशोधनों सहित, पास करन का प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है। यह प्रस्ताव पास होजाने पर मसविदा दूसरी सभा में भेजा जाता है। वहां पर फिर इसी क्रम के अनुसार विचार होता है। यदि मसविदा यहां बिना संशोधन के पास होजाय तो उसे गवर्नर–जनरल की स्वीकृति के लिये भेज दिया जाता है। और, स्वीकृति मिल जाने पर वह क़ानून बन जाता है। अगर मसविदा दूसरी सभा में संशोधनों सहित पास हो तो उसे इस निवेदन सहित लौटाया जाता है कि पहली सभा उन संशोधनों पर सहमत होजाय।

* इस में सरकार का क़ानून–सदस्य, मसविदे से सम्बन्ध रखने वाले विभाग का सदस्य, मसविदे को पेश करने वाला तथा तीन या अधिक अन्य सदस्य होते हैं।

हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक विचारों से सम्बन्ध रखने वाले क़ानूनों के मसविदों पर विचार करने के लिए दो पृथक् पृथक् स्थायी समितियां हैं। इन समितियों में, अधिकांश में उस उस जाति के ही सुधारक तथा कट्टर सदस्य होते हैं। उनके अतिरिक्त इन में उस उस जाति के क़ानूनी विशेषज्ञ भी सम्मिलित किये जाते हैं।

संशोधनों पर फिर वही कार्रवाई, सूचना देने विचार करने, स्वीकृति या अस्वीकृति का समाचार भेजने आदि की, कीजाती है अगर अन्त में मसविदा इस सूचना से लौटाया जाय कि दूसरी सभा ऐसे संशोधनों पर अनुरोध करती है, जिन्हें पहली सभा मानने को तैयार नहीं है तो वह सभा चाहे तो, (१) मसविदे को रोक दे, या (२) अपने सहमत न होने की रिपोर्ट गवर्नर-जनरल के पास छः मास तक भेजदे। दूसरी परिस्थिति में, मसविदा और संशोधन दोनों सभाओं के ऐसे संयुक्त अधिवेशन में पेश होते हैं जो गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार करे। इस का अध्यक्ष राज्य परिषद का सभापति होता है। मसविदे और विचारणीय संशोधनों पर विचार या वादानुवाद होता है; जिन संशोधनों के पक्ष में बहुमत होता है, वे स्वीकृत समझे जाते हैं। इस प्रकार मसविदा, स्वीकृत संशोधनों सहित पास होता है और यह मसविदा दोनों सभाओं से पास हुआ समझा जाता है।

राज्य परिषद से हानि—राज्य परिषद ने समय समय पर भारतीय व्यवस्थापक सभा द्वारा स्वीकृत क़ानूनी मसविदे अस्वीकार कर दिये, तथा, ऐसे प्रस्ताव पास कर दिये जिनसे भारतीय व्यवस्थापक सभा का घोर विरोध था। भारतीय व्यवस्थापक सभा राज्य परिषद की अपेक्षा, कहीं अधिक निर्वाचकों की प्रतिनिधि सभा है। इस लिये राज्य परिषद का उक्त कार्य सर्व साधारण के हितों का घातक है। यद्यपि राज्य परिषद में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत है, वास्तव में इसके अधिकांश सदस्य ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो लोकमत की परवाह नहीं करते। ऐसा होना स्वाभाविक ही है, कारण कि उनके चुनने वाले प्रायः रईस, ज़मीदार, धनी, जागीरदार आदि हैं, और, वे प्रायः ऐसे ही आदमी को चुनते हैं जो सरकार की ओर झुकने वाले हों।

अधिकारी इस परिषद की आड़ में अपनी मनमानी कार्रवाई कर सकते हैं। इस प्रकार इससे होने वाली हानि स्पष्ट है।

गवर्नर-जनरल के व्यवस्था सम्बन्धी अधिकार— गवर्नर-जनरल को यह अधिकार है कि वह राज्य परिषद के सदस्यों में से किसी को सभापति नियुक्त करदे, अथवा ख़ास हालतों में, किसी दूसरे सज्जन को सभापति का कार्य करने के लिये नियत करे। वह राज्य परिषद तथा भारतीय व्यवस्थापक सभा के सन्मुख भाषण कर सकता है, और इस काम के लिये उक्त सभाओं का अधिवेशन करा सकता है। कई विषयों के मसविदे उसकी अनुमति बिना, किसी सभा में पेश नहीं हो सकते। जिन प्रस्तावों के उपस्थित किये जाने के लिये, उसको अनुमति की आवश्यकता नहीं है, उनमें से भी किसी प्रस्ताव या उसके किसी अंश का उपस्थित किया जाना वह इस आधार पर अस्वीकार कर सकता है कि उसके उपस्थित किये जाने से सार्वजनिक हित को हानि पहुंचेगी। दोनों सभाओं में पास होने पर भी मसविदा उसकी स्वीकृति बिना क़ानून नहीं बनता। उसे यह अधिकार है कि वह दोनों सभाओं से पास हुए मसविदे को स्वीकार करे, अस्वीकार करे, या सम्राट् की स्वीकृति के लिये रख छोड़े। अन्तिम दशा में मसविदे पर सम्राट् की स्वीकृति मिलने से ही, वह क़ानून बन ससता है।

जब कोई सभा किसी क़ानून के मसविदे के उपस्थित किये जाने को अनुमति न दे, या उसे गवर्नर-जनरल की इच्छानुसार पास न करे तो यदि गवर्नर-जनरल चाहे तो उसे यह तसदीक़ करने का अधिकार है कि देश की शान्ति, सुरक्षा या हित की दृष्टि से इस मसविदे का पास होना आवश्यक है। उसके ऐसा तसदीक़ कर देने पर, वह मसविदा क़ानून बन जाता है, चाहे

कोई सभा उसे स्वीकार न करे। ऐसा हर एक क़ानून गवर्नर-जनरल का बनाया हुआ सूचित किया जाता है और, पार्लिमैंट की दोनों सभाओं के सामने पेश होता है और, जब तक सम्राट् की स्वीकृति न मिले वह व्यवहार में नहीं लाया जाता। जब गवर्नर-जनरल यह समझे कि उक्त क़ानून को व्यवहार में लाने की अत्यन्त ही आवश्यकता है तो उसके ऐसा आदेश करने पर, वह अमल में आजाता है; केवल यह शर्त है कि सम्राट् ऐसे क़ानून को नामंजूर कर सकता है। गवर्नर-जनरल को यह भी अधिकार है कि सूचना देकर और यह तसदीक़ करके कि यह मसविदा देश की रक्षा, शान्ति या हित के विरुद्ध है, किसी ऐसे मसविदे के सम्बन्ध में होने वाली कार्रवाई को रोकदे जो किसी सभा में पेश हो चुका हो, या होने वाला हो।

भारतीय आय व्यय का विचार---भारत सरकार के अनुमानित आय व्यय का विवरण ('बजट') प्रति वर्ष भारतीय व्यवस्थापक मंडल के सामने रखा जाता है। गवर्नर--जनरल की सिफ़ारिश बिना, किसी काम में रुपया लगाने का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता। विशेषतया निम्न लिखित व्यय की मदों के लिये कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के प्रस्ताव व्यवस्थापक सभा के मत (वोट) के लिये नहीं रखे जाते, न सालाना विवरण के समय कोई सभा उन पर वादानुवाद कर सकती है, जब तक गवर्नर-जनरल इसके लिए आज्ञा न देदे:—

(१) ऋण का सूद । (२) ऐसा ख़र्च जिसकी रकम क़ानून से निर्धारित हो। (३) उन लोगों की वेतन और भत्ते या पैन्शन जो सम्राट् द्वारा, या सम्राट् की स्वीकृति से नियुक्त किये गये हों। चीफ़ कमिश्नरों या जुडिशल कमिश्नरों की वेतन। (४) वह रक़म जो सम्राट् को देशी राज्यों सम्बन्धी कार्य के ख़र्च के

उपलक्ष में दीजाने वाली हो। (५) किसी प्रान्त के 'पृथक् किये हुए' (एक्सक्लूडेड) क्षेत्रों के शासन सम्बन्धी ख़र्च। * (६) ऐसी रक़म जो गवर्नर-जनरल उन कार्यों में ख़र्च करे जिन्हें उस को अपनी मर्ज़ी से करना आवश्यक हो। (७) वह ख़र्च जिसे कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल ने (क) धार्मिक, (ख) राजनैतिक या (ग) रक्षा अर्थात् सेना सम्बन्धी ठहराया हो।

इन मदों को छोड़कर व्यय के अन्य विषयों के ख़र्च के लिये कौंसिल--युक्त गवर्नर-जनरल के अन्य प्रस्ताव भारतीय व्यवस्थापक सभा के मत के वास्ते, मांग के स्वरूप में रखे जाते हैं। † सभा को अधिकार है कि वह किसी मांग को स्वीकार करे, या, न करे, अथवा घटाकर स्वीकार करे, परन्तु कौंसिल-युक्त गवर्नर जनरल सभा के ऐसे निश्चय को रद्द करसकता है। विशेष दशाओं में गवर्नर-जनरल ऐसे खर्च के लिये स्वीकृति दे सकता है जो उसकी सम्मति में देश की रक्षा या शान्ति के लिये आवश्यक हो।

गवर्नर-जनरल के विविध अधिकारों के होते हुए, वास्तव में भारतीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकारों का कुछ महत्व नहीं है।

---

* पृथक किये हुए क्षेत्रों के सम्बन्ध में, आगे 'प्रान्तीय सरकार' शीर्षक वाले, आठवें परिच्छेद में लिखा गया है।

† बजट राज्य परिषद में भी पेश होता है, पर उसे घटाने या किसी मांग को अस्वीकार करने आदि का अधिकार केवल भारतीय व्यवस्थापक सभा को ही है। राज्य-परिषद अपने प्रस्ताव आदि से, सरकार की आर्थिक नीति या साधनों की आलोचना कर सकती है, और किसी कर के प्रस्ताव को संशोधित, या रद्द कर सकती है। व्यवस्थापक सभा से करों के प्रस्ताव बाक़ायदा प्रस्ताव के रूप में आते हैं, उनका दोनों सभाओं से पास होना ज़रूरी है। यद्यपि राज्य-परिषद रुपये सम्बन्धी किसी प्रस्ताव को प्रारम्भ नहीं कर सकती, परन्तु उसके वादानुवाद और निपटारे में भाग ले सकती है।

छटा परिच्छेद

संघीय रेलवे विभाग

[भारतीय संघ के सम्बन्ध में, दूसरे खण्ड में लिखा जायगा। संघ की स्थापना में अभी विलम्ब है, तथापि संघीय रेलवे अथारिटी सम्बन्धी कार्य आरंभ हो गया है। हां, यह संस्था पूर्ण रूप से तो संघ स्थापना के बाद ही कार्य करने लगेगी। इस परिच्छेद में जहां 'संघ', (या 'संघ सरकार') अथवा 'संघीय व्यवस्थापक मण्डल' शब्द का प्रयोग हुआ है, वहां वर्तमान अवस्था में क्रमशः केन्द्रीय सरकार और भारतीय व्य स्था-पक मण्डल का आशय लिया जाना चाहिये।]

रेलवे विभाग या 'अथारिटी'—सन १६३५ ई० के विधान से पूर्व, रेलवे विभाग पर भारत सरकार और भारतीय व्यवस्थापक मंडल का नियंत्रण था; जैसा कि पहले कहा गया है, भारत सरकार का एक सदस्य इस विभाग का कार्य सम्पादन करता था। उक्त विधान के अनुसार इस विभाग के कार्य के लिये स्वतन्त्र व्यवस्था की गयी है। अब यह कार्य 'संघोय रेलवे अथारिटी' नामक संस्था करती है। 'अथारिटी' कहने से इसी संस्था का बोध होताहै।

'अथारिटी' का संगठन—-अथारिटी का कार्य भारतवर्ष में रेलें बनाना और उन्हें जारी रखना है। इसके सात सदस्य होते हैं। इनकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल करता है। इन में से कम से कम तीन सदस्य और (एक) सभापति की नियुक्ति वह अपनी मर्ज़ी से करता है। कोई व्यक्ति अथारिटी का सदस्य बनने या नियुक्त होने के योग्य नहीं होता :—

(क) जब तक उसे वाणिज्य, उद्योग धन्धे, कृषि, राजस्व, या शासन का अनुभव न हो, या

(ख) अगर वह पिछले छः मास में (१) संघीय या प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल का सदस्य या (२) भारतवर्ष में सम्राट् का नौकर या रेलवे अधिकारी रहा हो।

अथारिटी के प्रथम बार सदस्य बनने वाले व्यक्तियों में से तीन की नियुक्ति तीन तीन साल के लिये होती है। इस अवधि के समाप्त होजाने के बाद ये सदस्य पुनः तीन या पांच साल के लिये नियुक्त होसकते हैं। इसके अतिरिक्त, अन्य सदस्यों की नियुक्ति पांच वर्ष के लिये होती है, और वे पुनः अधिक से अधिक पांच वर्ष के लिये नियुक्त किये जासकते हैं। यदि गवर्नर-जनरल को यह प्रतीत हो कि कोई सदस्य अपना कार्य करते रहने के योग्य नहीं है, तो वह अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार उसे उसके पदसे पृथक् कर सकता है। गवर्नर-जनरल अथारिटी के सदस्यों की अस्थायी नियुक्ति के नियम बना सकता है।

अथारिटी के सदस्य को गवर्नर-जनरल द्वारा निश्चित किया हुआ वेतन और भत्ता मिलता है, यह उसके कार्यकाल में घटाया नहीं जासकता।

अथारिटी का सब कार्य उसके उन सदस्यों के बहुमत के अनुसार होता है, जो उसकी मीटिंग में उपस्थित हों, और उसमें मत दें। जब किसी विषय के पक्ष और विपक्ष में समान मत हों तो सभापति को दूसरा अर्थात् निर्णायक मत देने का अधिकार होता है।

गवर्नर-जनरल का सम्बन्ध—अथारिटी के सदस्यों को

नियुक्त करने की बात पहले की जाचुकी है, उसके अतिरिक्त, गवर्नर-जनरल अपने प्रतिनिधि-रूप से एक या अधिक व्यक्तियों को 'अथारिटी' की सभा में भेज सकता है, ये उसमें भाषण देसकते हैं, परन्तु मत नहीं देसकते। रेलवे प्रबन्ध सम्बन्धी प्रधान कर्मचारी 'चीफ़ रेलवे कमिश्नर' कहलाता है। इसकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल, 'अथारिटी' की सलाह लेकर अपनी मर्ज़ी से करता है। इसे समय समय पर परामर्श देने के लिये एक आर्थिक कमिश्नर गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त होता है। इन दोनों अधिकारियों को अथारिटी की सभा में उपस्थित होने का अधिकार होता है। गवर्नर-जनरल 'अथारिटी' से परामर्श करके, अपनी मर्ज़ी से रेलवे कम्पियों के डायरेक्टर और डिप्टी-डायरेक्टरों की नियुक्ति करता है, तथा ऐसे नियम बनाता है, जिनसे अथारिटी और संघ सरकार के पारस्परिक व्यवहार सम्बन्धी कार्यों का सुविधा-पूर्वक संचालन हो।

अथारिटी की नीति और उसे दीजाने वाली हिदायतें--विधान के अनुसार यह आवश्यक है कि 'अथारिटी' अपना सारा काम व्यापारिक नीति से, कृषि व्यापार उद्योग धन्धों एवं सार्वजनिक हित के लिये करे; वह अपनी आय से ही अपना ख़र्च चलाने की व्यवस्था करे, तथा इस सम्बन्ध की नीति-विषयक बातों में संघ सरकार द्वारा दी हुई हिदायतों का ध्यान रखे। 'अथारिटी' को सौंपे हुए विषयों में गवर्नर-जनरल का विशेष उत्तरदायित्व माना जाता है; वह अपनी मर्ज़ी से इसे आवश्यक हिदायतें देसकता है, और इसे उनका पालन करना होता है।

रेल की आय व्यय—अथारिटी का एक कोष होता है। उसे 'रेलवे फ़ंड कहते हैं। इसमें रेलों से होने वाली सब आय जमा होती है, और इसी में से रेलों के सम्बन्ध का सब ख़र्च

होता है। जिस रुपये की तत्काल आवश्यकता नहीं होती, वह रिज़र्व बैंक में जमा कर दिया जाता है। बचत का रुपया संघ और अथारिटी में निर्धारित योजना के अनुसार विभक्त किया जाता है। यह योजना संघ सरकार द्वारा समय समय पर बनायी और संशोधित की जाती है। अथारिटी को आवश्यकता होने पर रुपया संघ देता है, ऐसी रकम संघ के ख़र्च में गिनी जाती है। अथारिटी के आय व्यय के हिसाब की जांच भारतवर्ष का आडिटर-जनरल या उसकी ओर से कोई दूसरा व्यक्ति करता है।

रेल भाड़ा कमेटी—यह कमेटी समय समय पर गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त होती है। यह अथारिटी को किराए भाड़े सम्बन्धी उन बातों में परामर्श देती है, जिनके विषय में यात्रियों तथा माल भेजने वालों का अथारिटी से विरोध हो, और जिन्हें गवर्नर--जनरल इस कमेटी के सामने रखे।

किसी रेलवे का किराया भाड़ा नियमित करने के सम्बन्ध में कोई क़ानून का मसविदा या संशोधन संघीय व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा में गवर्नर-जनरल की सिफ़ारिश बिना उपस्थित नहीं किया जाता।

रेलवे विभाग और देशी राज्यों का पारस्परिक व्यवहार—अथारिटी ब्रिटिश भारत तथा संघान्तरित देशी राज्यों* के लिये तो रेलें बनाएगी ही, गवर्नर-जनरल का आदेश होने पर उन देशी राज्यों में भी रेल बनाने आदि का कार्य करेगी जो संघान्तरित न हों। अथारिटी, और संघान्तरित देशी राज्यों का कर्तव्य है कि

* देशी राज्यों के संघान्तरित होने के सम्बन्ध में, आगे इस पुस्तक के दूसरे खण्ड में लिखा गया है।

अपनी अपनी रेलों से माल उतारने या चढ़ाने तथा गुज़रने देने, एवं किराए आदि के सम्बन्ध में एक दूसरे को ऐसी सुविधाए प्रदान करें कि भिन्न भिन्न रेलवे लाइनों में किसी अनुचित रियायत के कारण भेद भाव न रहे; एवं उनमें अनुचित या हानिकर प्रतियोगिता न हो।

रेलवे न्यायालय—संघ या देशी राज्यों की एक दूसरे के विरुद्ध की हुई, उपर्युक्त विषय की शिकायतों का विचार रेलवे न्यायालय (ट्रिब्यूनल) में होता है। कहीं रेल बनायी जाय या नहीं, इस विषय में भी इसी न्यायालय का निर्णय मान्य होता है। हां, गवर्नर-जनरल रक्षा सम्बन्धी कारणों से उक्त निर्णय को रद्द कर सकता है। यह न्यायालय अथारिटी के द्वारा की जाने वाली किसी की हानि-पूर्ति आदि का विचार करता है। इसके फ़ैसलों के क़ानूनी प्रसंगों की अपील संघीय न्यायालय में हो सकती है। इस न्यायालय को फ़ीस आदि से जो आय होती है, उसका रुपया संघ को मिलता है जो इसके प्रबन्ध आदि के लिये सब आवश्यक ख़र्च करता है।

इस न्यायालय में एक सभापति और दो अन्य सदस्य होते हैं। इनका चुनाव गवर्नर-जनरल अपनी मर्ज़ी से करता है; ये ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें रेलों के प्रबन्ध और कार्य का अनुभव हो। सभापति इसकी कार्य पद्धति तथा फ़ीस आदि के नियम, गवर्नर-जनरल की स्वीकृति से बनाता है।

नवीन व्यवस्था पर विचार—यद्यपि सन् १६२५-२६ ई० से रेलवे बजट, हर साल साधारण बजट से अलग उपस्थित किया जाता है, तथापि अभीतक रेलवे विभाग सम्बन्धी विविध बातों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता रहा है। रेलों से होने वाली

आय व्यय पर अब तक भारतीय व्यवस्थापक मंडल में वादा-नवाद होता था, तथा उसी प्रसंग में विविध प्रश्नोत्तर होते थे, रेलवे कर्मचारियों के वेतन, तथा उनके एवं यात्रियों के कष्ट और असुविधाओं और स्वदेशी विदेशी तथा कच्चे और तैयार माल की ढुलाई की दरों आदि के सम्बन्ध में विचार होता था। इस प्रकार रेलों के प्रबन्ध और व्यवस्था पर जनता के प्रतिनिधियों का प्रभाव पड़ता था, और इससे उसमें कभी कभी थोड़ा बहुत सुधार भी होता था। अब नवीन व्यवस्था के अनुसार संघीय रेलवे विभाग अर्थात् 'अथारिटी' सरकार के अन्य विभागों से पृथक् और स्वतन्त्र होजाने के कारण, उस पर केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल का कुछ नियंत्रण न रहेगा। रेलों के संचालन और प्रबन्घ आदि से सम्बन्ध रखने वाली बहुतसी बातें प्रकाश में नहीं आएंगी, वे गुप्त रहस्य बनी रहेंगी, इससे उनके दोष दूर होने की सम्भावना स्वभावतः कम होजायगी। 'अथारिटी' के सदस्य प्रायः गवर्नर-जनरल के प्रति ही उत्तरदायी होंगे। निदान, सार्वजनिक नियंत्रण और निरीक्षण की दृष्टि से रेलवे विभाग सम्बन्धी नवीन व्यवस्था पहले की अपेक्षा कुछ सुधरी हुई होने के बजाय, अधिक असन्तोषप्रद प्रतीत होती है।

सातवां परिच्छेद

रिज़र्व बैंक

बैंक की स्थापना और स्वरूप—नवीन विधान पूरी तरह अमल में आने अर्थात् संघ स्थापित किये जाने से पूर्व यहां अन्यान्य बातों में रिजर्व बैंक की स्थापना बहुत आवश्यक मानी गयी है। पहिले पहल सरकार ने इस विषय का मसविदा, मुद्रा कमीशन की सिफ़ारिश के अनुसार, जनवरी सन् १९२७ ई० में भारतीय व्यवस्थापक सभा के सामने उपस्थित किया था। सरकार इस बैंक को शेयरहोल्डर अर्थात् हिस्सेदारों का बैंक बनाना चाहती थी, जिसकी कार्रवाई पर भारतीय व्यवस्थापक सभा और लोकमत का प्रभाव न पड़े। परन्तु ग़ैर-सरकारी सदस्यों का मत था कि इसे स्टेट बैंक (राजकीय बैंक) बनाया जाय, क्योंकि हिस्सेदारों का बैंक होने से उस पर विदेशी पूँजीपतियों, तथा कुछ भारतीय पूजीपतियों का ही नियंत्रण रहेगा। इस सम्बन्ध में सरकारी और ग़ैरसरकारी सदस्यों का प्रबल मत-भेद देख कर, सरकार ने बैंक सम्बन्धी कानून के मसविदे को वापिस ले लिया; और, ब्रिटिश अधिकारियों से परामर्श करके जनवरी सन् १९२८में नया मसविदा उपस्थित किया। मूलबात में यह मसविदा पहले मसविदे के समान ही था, अर्थात यह बैंक को स्टेट बैंक न बनाकर उसे हिस्सेदारों का ही बैंक बनाने के विषय में था। इसमें ऐसी कोई शर्त नहीं थी कि बैंक के शेयरों (हिस्सों) में से कम से कम एक निर्धारित भाग भारतीयों का हो अथवा, डायरेक्टरों में से एक निश्चित संख्या भारतीयों की हो। इस

के विपरीत इसमें इस बात की स्पष्ट व्यवस्था की गयी थी कि केन्द्रीय या प्रान्तीय किसी व्यवस्थापक सभा का कोई सदस्य इस बैंक का डायरेक्टर न बन सके। यह मसविदा भी केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों तथा भारतीय लोक मत को संतुष्ट न कर सका, और वापिस लिया गया।

अन्ततः सन् १९३४ ई० में यहां रिज़र्व बैंक की स्थापना के लिये क़ानून बनाया गया। यह बैंक उसी ढंग का है, जैसा सरकार चाहती थी; अर्थात् यह स्टेट बैंक न होकर शेयर-होल्डरों का बैंक है।

बैंक का कार्य— यह बैंक विशेषतया निम्न लिखित कार्य करता है:- आवश्यकतानुसार नोट जारी करना, सरकार का लेन देन सम्बन्धी कार्य करते हुए ब्रिटिश भारत की आर्थिक स्थिरता बनाये रखना, मुद्रा और साख सम्बन्धो नोति निर्धारित करना। यह 'बैंकों का बैंक' है, अर्थात् इसमें अन्य बैंकों का रुपया जमा रहता है जिससे आवश्यकता उपस्थित होने पर यह उनकी सहायता करसकें, और देश में आर्थिक संकट न होने पाये। अब सरकार का मुद्रा विभाग पृथक् नहीं है, उसका काम यही बैंक करता है। इंगलैंड आदि देशों में सरकार को जो रुपया भेजना होता है, वह भी इसी बैंक के द्वारा भेजा जाता है।

इस बैंक का कृषि-साख सम्बन्धी एक विशेष विभाग रहेगा इसमें कृषि-साख के कुछ विशेषज्ञ रहेंगे, ये इस विषय की आवश्यक जानकारी प्राप्त करेंगे, और गवर्नर-जनरल, गवर्नरों, और प्रान्तीय सहकारी बैंकों के अधिकारियों तथा महाजनी सम्बन्धो अन्य संस्थाओं को आवश्यक परामर्श और सहायता देंगे।

विधान में यह व्यवस्था की गयी है कि किसी ऐसे क़ानून का

मसविदा या कोई ऐसा संशोधन गवर्नर–जनरल की पूर्व स्वीकृति बिना संघीय व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा में उपस्थित नहीं किया जा सकेगा, जिसका सम्बन्ध संघ के मुद्रा या टकसाल से, या रिज़र्व बैंक के संगठन और कार्यों से हो।

बैंक के हिस्सेदार, कार्यालय आदि–बैंक की हिस्सा-पूँजी पांच करोड़ रुपये है। एक एक हिस्सा सौ सौ रुपये का है, पांच हिस्से लेने वाले को एक मत का अधिकार होता है, और एक हिस्सेदार के अधिक से अधिक दस मत होसकते हैं। हिस्सेदारों के लिये भारतवर्ष और बर्मा को पांच क्षेत्रों में विभक्त किया गया है, जिनके केन्द्रीय स्थान बम्बई, कलकत्ता, देहली, मदरास और रंगून हैं। इन पांच स्थानों में रिज़र्व बैंक के कार्यालय हैं; प्रत्येक कार्यालय में उस के क्षेत्र के हिस्सेदारों का रजिस्टर रहता है। इसके अतिरिक्त बैंक की एक शाखा लन्दन में खोली गयी है। भारतवर्ष के उपर्युक्त पांच स्थानों, तथा विदेशों में लन्दन के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान में इस बैंक की शाखा या एजंसी गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति से ही स्थापित की जासकती है।

सेंट्रल बोर्ड, और गवर्नर-जनरल के अधिकार-- बैंक का निरीक्षण और संचालन 'सेंट्रल बोर्ड' नामक कमेटी द्वारा होता है। इसमें निम्न लिखित डायरेक्टर होते हैं। (क) एक गवर्नर और दो डिप्टी–गवर्नर। इनकी नियुक्ति बोर्ड की सिफ़ारिश होने पर गवर्नर--जनरल करता है। ये अधिक से अधिक पांच वर्ष तक अपने पद पर रहते हैं। (ख) चार डायरेक्टर जिन्हें गवर्नर–जनरल नामज़द करता है, और, (ग) आठ डायरेक्टर जो भिन्न भिन्न क्षेत्रों के हिस्सेदारों द्वारा इस हिसाब से चुने जाते हैं:—बम्बई २, कलकत्ता २, देहली २, मदरास १, और रंगून १।

बोर्ड के गवर्नर और डिप्टी-गवर्नर के वेतन भत्ते और कार्य काल का निश्चय गवर्नर-जनरल करता है। हिस्सेदारों का प्रतिनिधित्व करने वाले पूर्वोक्त आठ डायरेक्टरों को प्रथम बार गवर्नर-जनरल नामज़द करता है। इनमें से दो दो का निर्वाचन पीछे प्रतिवर्ष निर्धारित रीति से होता रहेगा, जब तक कि आठों नामज़द डायरेक्टरों की जगह निर्वाचित डायरेक्टर न होजांय।

आवश्यकता होने पर गवर्नर-जनरल सेंट्रल बोर्ड को तोड़कर उसके सम्बन्ध में उचित कार्रवाई कर सकता है, तथा बैंक का हिसाब चुकता करके उसे बन्द कर सकता है।

लोकल बोर्ड—बम्बई, कलकत्ता, देहली, मदरास और रंगून में से प्रत्येक स्थान में एक एक लोकल बोर्ड स्थानीय कार्य सम्पादन करनेके लिये रहता है। इस बोर्ड के सदस्यों में से पांच उस क्षेत्र के हिस्सेदारों में से, उनके द्वारा ही निर्वाचित होतेहैं, और कम से कम तीन सदस्य उस क्षेत्र के हिस्सेदारों में से सेंट्रल बोर्ड द्वारा नामज़द होते हैं।

विशेष वक्तव्य—रिजर्व बैंक के संगठन में भारतीय हितों को सुरक्षित रखने तथा उस पर भारतीयों का नियंत्रण रहने की व्यवस्था नहीं की गयी है। हिस्सेदारों या डायरेक्टरों के सम्बन्ध में ऐसा नियम नहीं है कि उनमें से अधिकांश भारतीय ही होसकें। डायरेक्टर, आरम्भ में तो सभी गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द हैं। प्रतिवर्ष दो दो के हिसाब से चुने जाकर चार वर्ष बाद आठ डायरेक्टर शेयर होल्डरों द्वारा निर्वाचित होंगे, इनमें कुछ अंगरेज आदि रहेंगे ही। इनके अतिरिक्त चार डायरेक्टर तो चार वर्ष बाद भी नामज़द ही होंगे। इससे स्पष्ट है कि भारतीयों को रिज़र्व बैंक जैसे आर्थिक विषय में भी बहुत परिमित

अधिकार दिये गये हैं। इस बैंक की स्थापना के क़ानून का मसविदा सरकार द्वारा दो बार वापिस लिया जाकर, तीसरी बार क़ानून के रूप में आया है, तो भी यह आशङ्का निर्मूल सिद्ध नहीं हुई, कि इस बैंक को भारतीय लोकमत से मुक्त रखकर इसे ब्रिटिश सरकार और अंगरेज़ व्यवसाइयों के आदेशानुसार चलाने का विचार है।

आठवां परिच्छेद

प्रान्तीय सरकार

[पहले कहा जा चुका है कि सन् १९३५ ई० के शासन विधानानुसार, भारत सरकार और भारतीय व्यवस्थापक मण्डल के सम्बन्ध में, जो परिवर्तन होने वाले हैं, उनके अमल में आने अभी देर है। प्रान्तीय शासन पद्धति सन् १९३७ ई० से बदल दी गयी है। नवीन शासन विधान की रचना के समय, उसके निर्म्मातात्रों ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि इस विधान का उद्देश्य प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना है।]

पूर्व व्यवस्था—नवीन प्रान्तीय शासन की रूप रेखा समझने के लिये यह जान लेना आवश्यक है कि नवीन विधान बनने से पूर्व यहां प्रान्तों का शासन किस प्रकार होता था। पहले ब्रिटिश

भारत के सब प्रान्तों की संख्या १५ थी, और उनके दो भेद थे, बड़े प्रान्त, और छोटे प्रान्त। बंगाल, बम्बई, मदरास, संयुक्तप्रान्त पञ्जाब, बिहार-उड़ीसा, मध्य प्रान्त और बरार, बर्मा, और आसाम बड़े प्रान्त कहलाते थे। इन्हीं नौ प्रान्तों में उत्तरदायी शासन पद्धति का श्रीगणेश करके, स्वराज्य का बीज बोया गया था। शेष छः प्रान्त छोटे प्रान्त कहलाते थे। इनमें देहली, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, ब्रिटिश बलोचिस्तान, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग, और ऐंडमान-निकोबार सम्मिलित थे। बड़े प्रान्तों में गवर्नर, प्रबन्धकारिणी सभाएं और व्यवस्थापक परिषदें थी। छोटे प्रान्तों का शासन चीफ़ कमिश्नर करते थे, जो गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त, और भारत सरकार के प्रति उत्तरदायी होते थे। इन प्रान्तों के लिए क़ानून भारतीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा बनाये जाते थे; (केवल कुर्ग में व्यवस्थापक परिषद थी)।

बड़े प्रान्तों में प्रान्तिक सरकारों से सम्बन्ध रखने वाले विषय दो भागों में विभक्त थे, (१) रक्षित या 'रिज़र्वड', और (२) हस्तान्तरित या 'ट्रांसफ़र्ड'। रक्षित विषयों के प्रबन्ध करने का अधिकार गवर्नर और उसकी प्रन्धकारिणी सभा को था। ये भारत सरकार और भारत मंत्री द्वारा, ब्रिटिश पार्लिमैंट के प्रति, और अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश मत-दाताओं के प्रति, उत्तरदायी थे। हस्तान्तरित विषयों का प्रबंध गवर्नर अपने मंत्रियों के परामर्श से करता था। ये प्रान्तिक व्यवस्थापक परिषद के प्रति, अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय मत दाताओं के प्रति उत्तरदायी थे। इस प्रकार, प्रान्तिक सरकार के दो भाग थे; एक भाग में गवर्नर और उसकी प्रबंधकारिणी सभा के सदस्य होते थे, दूसरे भाग में गवर्नर और उसके मंत्री होते थे। साधारणतया प्रांतीय सरकार इकट्ठी ही किसी विषय का विचार करती थी, तथापि यह गवनर की इच्छा पर निर्भर था कि वह किसी विषय का अपनी

सरकार के केवल उस भाग से ही विचार करले जो उसका प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी हो। [जिस पद्धति में शासन कार्य ऐसे दो भागों में विभक्त होता है, उसे द्वैध शासन पद्धति या 'डायर्की' कहते हैं।]

प्रान्तों का आधुनिक वर्गीकरण; गवर्नरों के प्रान्त—अब प्रांतों के दो भेद हैं, (क) गवर्नरों के प्रांत और (ख) चीफ़ कमिश्नरों के प्रांत। गवर्नरों के प्रांत निम्न लिखित हैं:—

१—मदरास।
२—बम्बई।
३—बङ्गाल।
४—संयुक्त प्रान्त।
५—पंजाब।
६—बिहार।
७—मध्य प्रान्त और बरार।
८—आसाम।
९—पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त।
१०—उड़ीसा।
११—सिन्ध।

पहिले की स्थिति से तुलना करने पर पाठकों को यह ज्ञात होजायगा कि बर्मा अब इस सूची में नहीं है, (इसके ब्रिटिश भारत से पृथक किये जाने के सम्बन्ध में पहले लिखा जाचुका है।) और तीन प्रान्त इस सूची में नये बढ़ाये गये हैं:— (१) पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, (२) उड़ीसा, और (३) सिन्ध। इन में से पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त की गणना पहले चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों में होती थी; उड़ीसा, बिहार के साथ था; तथा सिन्ध, बम्बई के साथ मिला हुआ था।

भारतवर्ष में भाषा, संस्कृति या रहन सहन आदि के विचार से, कई नये प्रान्तों की आवश्यकता बढ़ती जारही है। और, जब तक कि देश हित की उपेक्षा न कीजाय, ऐसी मांग की पूर्ति होना उचित ही है। हां, यह स्मरण रखने की बात है कि एक स्वतन्त्र प्रान्त की सरकार को गवर्नर, मंत्री, हाईकोर्ट, व्यवस्थापक सभा, विश्वविद्यालय आदि सभी बातों की व्यवस्था करनी होती है। ये सब कार्य व्यय-साध्य हैं। वर्तमान अवस्था में, उच्च पदों पर कार्य करने वालों का वेतन आदि इतना अधिक है, कि शासन बहुत मंहगा पड़ता है। सरकार बहुधा किसी नये प्रान्त के बनाने से पूर्व उसे आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने का विचार नहीं करती, और आवश्यकतानुसार नये करों की वृद्धि करती रहती है। आवश्यकता है कि नवीन प्रान्तों की सृष्टि के साथ शासन व्यय का परिमाण कम किया जाय; उच्च पदों पर भारतीयों की नियुक्ति अधिक की जाय, और कर घटाये जांय, और करों से प्राप्त होने वाली आय अधिकतर राष्ट्रोत्थानकारी कार्यों में लगायी जाय, जिससे जनता की आर्थिक और नैतिक दशा में सुधार हो।

अदन की पृथकता—बम्बई प्रान्त से सिन्ध के अतिरिक्त अदन भी पृथक् किया गया है। अदन के सम्बन्ध में सपरिषद सम्राट् को अधिकार देदिया गया है कि वह जैसा शासन वहां के लिये उपयुक्त समझे, किसी समय से आरम्भ कर सकता है।

अब तक बम्बई तथा भारत सरकार ने अदन के लिये प्रति वर्ष लाखों रुपया ख़र्च किया। उस व्यय से यहां भूमि साफ़ करके आदमी बसाये गये, तथा बन्दरगाह का सुदृढ़ प्रबन्ध किया गया; क्रमशः यहां फ़ौज भी बढ़ायी गयी। सैनिक व्यय की तीव्र आलोचना होने से उसकी जांच के लिये 'वेलवे कमीशन' नियुक्त हुआ। उसकी सिफ़ारिश थी कि उक्त व्यय का आधा भाग ब्रिटिश सर-

कार दे। फलतः सन् १६०१ से ब्रिटिश सरकार ने इस में हाथ बटाना आरम्भ किया। युद्धकाल में अदन की सेना का शासन इंगलैंड के युद्ध विभाग को सौंपा गया, और साधारण क़ानूनों के पालन का दायित्व बम्बई सरकार पर रहा। ब्रिटिश सरकार इसे अपने औपनिवेशिक भाग के अधीन करने का विचार करती रही, इसका प्रवल विरोध होने पर सन् १६२७ ई० में निश्चय हुआ कि अदन की सेना तथा पर-राष्ट्र सम्बन्ध का दायित्व तो ब्रिटिश सरकार पर रहे, पर इसकी आन्तरिक शासन व्यवस्था भारत सरकार के ही अधीन रहे। तथापि अदन को अपने अधीन करने का विचार ब्रिटिश सरकार ने विलुप्त न होने दिया, और इस बात का कुछ विचार न करके कि यहां भारतवर्ष के ख़ज़ाने से इतना द्रव्य व्यय हुआ है, तथा भारतवासियों का व्यापार में यहां लाखों रुपया लगा हुआ है, नवीन विधान के अनुसार अदन को भारत से (बम्बई प्रान्त से) पृथक् कर दिया गया है।

बरार सम्बन्धी व्यवस्था—बरार के सम्बन्ध में निज़ाम हैदराबाद से एक समझौते की बात चलरही है। जब तक उसका पूर्ण निश्चय न हो, तब तक के लिये बरार पर निज़ाम का प्रभुत्व होते हुए भी मध्य प्रान्त और बरार दोनों एक गवर्नर के प्रान्त माने गये हैं, और उनका सम्मिलित नाम 'मध्य प्रान्त और बरार' रखा गया है. यहां के प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के तथा राज्य परिषद् के मतदाताओं की योग्यता सम्बन्धी नियमों में इस समझौते का ध्यान रखा गया है।*

---

* अगर उक्त समझौता पूर्ण रूप से न हुआ, या होकर पीछे टूट गया, तो मध्यप्रान्त और बरार के सम्बन्ध में, कही गयी बातें मध्यप्रान्त के सम्बन्ध में समझी जांयगी और सपरिषद सम्राट् मध्यप्रान्त सम्बन्धी व्यवस्था में, जैसा उचित समझेगा, परिवर्तन कर देगा।

प्रांतों का शासन; गवर्नरों की नियुक्ति, वेतन और पद---उन ११ प्रान्तों के नाम पहिले बताये जाचुके हैं, जो गवर्नरों के प्रान्त कहलाते हैं। इन प्रान्तों के शासन कार्य में गवर्नरों का पद मुख्य है। उन्हीं पर प्रान्तीय शासन, शान्ति, सुव्यवस्था तथा विविध प्रकार की उन्नति का दायित्व है। इनकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती है। इन्हें उसके कुछ निर्धारित अधिकार प्राप्त होते हैं, और ये उसी की ओर से काम करते हैं। इनके नाम एक आदेशपत्र जारी किया जाता है, इसका मसविदा पहले भारत-मन्त्री द्वारा पार्लिमैंट के सामने उपस्थित किया जाता है, फिर पार्लिमैंट सम्राट् से उस आदेश पत्र को जारी करने का आवेदन करती है। गवर्नर इस आदेश पत्र के अनुसार कार्य करता है, परन्तु उसके किसी कार्य के औचित्य का प्रश्न इस आधार पर नहीं उठाया जासकता कि वह कार्य आदेश पत्र की सूचनाओं के अनुसार नहीं है।

प्रान्तों का शासन गवर्नर के नाम से होता है। गवर्नर इस कार्य को स्वयं करने के अतिरिक्त अपने विविध अधीन कर्मचारियों द्वारा कराता है। प्रत्येक प्रान्त का शासन क्षेत्र उन सब विषयों तक होता है, जिन के सम्बन्ध में प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल को क़ानून बनाने का अधिकार होता है, (यह विषय सूची आगे दसवें परिच्छेद में दी गयी है। सब प्रान्तों के गवर्नरों का वार्षिक वेतन विधान द्वारा निर्धारित है।* वेतन के अतिरिक्त उन्हें भत्ता आदि

*मदरास	१,२०,०००)	पंजाब	१,००,०००)	पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त	६६,०००)
बंबई	,,	बिहार	,,		
बंगाल	,,	मध्यप्रान्त-बरार	७२,०००)	उड़ीसा	,,
संयुक्तप्रान्त	,,	आसाम	,,	सिन्ध	,,

भी इतना काफ़ी दिया जाता है, जिससे वह अपने पद का कार्य सुविधा और मान मर्यादा पूर्वक कर सकें, अर्थात् उनकी शान शौकत भली भांति बनी रहे।

बङ्गाल, बम्बई और मदरास के गवर्नर, अन्य गवर्नरों से ऊंचे दर्जे के माने जाते हैं। ये तीन गवर्नर इंगलैंड के राजनीतिज्ञों में से, भारत मन्त्री की सिफ़ारिश से, तथा अन्य गवर्नर गवर्नर-जनरल के परामर्श से नियत किये जाते हैं।

प्रान्तीय विषयों का प्रबन्ध--कुछ प्रान्तीय विषयों के सम्बन्ध में गवर्नर अपनी मर्ज़ी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है; उन्हें छोड़कर शेष विषयों में वह अपने मन्त्री मण्डल की सहायता या परामर्श से काम करता है। किसी विषय में गवर्नर अपनी मर्ज़ी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है, या नहीं, इसके सम्बन्ध में स्वयं गवर्नर का किया हुआ फ़ैसला ही अंतिम माना जाता है।

विशेषतया निम्न लिखित विषयों में गवर्नर अपनी मर्ज़ी के अनुसार कार्रवाई कर सकता है। (क) मन्त्रियों की नियुक्ति, बर्ख़ास्तगी, तथा उनकी वेतन निश्चय करना। (ख) मंत्री मण्डल का सभापति होना। (ग) प्रांतीय सरकार के कार्य सञ्चालन सम्बन्धी नियम बनाना।

विशेषतया निम्न लिखित विषयों में गवर्नर अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है:—(क) जिन विषयों में गवर्नर का विशेष उत्तरदायित्व है। (ख) पुलिस सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था। (ग) आतङ्कवाद का दमन।

मन्त्री मण्डल--पहले कहा गया है कि प्रान्तीय विषयों में गवर्नर को सहायता या परामर्श देने के लिये एक मन्त्री मण्डल

रहता है। इसका सभापति गवर्नर होता है। मन्त्रियों की संख्या निर्धारित नहीं है। वे गवर्नर के द्वारा चुने जाते हैं, और जब तक वह चाहता है, वे अपने पद पर बने रहते हैं। अगर कोई मन्त्री लगातार छः महिने तक प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल का सदस्य न हो तो वह इस समय के पूरा होने पर मन्त्री नहीं रहता। मन्त्रियों का वेतन प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल समय समय पर निर्धारित करता है, और जब तक वह निर्धारित न करे, गवर्नर उसका निश्चय करता है, परन्तु किसी मन्त्री का वेतन उसके कार्य-काल में बदला नहीं जाता। ऐसा प्रश्न किसी न्यायालय में नहीं पूछा जा सकता कि मन्त्रियों ने गवर्नर को कुछ परामर्श दिया या नहीं, और, दिया तो क्या दिया।

गवर्नर का विशेष उत्तरदायित्व--गवर्नर निम्न लिखित विषयों के लिये विशेष रूप से उत्तरदायी होता है—यह उत्तर-दायित्व ब्रिटिश सरकार के प्रति है, भारतीय जनता अर्थात् उस के प्रतिनिधियों के प्रति नहीं—जब कभी उसे अपने इस उत्तर-दायित्व पर आघात पहुंचता हुआ प्रतीत होता है, तो वह अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार (मंत्रियों की सलाह के विरुद्ध भी) कार्य कर सकता है।

१—प्रान्त या उसके किसी भाग के शांति-भङ्ग का निवारण।

इसमें ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों की मांग को अवहेलना कर इस बात की कोई व्यवस्था नहीं की गयी है, कि केवल क़ानून भंग या आतङ्कवाद रोकने के लिये ही गवर्नर का उत्तरदायित्व माना जाय, और वह ऐसे अवसर पर केवल पुलिस विभाग से ही काम ले। गवर्नर को चाहे जिस प्रकार से शान्ति भंग की आशंका हो, वह उसके निवारणार्थ अपना उत्तरदायित्व मानकर चाहे जिस सरकारी विभाग को स्वेच्छानुसार आदेश कर सकता है।

२—अल्प-संख्यकों के उचित हितों की रक्षा।

भारतीय शासन विधान में न तो 'अल्प संख्यक समुदाय' की परिभाषा दी गयी है, और न उसके 'उचित हितों' की ही कोई सीमा निर्धारित की गयी है। यहां 'अल्प संख्यकों' में मुसलमान, ईसाई, दलित जातियां (हरिजन), सिख, ऐंग्लो-इंडियन आदि माने जाते हैं, और उनके 'उचित हितों' के नाम पर अनेक बुराइयां होती हैं। इस सम्बंध में राष्ट्र संघ द्वारा निर्धारित पद्धति विचारणीय है, जिसे योरप के बहुत से राष्ट्रों ने मान्य किया है। उसके अनुसार अल्प-संख्यक समाज वह है जो (१) भाषा, जाति और सम्प्रदाय में बहुसंख्यक समाज से मूलतः भिन्न हो, और (२) उसकी जन-संख्या काफ़ी हो—२०, २५ प्रति सैकड़ा से कम न हो; और यह संख्या भी इस तरह बटी होनी चाहिये कि वह दिये जाने वाले 'रक्षण' का उपयोग कर सके। फिर, रक्षण भी संस्कृति, भाषा, धर्म, और जातिगत विशेषताओं के संबंध में ही दिया जाता है: निर्वाचन या प्रतिनिधित्व आदि राजनैतिक विषयों में नहीं; इन विषयों में तो उसे अन्य समाज के साथ ही मिलकर कार्य करना होता है।

संख्या संबंधी उपर्युक्त कसौटी पर पंजाब में सिख, और बिहार, संयुक्तप्रांत, मदरास, और मध्यप्रांत में मुसलमान अल्प-संख्यक नहीं हैं। बंगाल और पंजाब में तो हिंदू ही अल्प-संख्यक हैं। भारतवर्ष में अल्प संख्यक समाज का प्रश्न इसी तरह हल होना चाहिये।

३—वर्तमान तथा भूत-पूर्व सरकारी कर्मचारियों (सिविलियनों, आई. सी. एस. आदि) और उनके आश्रितों के उन अधिकारों और उचित हितों की रक्षा का ध्यान रखना जो सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार उन्हें प्राप्त हैं।

गवर्नर को यह विशेषाधिकार प्राप्त होने से इन कर्मचारियों पर भारतीय मंत्रियों का प्रभाव या अधिकार कम रह जाना स्वाभाविक ही है।

४—प्रान्तीय क़ानूनों के सम्बन्ध में, इस बात की व्यवस्था करना कि व्यापारिक और जातिगत विषयों के भेद भाव का या पक्षपात-मूलक क़ानून न बने।

भारतवर्ष में, ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत अन्य देश निवासियों विशेषतया अंगरेज़ों को कितनी व्यापारिक, औद्योगिक तथा अन्य सुविधाएं और रियायतें प्राप्त हैं, यह सर्व-विदित है। अब इस व्यवस्था के अनुसार भविष्य में भी उनमें कमी नहीं हो सकती, चाहे उनसे भारतीयों के व्यापार और उद्योग आदि संबंधी हितों की उपेक्षा क्यों न हो।

५—अंशतः पृथक् (एक्सक्लूडेड) घोषित किये हुए क्षेत्रों के शासन और शांति का प्रबंध। [किसी प्रांत का कोई क्षेत्र पृथक् या अंशतः पृथक् सम्राट् की आज्ञा से घोषित किया जाता है। भारत मन्त्री पहले इस विषय का मसविदा पार्लिमेंट में उपस्थित करता है। सम्राट् किसी पृथक् किये हुए क्षेत्र या उसके किसी भाग को अंशतः पृथक् क्षेत्र या उसका भाग बनाये जाने की, तथा अंशतः पृथक् क्षेत्र या उसके किसी भाग को ऐसा न रखे जाने की हिदायत कर सकता है। वह किसी प्रान्त की सीमा–परिवर्तन या नये प्रांत के निर्माण पर किसी ऐसे भू-भाग को जो पहले किसी प्रांत में सम्मिलित न हो पृथक् या अंशतः पृथक् क्षेत्र या इसका कोई भाग घोषित कर सकता है।]

ब्रिटिश भारत के विविध प्रांतों में कुछ कुछ भाग पृथक् या अंशतः पृथक् क्षेत्र घोषित किये गये हैं। इनकी सूची काफ़ी बड़ी है। कहीं कोई ज़िला, कहीं कोई तहसील या तालुक़ा आदि ऐसा क्षेत्र ठहराया गया है। अनेक स्थानों में असीम खनिज या अन्य प्रकार की सम्पत्ति और सुन्दर प्राकृतिक दृश्य है। पृथक् किये हुए क्षेत्रों का शासन-प्रबन्ध गवर्नर के हाथ में रहता है, और अंशतः पृथक् क्षेत्रों में, उसका विशेष उत्तरदायित्व

होता है; इन में मन्त्रियों को उतना भी अधिकार नहीं होता जितना उन्हें प्रांत के अन्य भागों के सम्बन्ध में होता है। ब्रिटिश अधिकारी इनके लिये प्रतिनिधि शासन पद्धति अनुपयुक्त समझते हैं। यह व्यवस्था पिछड़े हुए भू-भाग या आदिम निवासियों की रक्षा, तथा देश हित के नाम पर की जाती है। इन क्षेत्रों में पुलिस आदि के अधिकारियों का ही प्रभुत्व होता है, नागरिकों के अधिकार अत्यल्प होते हैं, उन्हें अपने प्रांत के अन्य बंधुओं के साथ समानता से रहने और विकसित होने का अवसर नहीं दिया जाता। भारतीय जनता इस व्यवस्था को अत्यन्त हानिकर समझती है। उसके प्रतिनिधियों ने भारतीय व्यवस्थापक सभा में वह प्रस्ताव स्वीकार किया है जिसमें सकौन्सिल गवर्नर-जनरल से सिफ़ारिश की गयी है, कि १ जनवरी १९३७ ई० से ब्रिटिश बिलोचिस्तान सहित चीफ़ कमिश्नरों के प्रांतों तथा पृथक् और अंशतः पृथक् क्षेत्रों में समान रूप से शासन व्यवस्था स्थापित करने के लिये आवश्यक उपाय काम में लाए जांय।

६—देशी राज्यों के अधिकारों तथा उनके नरेशों के अधिकारों और मान-मर्यादा की रक्षा करना।

यह आशंका है कि गवर्नर के इस उत्तरदायित्व के कारण देशी नरेश भारतीय मंत्रियों (तथा भारतीय जनता) की उपेक्षा कर, जैसे-बने गवर्नर के कृपा-पात्र बनने का प्रयत्न करेंगे, और फलतः भारतीय हितों की अवहेलना कर ब्रिटिश हितों की यथा संभव रक्षा करने को तत्पर रहेंगे।

७—गवर्नर-जनरल की, अपनी मर्ज़ी से, क़ानून के अनुसार निकाली हुई आज्ञाओं और हिदायतों के पालन किये जाने को व्यवस्था करना।

उपर्युक्त उत्तरदायित्व तो सब गवर्नरों के हैं। कुछ गवर्नरों के इनके अतिरिक्त अन्य उत्तरदायित्व भी हैं; उदाहरणवत मध्य

प्रांत और बरार के गवर्नर पर इस विषय का भी उत्तरदायित्व है कि उस प्रान्त से होने वाली आय का उचित अंश बरार में अथवा बरार के लिये ख़र्च हो। सिन्ध के गवर्नर पर सक्खर बांध के उचित प्रबन्ध का भी विशेष उत्तरदायित्व है।

मन्त्रियों की प्रभाव-हीनता—गवर्नरों के उपर्युक्त उत्तरदायित्वों की व्यवस्था होने से वे भारतीय मन्त्रियों के प्रतिबन्ध से कितने मुक्त, तथा स्वेच्छाचारी हो सकते हैं, यह स्पष्ट ही है। वास्तव में वे ब्रिटिश सरकार के प्रति ही तो उत्तरदायी हैं, और कुछ अंश में गवर्नर-जनरल की आज्ञाओं का पालन करने वाले हैं, जो स्वयं भी ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी है। अन्यत्र बताया गया है कि गवर्नर को यह अधिकार होगा कि वह आवश्यकता समझने पर अपनी इच्छा से क़ानून बना सके और ख़र्च के लिये यथेष्ट रक़म मंजूर करसके। गवर्नर मंत्रियों को अपनी इच्छानुसार आज्ञा देसकता है, यदि मन्त्री उसकी आज्ञा का पालन न करें तो गवर्नर व्यवस्थापक मंडल को भंग करके अथवा बिना भंग किये उन्हें त्याग पत्र देने के लिये वाध्य कर सकता है, और उनके स्थान पर अपनी इच्छानुसार नयी नियुक्तियां कर सकता है; ये नये मन्त्री इसकी इच्छानुसार ही सब कार्य करेंगे, और कदाचित ऐसा हो कि गवर्नर को अपनी आज्ञा के पालन कराने के लिये उपर्युक्त मंत्री न मिलें तो वह शासन विधान भंग होने की घोषणा निकाल कर समस्त शासन कार्य अपने हाथ में ले सकता है। इससे मंत्रियों के प्रभाव-हीन होने में कुछ सन्देह नहीं रहता।

गवर्नर-जनरल का नियन्त्रण--जो कार्य गवर्नर अपनी मर्ज़ी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कर सकता है, उसके सम्बन्ध में वह गवर्नर-जनरल के नियन्त्रण में रहता है, और

गवर्नर-जनरल द्वारा समय समय पर दी हुई सूचनाओं के अनुसार व्यवहार करता है। ये सूचनाएँ गवर्नर के नाम जारी किये हुए आदेशपत्र के अनुसार ही होती हैं, (इसके सम्बन्ध में पहले कह आये हैं)। परन्तु गवर्नर के, उपर्युक्त व्यवस्था के विपरीत किये हुए कार्य के भी औचित्य का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। इससे गवर्नर की शक्ति का अनुमान किया जा सकता है।

ऐडवोकेट जनरल—गवर्नरों के प्रान्त में से प्रत्येक में एक एक ऐडवोकेट जनरल रहता है। इस पद के लिये उस प्रान्त का गवर्नर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करता है जिसमें हाईकोर्ट का जज होने की योग्यता हो। उसका कर्तव्य प्रान्तीय सरकार को ऐसे विषयों पर परामर्श देना और ऐसे अन्य क़ानूनी कार्य करना, होता है, जो गवर्नर समय समय पर उसके लिये निर्धारित करे। वह उस समय तक अपने पद पर आरूढ़ रहता है, जब तक कि गवर्नर चाहे; और उसे उतना वेतनादि मिलता है, जितना गवर्नर निश्चय करे।

पुलिस सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था--गवर्नर अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार मुल्की या फ़ौजी पुलिस के सम्बन्ध में नियम बनाता है, उन्हें स्वीकार करता है, तथा उनमें संशोधन करता है एवं आज्ञाएँ जारी करता है; अर्थात् इस विषय में मन्त्रियों का परामर्श लेना उसके लिये आवश्यक नहीं है। पहले कहा जा चुका है कि गवर्नर शान्ति भंग निवारण तथा सरकारी कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिये उत्तरदायी है। उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार पुलिस विभाग का नियन्त्रण पूर्ण रूप से उसके हाथ में रहता है। भारतवर्ष के प्राय सभी दलों की यह मांग थी कि क़ानून और सुव्यवस्था के विषय पर सर्व-

साधारण के निर्वाचित प्रतिनिधियों वाली व्यवस्थापक सभा का नियन्त्रण रहे। परन्तु यह बात स्वीकार नहीं की गयी। प्रजातन्त्रात्मक शासन पद्धति का रूप दर्शाने के लिये यहां मन्त्रियों की व्यवस्था की गयी है। परंतु उन पर इतना भी विश्वास नहीं किया गया कि वह पुलिस विभाग सम्बन्धी नियम आदि बना सकें।

आतङ्कवाद का दमन—यदि किसी प्रान्त के गवर्नर को यह प्रतीत हो कि प्रांत की शान्ति ऐसे हिंसात्मक कार्यों से ख़तरे में डाली जा रही है, जो गवर्नर की सम्मति में क़ानून द्वारा स्थापित सरकार को उलटने वाले हैं तो वह यह आदेश कर सकता है कि वह अमुक कार्य अपने हाथ में लेता है। फिर उसे उस कार्य को अपनी मर्ज़ी से करने का अधिकार हो जायगा, और जब तक वह दूसरा आदेश जारी न करे, वह उक्त अधिकार का प्रयोग करता रहेगा। ऐसा आदेश ज़ारी करते समय गवर्नर एक अफ़सर को यह अधिकार दे सकता है कि वह प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की सभा में भाषण दे, और उसकी अन्य कार्रवाई में भाग ले। इस प्रकार का अधिकार-प्राप्त अफ़सर व्यवस्थापक मंडल की एक या दोनों सभाओं में, दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में, तथा उनकी उस कमेटी में, जिसमें वह गवर्नर द्वारा मेम्बर नामज़द किया गया हो, भाषण दे सकता है, तथा उसकी कार्रवाई में भाग ले सकता है, परन्तु उसे मत देने का अधिकार नहीं होता।

गवर्नर अपनी मर्ज़ी के अनुसार इस बात के लिये नियम बनाता है कि उपयुक्त अपराधों का पता मिलने के साधन या कागजात प्रान्त के किसी पुलिस-अफ़सर द्वारा पुलिस के किसी अन्य अफ़सर को, पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल या कमिश्नर की आज्ञा के बिना न बताए जांय, तथा प्रांत में सम्राट् की नौकरी

करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को, गवर्नर की आज्ञा बिना, न बताये जांय।

इसका अर्थ यह है कि आतंकवाद को दमन करने के लिये खुफ़िया पुलिस का जो विभाग है, उस पर मंत्रियों का कुछ अधिकार नहीं होता। गवर्नर और पुलिस इंस्पेक्टर जनरल या कमिश्नर को ही (जो मंत्रियों के अधीन कहे जाते हैं) गुप्त कागज़ात सम्बन्धी सब अधिकार हैं।

आतंकवाद के दमन के लिये दो बातें उपयोगी हुआ करती हैं, जनता का राजनैतिक असंतोष हटाने वाले शासन सुधार करना, तथा देश की आर्थिक उन्नति करते हुए घातक बेकारी को मिटाना। शासकों को मन चाहे अधिकार देने से आतंकवाद मिटाने की आशा पूरी नहीं होती।

कार्य संचालन सम्बन्धी नियम-निर्माण—प्रांतीय सरकार का सब शासन कार्य गवर्नर के नाम से सूचित किया जाता है। जो कार्य गवर्नर को अपनी मर्ज़ी से करने की आवश्यकता नहीं होती, उसके सुविधा-पूर्वक सम्पादन के लिये तथा मन्त्रियों को विविध कार्य सौंपने के लिये वह आवश्यक नियम बनाता है। इन नियमों इस बात की व्यवस्था रहती है कि मन्त्री तथा सेक्रेटरी गवर्नर को प्रांतीय सरकार के कार्य सम्बंधी ऐसी समस्त सूचना दें, जो नियमों में उल्लिखित हो या जिसका दिया जाना गवर्नर आवश्यक समझे; विशेषतया, मन्त्री गवर्नर को, और सेक्रेटरी सम्बन्धित मंत्री एवं गवर्नर को, उस विषय की सूचना दें जो गवर्नर के विचाराधीन हो और जिसमें उसके विशेष उत्तरदायित्व का सम्बन्ध हो, या आने वाला हो। इस प्रसङ्ग में गवर्नर अपने मंत्रियों का परामर्श लेने के बाद, अपनी मर्ज़ी से कार्य करता है।

इससे स्पष्ट है गवर्नर का विविध विभागों के सेक्रेटरियों से जो सम्बन्ध होता है वह मंत्रियों के द्वारा न होकर सीधा भी हो सकता है। और, वह किसी भी विषय की जानकारी के लिये उन्हें आदेश कर सकता है। इस प्रकार केवल कुछ विशेष विषयों में ही नहीं, साधारण रोज़मर्रा के शासन कार्य में भी गवर्नर का पूरा नियंत्रण और अधिकार रहता है। फिर, मंत्रियों का उत्तरदायित्व क्या रहा ?

चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्त--नवीन विधान के अनुसार निम्न लिखित प्रान्त चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्त हैं—

१—ब्रिटिश बिलोचिस्तान।
२—देहली।
३—अजमेर-मेरवाड़ा।
४—कुर्ग।
५—अंडमान-निकोबार।
६—पन्थ पिपलोदा नाम का क्षेत्र।

पहले बताया जाचुका है कि इस नवीन विधान के बनने से पूर्व भी छः ही प्रान्त ऐसे थे, जिनका शासन चीफ़ कमिश्नरों द्वारा होता था। उन छः प्रांतों में से पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त को अब गवर्नर का प्रान्त बना दिया गया है, तथा पन्थ पिपलोदा नाम का क्षेत्र चीफ़ कमिश्नर का एक नया प्रान्त बनाया गया है।

इन प्रान्तों का शासन--इन प्रान्तों का शासन चीफ़ कमिश्नर द्वारा, गवर्नर-जनरल करता है। चीफ़ कमिश्नरों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल अपनी मर्ज़ी से करता है। इन प्रान्तों के लिये क़ानून भारतीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा बनाए जाते हैं;

केवल कुर्ग में व्यवस्थापक परिषद है। नवीन शासन विधान में कहा गया है कि जब तक सपरिषद सम्राट् अन्य नियम न बनाये, उक्त व्यवस्थापक परिषद का संगठन, अधिकार और कार्य तथा इस प्रान्त सम्बन्धी आय व्यय के नियम पूर्ववत रहेंगे।

पुलिस और आतंकवाद सम्बन्धी व्यवस्था—गवर्नरों के प्रान्तों में गवर्नरों को पुलिस और आतंकवाद सम्बन्धी जो अधिकार हैं, और कुछ (गुप्त) कागज़ात तथा जानकारी सम्बन्धी जो नियम हैं, वे चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों में भी हैं, वहां पर जो बात गवर्नर और प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के सम्बन्ध में कही गयी है, उसके स्थान पर यहां गवर्नर-जनरल और केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल समझना चाहिये।

यह तो चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों की बात हुई। गवर्नरों के प्रान्तों के शासन प्रबन्ध के विषय में पहले कहा जा चुका है।

विशेष वक्तव्य—पूर्वोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गवर्नर के शासन-विषयक विशेष अधिकार प्रायः अमर्यादित हैं (क़ानून निर्माण सम्बन्धी अधिकारों का विचार आगे किया जाय)। गवर्नर के, ब्रिटिश सरकार के अधीन और उसी के प्रति उत्तरदायी होते हुए, यह कहना दुस्साहस होगा कि नवीन विधान से प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की गयी है (केन्द्र का तो कुछ ज़िक्र ही नहीं है)। यह ठीक है कि पूर्व विधान के अनुसार (गवर्नरों के) प्रांतों में केवल 'हस्तान्तरित' कहे जाने वाले विषयों में ही मंत्रियों का अधिकार था, सुरक्षित विषयों में नहीं था। और, अब सभी विषयों में मंत्रियों का अधिकार है। पर यह अधिकार नाम मात्र का है। अब मंत्री ऐसे ही रहेंगे जो गवर्नर की इच्छानुसार चलने वाले हों, जिन पर प्रजा-प्रतिनिधियों का नियंत्रण न हो।

प्रान्तीय स्वराज्य का अर्थ है पूर्ण उत्तरदायित्व की स्थापना, अर्थात् जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथ में शासन शक्ति का आजाना; अथवा, राजनैतिक भाषा में कहें तो मंत्रियों का व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी होना। यह बात इस विधान में नहीं है। पुनः अभी तक प्रांतों के शासन का सूत्र-संचालन प्रायः भारत की केन्द्रीय सरकार द्वारा होता था। उसके द्वारा कुछ अधिकार प्रान्तीय सरकारों को दे दिये जाते थे। अब प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकारों के अधीन न होंगी, परन्तु यह भेद केवल क़ानूनी दृष्टि से होगा। सर्व साधारण भारतीय जनता के लिये तो स्थिति पूर्ववत ही रहेगी। पहले भी ब्रिटिश सरकार का ही शासन था, और अब भी उसी का होगा। यह उसी के नियुक्त किये हुए तथा उसके प्रति उत्तरदायी गवर्नर की इच्छा और विवेक पर निर्भर रहेगा कि यहाँ जनता अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता का कहां तक उपभोग करे। यदि गवर्नर अपने विशेष अधिकारों का, जो कि असीम हैं, उपयोग न करे तो जनता को प्रान्तीय स्वराज्य की कुछ अंश में प्राप्ति हो सकती है, इसके विपरीत यदि वह विशेषाधिकारों से काम ले, जैसा कि विधान के अनुसार वह ले सकता है, तो यह विधान जनता को वर्तमान अवस्था से भी पीछे ले जाने वाला है।

नवां परिच्छेद

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल

(१)

संगठन

[पहले कहा जा चुका है कि भारतीय संघ की स्थापना अभी नहीं हुई है। उसके होने तक, इस परिच्छेद में जहां जहां 'संघ' और 'संघीय व्यवस्थापक मण्डल' शब्दों का प्रयोग हुआ है, वहां उनसे क्रमशः केन्द्रीय सरकार और भारतीय व्यवस्थापक मण्डल का आशय लिया जाना चाहिये। संघान्तरित देशी राज्यों सम्बन्धी नियम, संघ स्थापित होने तक लागू न होंगे।]

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की सभाएँ और उनकी अवाध—पहले बताया जा चुका है कि ब्रिटिश भारत के ग्यारह प्रान्त 'गवर्नर के प्रान्त' कहलाते हैं। इनके व्यवस्थापक मण्डलों में सम्राट् के प्रतिनिधि-स्वरूप एक-एक गवर्नर होता है; उसके अतिरिक्त, छः प्रान्तों अर्थात् (१) मदरास, (२) बम्बई, (३) बंगाल, (४) संयुक्त प्रान्त, (५) बिहार और (६) आसाम में दो दो सभाएँ, और शेष पांच प्रान्तों अर्थात् पंजाब, मध्यप्रान्त और बरार, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, उड़ीसा और सिंध में एक एक सभा है। जिन छः प्रान्तों के व्यवस्थापक मण्डलों में दो दो सभाएँ हैं, उनकी उन सभाओं के नाम क्रमशः व्यवस्थापक परिषद (लेजिस्लेटिव कौंसिल), और व्यवस्थापक सभा (लेजिस्लेटिव एसेम्बली) होंगे। और, जहां एक ही सभा है, वह व्यवस्थापक

सभा कहलाती है। किसी प्रान्त की व्यवस्थापक सभा (एसेम्बली) यदि वह पहले भंग न की जाय तो अपनी प्रथम बैठक के निर्धारित दिन से, अधिक से अधिक पांच वर्ष तक रहती है, इस समय के बाद वह भंग हो जाती है। व्यवस्थापक परिषद एक स्थायी संस्था होती है, जो कभी भङ्ग नहीं होती, इसके यथासम्भव एक-तिहाई सदस्य निर्धारित नियमों के अनुसार प्रति तीसरे वर्ष बदलते रहेंगे।

इन सभाओं के सम्बन्ध में अन्य बातें जानने से पहले यह ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है कि इनके सदस्यों को चुनने में कौन कौन व्यक्ति भाग नहीं ले सकते, और कैसी योग्यता के व्यक्ति सदस्य हो सकते हैं।

कौन कौन व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकते ?—निर्वाचक सूची में किसी व्यक्ति का नाम दर्ज नहीं किया जाता, जब तक कि वह इक्कीस वर्ष का न हो, और (क) ब्रिटिश प्रजा न हो, या (ख) संघ में सम्मिलित देशी राज्य का नरेश या प्रजा न हो, [कुछ निर्धारित दशाओं में ये व्यक्ति निर्वाचक हो सकते हैं।]

जो व्यक्ति पागल हो, और न्यायालय से पागल ठहराया गया हो, वह निर्वाचक नहीं हो सकता।

सिक्ख, मुसलमान, ऐंग्लो-इण्डियन, योरपियन या भारतीय ईसाई निर्वाचक संघों से क्रमशः इन्हीं जातियों के व्यक्ति निर्वाचक हो सकते हैं। ये व्यक्ति साधारण निर्वाचक संघ में मत नहीं दे सकते; हां, आसाम और उड़ीसा में स्त्रियों के लिये सुरक्षित जगहों के सदस्यों के निर्वाचन में मत दे सकते हैं।

साधारण निर्वाचन में कोई व्यक्ति एक से अधिक निर्वाचक

संघ में मत नहीं दे सकता। हां, किसी निर्वाचक संघ में मत देने वाला व्यक्ति स्त्रियों के चुनाव के लिये विशेष रूप से बनाये हुए निर्वाचक संघ में मत दे सकता है।

निर्वाचन सम्बन्धी अपराध का दोषी व्यक्ति मत देने का अधिकारी नहीं होता। जो व्यक्ति इस प्रकार मत देने के अयोग्य होजाय, उसका नाम निर्वाचक सूची से काट दिया जाता है।

देश बहिष्कार, या क़ैद की सज़ा भुगतने वाला व्यक्ति मत नहीं देसकता।

स्त्रियों के मताधिकार के सम्बन्ध में यह व्यवस्था है कि जिस स्त्री का नाम उसके पति के देहान्त के समय, उसके पति की योग्यता के कारण निर्वाचन सूची में दर्ज हो, उसका नाम उक्त सूची में तब तक दर्ज रहता है, जब तक कि वह फिर विवाह न करले, या उसमें कोई उपयुक्त अयोग्यता न हो जाय। एक आदमी की योग्यता के आधार पर एक ही स्त्री मताधिकारिणी हो सकती है।

सदस्यों की योग्यता आदि—वही व्यक्ति प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा का सदस्य चुने जाने योग्य होता है जिसका नाम निर्वाचक संघ की सूची में दर्ज होता है, और (क) जो ब्रिटिश प्रजा, या संधान्तरित देशी राज्य का नरेश या प्रजा हो, (ख) जो व्यवस्थापक सभा की मेम्बरी के लिये पचीस वर्ष, और व्यवस्थापक परिषद की मेम्बरी के लिये तीस वर्ष से कम का न हो, तथा (ग) जिसमें निर्धारित योग्यता हो।

कोई व्यक्ति प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा या परिषद का सदस्य चुने जाने या होने के अयोग्य ठहराया जाता है अगर

(क)—वह कोई ऐसी सरकारी नौकरी करता हो जो प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून के अनुसार सदस्यता के लिये अयोग्यता मानी जाती हो।

[संघ या किसी प्रान्त का मन्त्री होने से कोई व्यक्ति सदस्य बनने के अयोग्य नहीं होता।]

(ख)—वह पागल हो, और किसी न्यायालय द्वारा पागल ठहराया गया हो।

(ग)—वह ऐसा दिवालिया हो, जो बरी न किया गया हो।

(घ)—वह नवीन प्रान्तीय शासन पद्धति के अमल में आने से पूर्व या इसके पश्चात् निर्वाचन सम्बन्धी निर्धारित अपराध का दोषी पाया गया हो, और इस बात को निर्धारित समय व्यतीत न हुआ हो।

(च)—वह नवीन प्रान्तीय शासन पद्धति के अमल में आने से पूर्व या इसके पश्चात् ब्रिटिश भारत के, या किसी संघान्तरित देशी राज्य के न्यायालय में किसी अन्य अपराध का अपराधी ठहराया गया हो, और उसे देश बहिष्कार या दो वर्ष से अधिक की क़ैद की सज़ा मिली हो, और उसे मुक्त हुए पांच वर्ष या ऐसा समय जो गवर्नर उचित समझे, न व्यतीत हुआ हो।

(घ)—उसने संघीय या प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल का सदस्य नामज़द किया जाकर, या किसी नामज़द व्यक्ति का निर्वाचन एजेन्ट होकर, निर्धारित समय में निर्वाचन व्यय का हिसाब पेश न किया हो, और उस बात को पांच वर्ष का समय व्यतीत न हुआ हो, या गवर्नर ने उसकी इस विषय

सम्बन्धी अयोग्यता न हटाई हो। यह अयोग्यता, जिस दिन हिसाब पेश किया जाना चाहिये, उससे एक मास तक या विशेष दशा में गवर्नर की इच्छानुसार अधिक समय तक न मानी जायगी।

कोई व्यक्ति किसी सभा का सदस्य चुने जाने के अयोग्य होगा, जब कि वह फ़ौजदार अपराध के लिये देश बहिष्कार या क़ैद का दंड भुगतरहा हो।

यदि कोई ऐसा व्यक्ति सदस्य के रूप में, किसी सभा में बैठे और मत दे, जिसमें सदस्यता की योग्यता न हो या जो सदस्य होने के लिये अयोग्य ठहराया गया हो, तो जितने दिन वह बैठेगा और मत देगा, उस पर प्रति दिन पांचसौ रुपये के हिसाब से दण्ड होगा।

सदस्यों के विशेषाधिकार और भत्ता आदि—जहां तक कोई सदस्य इन सभाओं के नियमों की अवहेलना न करे, उसे इन में भाषण करने की स्वतन्त्रता है। किसी सदस्य पर सभाओं या इनकी कमेटियों में भाषण या मत देने के कारण, या सभा के आदेशानुसार उसकी रिपोर्ट, मत या कार्रवाई प्रकाशित करने के कारण, कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं की जासकती। अन्य बातों में सदस्यों के विशेषाधिकार वे हैं, जो समय समय पर व्यवस्थापक मंडल के क़ानून से निर्धारित हों। जो सदस्य सभाओं के नियमों या स्थायी आज्ञाओं को भंग करें, या अशिष्ट व्यवहार करें, उन्हें सभाओं से हटाने के अतिरिक्त, सभाएं या उनकी कमेटी या उन का कोई पदाधिकारी उनको न्यायालय की भांति कोई दण्ड नहीं देसकता। जो व्यक्ति इन सभाओं में से किसी की कमेटी के सामने, कमेटी के चेयरमेन द्वारा कहे जाने पर, साक्षी देने या

ज़रूरी काग़ज़ात पेश करने से इंकार करे, उसको, न्यायालय में दोषी ठहराने के बाद, दंड देने के नियम व्यवस्थापक मंडल के क़ानून से बनाये जासकते हैं।

व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों को दिया जाने वाला वेतन और भत्ता समय समय पर मंडल के क़ानून द्वारा निर्धारित होता है।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाएं—आगे, पृष्ठ ८६ में दिये हुए नक्शे से यह ज्ञात होजायगा कि विविध प्रांतों की व्यवस्थापक सभाओं में किस किस निर्वाचक संघ से कितने कितने सदस्य होते हैं।

नक्शे के सम्बन्ध में निम्न लिखित बातें उल्लेखनीय हैं:—

जो मतदाता मुसलमान, सिख, भारतीय ईसाई, ऐंग्लो-इण्डियन, अथवा योरपियन निर्वाचन क्षेत्रों के नहीं होते, उन्हें ही साधारण निर्वाचक संघ में मत देने का अधिकार होता है। इस निर्वाचक संघ में अधिकांश हिन्दू ही होते हैं।

हरिजनों के लिये सिन्ध और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त को छोड़कर, अन्य सब प्रान्तों में कुछ जगह सुरक्षित हैं, और ये साधारण जगहों में ही सम्मिलित हैं। उक्त सुरक्षित जगहों का हिसाब इस प्रकार है:—मदरास ३०, बम्बई १५, बङ्गाल ३०, संयुक्त प्रान्त २०, पञ्जाब ८, बिहार १५, मध्यप्रान्त बरार २०, आसाम, ७, और उड़ीसा ६।

बम्बई में साधारण जगहों में ७ जगह मराठों के लिये सुरक्षित हैं।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाएं

प्रान्त	साधारण	पिछड़े हुए क्षेत्र और जातियां	सिख	मुसलमान	ऐंग्लो इंडियन	योरोपियन	भारतीय ईसाई	व्यापार उद्योग और खनिज	जमींदार	विश्व विद्यालय	श्रम	स्त्रियां: साधारण	स्त्रियां: सिख	स्त्रियां: मुसलमान	स्त्रियां: ऐंग्लो इंडियन	स्त्रियां: भारतीय ईसाई	योग
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
मदरास	१४६	१	...	२८	२	३	८	६	६	१	६	६	...	१	...	१	२१५
बम्बई	११४	१	...	२९	२	३	३	७	२	१	७	५	...	१	...	...	१७५
बंगाल	७८	...	...	११७	३	११	२	१९	५	२	८	२	...	२	१	...	२५०
संयुक्त प्रान्त	१४०	...	...	६४	१	२	२	३	६	१	३	४	...	२	...	...	२२८
पंजाब	४२	...	३१	८४	१	१	२	१	५	१	३	१	१	२	...	...	१७५
बिहार	८६	७	...	३९	१		१	४	४	१	३	३	...	१	...	...	१५२
मध्यप्रांत-बरार	८४	१		१४	१	१	...	२	३	१	२	३	...	...	...	...	११२
आसाम	४७	९	...	३४	...	१	१	११	...	...	४	१	...	...	...	...	१०८
प० सीमाप्रान्त	९	...	३	३६	...	...	...	...	२	...	...	...	...	...	...	...	५०
उड़ीसा	४४	५	...	४	...	...	१	१	२	...	१	२	...	...	...	...	६०
सिंध	१८	...	...	३३	...	...	...	२	२	...	१	१	...	१	...	...	६०

हरिजनों और मराठों के वास्ते स्थान सुरक्षित करने के लिये कुछ साधारण निर्वाचक संघों में एक या अधिक जगह उनके लिये सुरक्षित रखी जायगी; उक्त प्रत्येक निर्वाचक संघ में कम से कम एक स्थान अन्य ऐसे व्यक्ति के चुने जाने के लिये रहेगा, जो साधारण निर्वाचक संघ से चुना जा सकता हो।

जिस प्रान्त में हरिजनों के लिये साधारण जगह सुरक्षित हैं, वहां उनके निर्वाचक संघ के सब निर्वाचक एक प्रारम्भिक निर्वाचन में भाग लेकर, प्रत्येक जगह के लिये चार उम्मेदवार चुनेंगे। जो चार व्यक्ति इस चुनाव में सब से अधिक मत प्राप्त करेंगे, वे ही साधारण निर्वाचक संघ के उम्मेदवार माने जांयगे, दूसरे व्यक्ति हरिजनों की ओर से उम्मेदवार नहीं माने जांयगे।

पंजाब के ज़मींदारों की जगहों में से एक जगह तुमांदार के लिये सुरक्षित है।

भिन्न भिन्न जातियों की स्त्रियों का निर्वाचन या तो उन्हीं निर्वाचक संघों से हो जायगा, जिनसे उन उन जातियों के पुरुषों का होता है, अथवा उनके लिये पृथक् निर्वाचक संघ होंगे।

निर्वाचक कौन हो सकता है?—जिन व्यक्तियों में निर्वाचक की पहले बताई हुई अयोग्यता न हो और जिन में निम्न लिखित योग्यताएं हों,* वे ही प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के किसी निर्वाचक संघ की सूची में अपना नाम दर्ज करा सकते हैं:—

१—जो निर्वाचक संघ के क्षेत्र की सीमा के अन्दर रहने वाले हों; और

* भिन्न भिन्न प्रान्तों में निर्वाचकों की साम्पत्तिक योग्यता सम्बन्धी नियमों में भेद हैं। स्थानाभाव से हमने यहां संयुक्त प्रान्त के ही मुख्य मुख्य नियमों का उल्लेख किया है।

२—(क) जो संयुक्त प्रान्त में ऐसे मकान के मालिक हों जिसका वार्षिक किराया २४) रु० या उससे अधिक हो, या

(ख) जो संयुक्तप्रान्त में ऐसे शहर में, जहां पर म्युनिसिपैलिटी द्वारा हैसियत-कर लिया जाता हो, १५०) रु० की वार्षिक आय पर यह कर देते हों, या

(ग) जो भारत सरकार को आय-कर देते हों, या

(घ) जो ऐसी ज़मीन के मालिक हों जिसकी आय निर्धारित रक़म या उससे अधिक हो, या

[संयुक्त प्रान्त में, कुमाऊं की पहाड़ी पट्टियों में ज़मीन के सब मालिक तथा सब 'खैकार' तथा अन्य स्थानों में ५) रु० वार्षिक मालगुज़ारी वाली ज़मीन के मालिक निर्वाचक हो सकते हैं]

(च) जिनके अधिकार में निर्धारित आय या उससे अधिक की ज़मीन हो, या

[संयुक्त प्रान्त में १०) रु० या अधिक वार्षिक लगान, देने वाले व्यक्ति निर्वाचक हो सकते हैं ।]

(छ) जिन में शिक्षा सम्बन्धी निर्धारित योग्यता हो, या

(ज) जो भारतीय सेना के पेंशन पाने वाले या नौकरी छोड़ चुकने वाले अफ़सर या सिपाही हों ।

कुमाऊं की पहाड़ी पट्टियों में, वह व्यक्ति भी निर्वाचक संघ में मत दे सकता है जो वहां किसी गांव में शिल्पकार हो, और

गांव के शिल्पकार परिवारों से निर्धारित रीति से प्रतिनिधि चुना गया हो।

किसी स्त्री का नाम निर्वाचक सूची में निम्न लिखित दशा में भी दर्ज किया जाता है:—

क—अगर वह भारतीय सेना के पेन्शन पाने वाले या नौकरी छोड़ चुकने वाले अफ़सर या सिपाही की पेन्शन पाने वाली विधवा या माता हो, या

ख—अगर उसे लिखना पढ़ना आता हो, या

ग—अगर उसके पति में निर्धारित योग्यता हो,

[इस प्रसंग में पति के लिये जो आर्थिक योग्यता निर्धारित की गयी है, वह पूर्व सूचित साधारण योग्यता से कुछ अधिक है।]

ये योग्यताएं साधारण तथा जातिगत निर्वाचक संघों के विषय की हैं। (क) व्यापार उद्योग और खणिज, (ख) ज़मीदार, (ग) विश्व विद्यालय, और (घ) श्रम के निर्वाचक संघों के निर्वाचकों के लिये अन्य योग्यताएं निर्धारित हैं।

निर्वाचन नियमों की आलोचना; मताधिकार—भारतीय नेताओं की मांग थी कि प्रत्येक बालिग़ पुरुष स्त्री को मताधिकार मिले। सरकार की ओर से नियुक्त मताधिकार कमेटी ने भी बालिग़ मताधिकार को उत्तम और उपयोगी माना, परन्तु विशाल जन संख्या और अशिक्षा के होते हुए, एवं योग्य पुलिस आदि अधिकारियों की कमी के कारण उसने इसे व्यवहारिक नहीं

समझा। नर्मदल के कुछ भारतीय नेताओं की राय थी कि एक लाख या उससे अधिक आबादी वाले ३० शहरों में बालिग़ मताधिकार दिया जाय; तथा पार्लिमैंट ऐसी व्यवस्था करे कि ३० साल में समस्त स्थानों के बालिग़ों को मताधिकार प्राप्त हो जाय। परन्तु यह बात भी कमेटी ने स्वीकार न की। नवीन शासन विधान से पूर्व यहाँ ब्रिटिश भारत के ७१ लाख अर्थात् तीन प्रति शत व्यक्तियों को मताधिकार था, अब उक्त कमेटी की योजना के अनुसार साढ़े तीन करोड़ पुरुष स्त्रियों को, अर्थात् लगभग १४ प्रतिशत जनता को मताधिकार होगा। इस प्रकार मताधिकार में वृद्धि अवश्य हुई है; परन्तु जितनी वृद्धि हुई है, उसका लाभ नहीं के बराबर है, कारण, (क) प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं का निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर होने से राष्ट्रीयता को क्षति पहुँचती है, और (ख) छः प्रान्तों में दूसरी सभा अर्थात् व्यवस्थापक परिषदें स्थापित करके, उन प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं (ऐसेम्बलियों) को शक्ति-हीन कर दिया गया है। अस्तु, मताधिकार की वृद्धि तो असंतोषप्रद है ही, वह उपर्युक्त कारणों से और भी हानिकर होगई है।

पृथक् निर्वाचन—भिन्न भिन्न सम्प्रदाय या पेशे आदि के आदमी तो सभी देशों में होते हैं, पर यहां सरकार का सहारा पाकर ये राजनैतिक कार्यों में भी अपनी पृथक्ता और भेद भाव की घातक सूचना देते हैं। लार्ड मिंटो की कृपा से भारतवासी पृथक् निर्वाचन के माया जाल में फँसे। तब से विशेषतया मुसलमानों ने उससे मुक्ति न पायी। वरन् रोग बढ़ता ही गया। नवीन विधान के अनुसार यहां १५ प्रकार के निर्वाचक संघ होते हैं :—

(१) साधारण, (२) सिख, (३) मुस्लिम, (४) ऐंग्लो-

इंडियन, (५) योरपियन, (६) भारतीय ईसाई, (७) व्यापार उद्योग और खणिज, (८) ज़मीदार, (९) विश्व विद्यालय, (१०) श्रम, (११) स्त्रियां—साधारण, (१२) स्त्रियां—सिख, (१३) स्त्रियां—मुसलमान, (१४) स्त्रियां—ऐंग्लो-इंडियन, (१५) स्त्रियां—भारतीय ईसाई।

महात्मा गान्धी की जी-तोड़ कोशिश से, हरिजनों* के साथ समझौता होगया, और उनके लिये साधारण निर्वाचक संघों से चुने जाने वाले प्रतिनिधियों में ही स्थान सुरक्षित कर दिये गये। अन्यथा, उपर्युक्त सूची में एक की और भी वृद्धि हो जाती, और निर्वाचक संघ १६ प्रकार के होते। कहना नहीं होगा, निर्वाचक संघों की अनेकता राष्ट्रीयता का अंग भंग करती हैं, जनता को वास्तविक स्वराज्य के लिये संयुक्त निर्वाचन चाहिये।

स्त्री-मताधिकार--नवीन विधान से जो शासन प्रणाली प्रचलित की गयी है, उसमें पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी पूर्वापेक्षा अधिक मताधिकार दिया गया है। परन्तु देने का ढंग ऐसा है कि उससे हानि बहुत होती है। भारतीय महिला समाज की ओर से पृथक् निर्वाचन का विरोध किया था। उसकी न्यूनतम मांग यह थी कि नागरिक क्षेत्रों में बालिग़ स्त्रियों को मताधिकार सम्मिलित

* 'हरिजन' कही जाने वाली जातियां भिन्न भिन्न प्रांतों में, तथा कहीं कहीं तो एक प्रांत के भी विविध भागों में पृथक् पृथक् हैं। भारतीय समाज में इस शब्द का वर्तमान उपयोग, कुछ ही समय से, महात्मा गांधी की प्रेरणा से होने लगा है; उससे पहले 'दलित श्रेणी' (डिप्रैस्ड क्लास) का उपयोग होता था। नवीन शासन विधान में 'शेड्यूल्ड कास्ट्स' (सूची या परिशिष्ट में अंकित जातियां) का उपयोग किया गया है। इस श्रेणी में वे लोग आते हैं, जिन्हें हिंदू समाज के कट्टर व्यक्ति न्यूनाधिक अस्पृश्य मानते हैं।

चुनाव द्वारा दिया जाय । परन्तु उसको सफलता न मिली। स्त्रियों के मताधिकार में शिक्षा, सम्पत्ति, और पतिनत्व सम्बन्धी शर्तें रखदी गयीं । इसके अतिरिक्त उन्हें साम्प्रदायिक आधार पर मताधिकार देकर, उनकी इस समय तक की एकता का लोप करके, उन्हें जाति धर्म आदि के भेद भावों से विभक्त कर दिया गया है । अब प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा की भिन्न भिन्न जाति आदि की महिला—सदस्याएं स्त्री-समाज की प्रतिनिधि न होकर, केवल जाति या धर्म विशेष की स्त्रियों की प्रतिनिधि होंगी । इसमें महिला समाज या भारतीय राजनीति की अवनति स्पष्ट है ?

प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद—आगे दिये हुये नक्शे से यह ज्ञात होजायगा कि किन प्रान्तों की व्यवस्थापक परिषदों में किस किस निर्वाचक संघ के कितने कितने सदस्य होते हैं ।

नक्शे के सम्बन्ध में निम्न लिखित बातें उल्लेखनीय हैं :—

यद्यपि प्रत्येक सदस्य का कार्य काल साधारणतया नौ वर्ष है, तथापि परिषद के प्रथम संगठन के समय गवर्नर कुछ सदस्यों का कार्य काल घटाकर ऐसी व्यवस्था करता है कि प्रत्येक प्रकार के सदस्यों में से लगभग एक–तिहाई तीन तीन वर्ष के बाद अवकाश ग्रहण करते जांय। अर्थात् प्रथम संगठन के बाद किसी भी समय परिषद में नये सदस्यों की संख्या एक तिहाई से अधिक नहीं होती ।

जो सदस्य किसी अकस्मात ख़ाली होने वाली जगह के लिये चुना जाता है वह अपने पूर्वाधिकारी के शेष रहे हुए कार्य काल तक ही अपने पद पर रहता है ।

प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदें

प्रान्त	साधारण	मुसलमान	योरपियन	भारतीय ईसाई	व्यवस्थापक सभा	गवर्नर द्वारा नामज़द	योग
मदरास	३५	७	१	३	...	८ से कम नहीं १० से अधिक नहीं	५४ से कम नहीं ५६ से अधिक नहीं
बम्बई	२०	५	१	...	...	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं	२९ से कम नहीं ३० से अधिक नहीं
बङ्गाल	१०	१७	३	...	२७	६ से कम नहीं ८ से अधिक नहीं	६३ से कम नहीं ६५ से अधिक नहीं
संयुक्त प्रान्त	३४	१७	१	...	...	६ से कम नहीं ८ से अधिक नहीं	५८ से कम नहीं ६० से अधिक नहीं
बिहार	९	४	१	...	१२	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं	२९ से कम नहीं ३० से अधिक नहीं
आसाम	१०	६	२	...	...	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं	२१ से कम नहीं २२ से अधिक नहीं

मुसलमान, योरपियन तथा भारतीय ईसाई निर्वाचक संघों से इन्हीं जातियों के व्यक्ति मत दे सकते हैं। और, ये व्यक्ति साधारण निर्वाचक संघ में मत नहीं दे सकते। साधारण निर्वाचक संघ में इन जातियों के व्यक्तियों को छोड़कर अन्य जातियों या सम्प्रदायों के व्यक्ति ही मत दे सकते हैं।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं के सदस्यों द्वारा चुने जाने वाले सदस्य 'एकाकी हस्तान्तरित मताधिकार' (सिंगल ट्रान्सफरेबल वोट) प्रणाली से, आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार चुने जाते हैं।

एकाकी हस्तान्तरित मताधिकार—इस प्रणाली में मत-दाता को एक ही मत देने का अधिकार रहता है, पर वह यह सूचित कर सकता है कि सर्व प्रथम उसके मत का उपयोग किस उम्मेदवार के लिये हो, और यदि उस उम्मेदवार को उसके मत की आवश्यकता न हो (वह उम्मेदवार अन्य मत-दाताओं के मतों से ही चुना जाय) तो उस मत का उपयोग किस दूसरे उम्मेदवार के लिये हो, और यदि दूसरे उम्मेदवार को भी उस मत की आवश्यकता न हो तो किस तीसरे या चौथे उम्मेदवार के लिये उसका उपयोग किया जाय। मतदाता अपने मत-पत्र पर उम्मेदवारों के नाम के सामने १, २, ३, आदि अंक लिखकर यह सूचित करता है कि उसके चुनाव या पसन्द का क्रम क्या है, वह किस उम्मेदवार को सर्व प्रथम स्थान देता है, किसे दूसरा, और किसे तीसरा, आदि।

उम्मेदवारों की सफलता का हिसाब लगाने के लिये पहले यह देखा जाता है कि किसी उम्मेदवार को कम से कम कितने मतों की आवश्यकता है। यह संख्या सब प्राप्त मतों को, निर्वाचित होने वाले सदस्यों की संख्या में एक जोड़कर उससे भाग देने से,

तथा भजनफल में एक जोड़ देने से, मालूम होजाती है। इसे 'कोटा', पर्याप्त संख्या या आनुपातिक भाग कहते हैं । उदाहरणार्थ यदि पांच सदस्य निर्वाचित होने वाले हैं, और सोलह उम्मेदवार हैं जिनके लिये कुल मिलाकर ५४ मत प्राप्त हुए हैं तो 'कोटा' =५४÷(५+१)+१=१०; जो उम्मेदवार प्रथम पसन्द के इतने मत प्राप्त कर लेता है, जो 'कोटा' अर्थात् पर्याप्त संख्या के समान या उससे अधिक हों, वह निर्वाचित घोषित किया जाता है। यदि उसके प्राप्त मत 'कोटा' से अधिक हों, तो उनमें से 'कोटा' निकाल देने पर जो शेष बचते हैं उनके सम्बन्ध में यह विचार किया जाता है कि दूसरी पसन्द में इनमें से कितने मत किस उम्मेदवार के लिये हैं। अगर यह (दूसरी पसन्द वाला) उम्मेदवार स्वयं अपने लिये प्राप्त मतों के ही आधार पर निर्वाचित घोषित होगया हो, तो उक्त शेष मतों का उपयोग तीसरी पसन्द के व्यक्ति के लिये किया जाता है। इसी प्रकार आगे होता रहता है। यदि ऐसा करने पर आवश्यकतानुसार उम्मेदवार निर्वाचित नहीं होते तो जिन उम्मेदवारों के मत आनुपातिक भाग से कम होते हैं, उनमें से जिसके सबसे कम हों उसे असफल घोषित करके उसके लिये प्राप्त मतों का उपयोग उन उम्मेदवारों के लिये किया जाता है, जिनके लिये वे मत दूसरी पसन्द में रखे गये हों। इसके बाद फिर जो उम्मेदवार शेष रहेंगे, उनमें से जिसके लिये मत सबसे कम होंगे, उसके लिये प्राप्त मतों का भी इसी प्रकार उपयोग किया जायगा; इस प्रकार यह क्रिया उस समय तक होती रहेगी, जब तक कि जितने सदस्यों को निर्वाचित करना हो, उतने निर्वाचित न होजांय।

निर्वाचकों तथा सदस्यों की योग्यता—शासन विधान में यह नहीं बताया गया है कि प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के सदस्यों तथा उन्हें चुनने वाले निर्वाचकों की योग्यता क्या हो,

उसमें केवल यही कहा गया है कि उनमें निर्धारित योग्यता होनी चाहिये। तथापि इसमें संदेह नहीं कि निर्वाचकों की योग्यता का आधार उच्च आर्थिक स्थिति अथवा उच्च पदों वाली सरकारी नौकरी होगी, और इन परिषदों के निर्वाचित सदस्य सर्वसाधारण हितों के प्रतिनिधि न होकर उक्त थोड़े से निर्वाचकों का ही मत प्रकट करने वाले होंगे।

दूसरी सभा के विषय में वक्तव्य---पहले सब गवर्नरों के प्रान्तों में एक एक ही व्यवस्थापक सभा थी। अब सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार एक दो नहीं, आधे दर्जन प्रान्तों में दूसरी सभा ('सेकिंड चेम्बर') का आयोजन किया गया है। केन्द्र में दूसरी सभा (अर्थात् राज्य परिषद) होने से क्या हानि है, यह पहले (पृष्ठ ५१-२ में) बताया जा चुका है, प्रान्तों में दूसरी सभा की व्यवस्था उससे भी अधिक हानिकर है।

इसमें निम्न लिखित दोष हैं:— (१) इसके सदस्यों—ज़मीदार तालुकेदार और पूँजीपति आदि के स्वार्थ सर्वसाधारण के स्वार्थों से भिन्न होते हैं। वे लोग प्रायः प्रगति-विरोधी होते हैं। इसलिये यदि व्यवस्थापक सभा में राष्ट्रीय और उन्नत तथा प्रगति-शील विचारों के पर्याप्त सदस्य पहुंच ही जांय तो भी व्यवस्थापक परिषद उनकी शक्ति को विशेष कार्यशील होने में सदैव बाधक होती रहेगी। (२) पहले बताया जा चुका है कि यह परिषद एक स्थायी संस्था है। प्रथम संगठन के बाद किसी भी समय इसके नये सदस्यों की संख्या एक-तिहाई से अधिक नहीं होगी। इस प्रकार यदि प्रान्त में सर्व साधारण के सामने कोई ज्वलंत समस्या उपस्थित हो और उसे हल करने के लिये विशेष उपाय काम में लाने की आवश्यकता हो तो परिषद में दो-तिहाई सदस्य ऐसे

देश काल का प्रतिनिधित्व करने वाले होंगे जिसमें प्रस्तुत समस्या और विचार उपस्थित न थे, इस प्रकार विशेष सुधार होने की आशा नहीं हो सकती। (३) इन परिषदों में से प्रत्येक में कुछ सदस्य गवर्नर द्वारा नामज़द होते हैं। प्रांतीय स्वराज्य की व्यवस्था के साथ व्यवस्थापक परिषद् में नामज़दगी की बात कैसी खटकती है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। (४) बंगाल और बिहार की व्यवस्थापक परिषदों में इन प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं द्वारा चुने हुए सदस्यों की काफ़ी संख्या है; यहां तक कि वे नामजद सदस्यों के साथ मिलकर कुल सदस्यों के आधे से अधिक होजाते हैं। राजनैतिक प्रगति और प्रान्तीय स्वराज्य के साथ यह अप्रत्यक्ष चुनाव की बात सर्वथा बे-मेल और प्रतिक्रिया-मूलक है।

जब कि नवीन विधान के निर्माण की क्रिया जारी थी, संयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में इस विषय का विचार होते समय कहा गया था कि एक ही सभा रहने से प्रायः सभा और गवर्नर के बीच जो मत भेद होजाया करता है, वह दूसरी सभा से बहुत कुछ कम हो जायगा। इससे तो दूसरी सभा बनाने का हेतु ही यह सिद्ध होता है कि वह लोकमत के विरुद्ध रहती हुई, जन-साधारण के प्रतिनिधियों का प्रभाव घटाने और गवर्नर की शक्ति बढ़ाने में सहायक रहे। दूसरी सभा, गवर्नर के स्वेच्छाचार को निर्विघ्न रूप से होने देने के लिये भले ही सहायक हो, वह देश को प्रान्तीय स्वराज्य के निकट लाने में एक असंदिग्ध बाधा है।

दसवां परिच्छेद

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल
(२)
कार्य पद्धति

[पिछले परिच्छेद की भांति संघ की स्थापना होने तक, इस परिच्छेद में भी जहां जहां ' संघ ' और ' संघीय व्यवस्थापक मण्डल ' शब्दों का प्रयोग हुआ है, उनसे क्रमशः केन्द्रीय सरकार और भारतीय व्यवस्थापक मण्डल का आशय लिया जाना चाहिये; और, संघान्तरित देशी राज्य सम्बन्धी बातें अभी लागू न होंगी ।]

व्यवस्थापक मंडल का अधिवेशन— प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की सभा या सभाओं का, प्रति वर्ष, कम से कम एक अधिवेशन होने, और किसी अधिवेशन की अन्तिम बैठक के दिन से एक वर्ष के भीतर, दूसरा अधिवेशन होने का नियम है। इस नियम को ध्यान में रखते हुए, गवर्नर प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की दोनों या एक सभा का अधिवेशन ऐसे समय और स्थान पर कर सकता है, जिसे वह उचित समझे। वह सभाओं का कार्य-काल बढ़ा सकता है, और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा (एसेम्बली) को भंग कर सकता है।

गवर्नर का, भाषण और सन्देश सम्बन्धी अधिकार- गवर्नर अपनी मर्जी से व्यवस्थापक सभा में, और यदि उसके प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद हो तो किसी भी सभा में या दोनों

सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में भाषण कर सकता है। वह दोनों में से किसी भी सभा में किसी प्रस्ताव के सम्बन्ध में अपना संदेश भेज सकता है चाहे वह मण्डल के सामने उस समय विचाराधीन हो, या न हो। जिस सभामें कोई सन्देश भेजा जायगा, वह यथा सम्भव शीघ्रता-पूर्वक संदेश में सूचित विषय का विचार करेगी।

मन्त्रियों और ऐडवोकेट-जनरल के अधिकार—प्रत्येक मन्त्री और ऐडवोकेट जनरल को व्यवस्थापक सभा में, और यदि उस प्रांत में व्यवस्थापक परिषद हो तो किसी भी सभा में, या दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में बोलने और कार्रवाई में भाग लेने का अधिकार होता है। मन्त्री उस सभा में मत दे सकते हैं, जिसके वे सदस्य हों।

सभाओं के पदाधिकारी—संगठित होने के पश्चात्, प्रांतीय व्यवस्थापक सभा यथा सम्भव शीघ्र अपने सदस्यों में से एक सभापति और एक उपसभापति चुनती है। इन्हें क्रमशः 'स्पीकर' और 'डिप्टी स्पीकर कहा जाता है। जब ये व्यवस्थापक सभा के सदस्य न रहें तो इन्हें अपना पद छोड़ देना पड़ता है। ये गवर्नर को लिखित सूचना देकर अपने पद का त्याग कर सकते हैं, और व्यवस्थापक सभा के उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पास किये हुए प्रस्ताव द्वारा अपने पदसे हटाये जा सकते हैं, हां ऐसे प्रस्ताव को उपस्थित करने की सूचना चौदह दिन पहले दी जानी चाहिये।

जब सभापति का पद रिक्त हो तो उपसभापति, और उसका भी पद रिक्त होने की दशा में गवर्नर द्वारा नियुक्त किया हुआ सदस्य इस पद का कार्य सम्पादन करता है। सभापति और उप-सभापति को प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा निर्धारित वेतन दिया जाता है; और, जब तक मंडल द्वारा निर्धारित न हो, उन्हें गवर्नर द्वारा निर्धारित वेतन दिया जाता है।

उपर्युक्त नियम (पद त्याग के विषय को छोड़ कर), जिस प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद हैं, वहां उस परिषद के लिये भी व्यवहृत होते हैं।

सभाओं में मत प्रदान—इन सभाओं में से प्रत्येक की बैठक में, एवं दोनों की संयुक्त बैठक में, प्रस्तुत प्रश्नों का निर्णय उपस्थित सदस्यों के बहुमत के अनुसार होता है। सभापति या उनके स्थान पर कार्य करने वाले व्यक्ति को प्रथम मत देने का अधिकार नहीं होता; हां, जब किसी प्रश्न के पक्ष और विपक्ष में समान मत हों तो उपर्युक्त पदाधिकारी को अपना निर्णायक मत देना होता है।

ये सभाएं अपने सदस्यों के कुछ स्थान रिक्त होने की दशा में भी, अपना कार्य कर सकती हैं, और इनकी कार्रवाई उस दशा में भी नियमित मानी जाती है जब कि पीछे यह ज्ञात होजाय कि कोई ऐसा व्यक्ति वहां बैठा और उसने उनमें भाग लिया, जो ऐसा करने का अधिकारी न था। अगर किसी समय प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा की मीटिंग में कुल सदस्यों के छटे भाग से कम उपस्थित हों, या परिषद की मीटिंग में दस मेम्बरों से कम हों तो सभापति या उनके स्थान पर कार्य करने वाले व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह सभा की कार्रवाई को उस समय तक स्थगित कर दे जब तक कि उनकी ऊपर लिखी कमी दूर न हो जाय।

सदस्यों सम्बन्धी नियम—प्रत्येक सभा का हर एक सदस्य, अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व गवर्नर के सामने राज-भक्ति की शपथ लेता है। कोई सदस्य दोनों सभाओं का सदस्य नहीं हो सकता; गवर्नर के अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार

बनाये हुए नियमों में इस बात की व्यवस्था होती है कि जो व्यक्ति दोनों सभाओं का सदस्य चुना जाय, वह किसी एक में अपना स्थान रिक्त कर दे। अगर किसी सदस्य में निर्धारित अयोग्यता होजाय (यह पिछले परिच्छेद में बताई गयी है), या वह गवर्नर को लिखित त्याग पत्र देदे तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है। अगर किसी सभा का सदस्य, सभा की अनुमति बिना, साठ दिन तक सभा की सब बैठकों से अनुपस्थित रहे तो सभा उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकती है। इन साठ दिनों में वे दिन नहीं गिने जाते जो दो अधिवेशनों के बीच में हों, या जिनमें लगातार चार से अधिक दिन तक कार्य स्थगित रहा हो।

प्रान्तीय व्यस्थापक मण्डल का कार्य क्षेत्र—नवीन विधान के अनुसार व्यवस्था सम्बन्धी विषय तीन सूचियों में विभक्त किये गये हैं:— (क) संघीय व्यवस्था सूची, (ख) संयुक्त व्यवस्था सूची, और (ग) प्रान्तीय व्यवस्था सूची। जिन विषयों के सम्बन्ध में प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल क़ानून बना सकता है वे संक्षेप में निम्न लिखित हैं:—

१—सार्वजनिक शांति (सेना छोड़कर), अदालतों का संगठन और फ़ीस (संघ न्यायालय छोड़कर)। २—संघ न्यायालय को छोड़कर, अन्य न्यायालयों का इस सूची के विषयों के संबंध में निर्णय देने का अधिकार; माल की अदालतों की कार्य पद्धति। (३) पुलिस। (४) जेल। (५) प्रान्त का सार्वजनिक ऋण। (६) प्रान्तीय सरकारी नौकरियां, नौकरी कमीशन। (७) प्रान्तीय पेन्शन। (८) प्रांतीय निर्माण कार्य, भूमि और इमारतें। (९) सरकारी तौर से भूमि प्राप्त करना। (१०) पुस्तकालय तथा अजायबघर। (११) प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के चुनाव। (१२) प्रान्तीय मन्त्रियों, तथा व्यवस्थापक सभाओं और परिषदों के

सभापति, उपसभापति और सदस्यों का वेतन और भत्ता। (१३) स्थानीय स्वराज्य संस्थाएं। (१४) सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफ़ाई; अस्पताल, जन्म और मृत्यु का लेखा। (१५) तीर्थयात्रा। (१६) क़ब्रिस्तान। (१७) शिक्षा। (१८) सड़कें, पुल, घाट और आवागमन के अन्य साधन (बड़ी रेलों को छोड़ कर)। (१९) जल-प्रबन्ध, आबपाशी, नहर, बांध तालाब और जलसे उत्पन्न होने वाली शक्ति। (२०) कृषि, कृषि-शिक्षा और अनुसन्धान, पशु चिकित्सा तथा क़ांजी हाउस। (२१) भूमि, मालगुज़ारों और किसानों के पारस्परिक सम्बन्ध। (२२) जंगल। (२३) खान, तेल के कुओं का नियंत्रण, और खणिज उन्नति। (२४) मछलियों का व्यवसाय। (२५) जंगली पशुओं की रक्षा। (२६) गैस, और गैस के कारख़ाने। (२७) प्रान्त के अन्दर का व्यापार वाणिज्य, मेले तमाशे, साहूकारा और साहूकार। (२८) सराय। (२९) उद्योग धन्धों की उन्नति, माल की उत्पत्ति, पूर्ति और वितरण। (३०) खाद्य पदार्थों आदि में मिलावट; तोल और माप। (३१) शराब और अन्य मादक वस्तुओं सम्बन्धी क्रय विक्रय और व्यापार (अफ़ीम की उत्पत्ति छोड़ कर)। (३२) ग़रीबों का कष्ट-निवारण, बेकारी। (३३) कारपेरेशनों का संगठन, संचालन और परिमाप्ति; अन्य व्यापारिक साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक आदि संस्थाएं; सहकारी समितियां। (३४) दान, और दान देने वाली संस्थाएं। (३५) नाटक थियेटर और सिनेमा। (३६) जुआ और सट्टा। (३५) प्रान्तीय विषयों सम्बन्धी क़ानूनों के विरुद्ध होने वाले अपराध। (३८) प्रांत के काम के लिये आंकड़े तैयार करना। (३९) भूमि का लगान, और मालगुज़ारी सम्बन्धी पैमायश। (४०) आबकारी, शराब, गांजा, अफ़ीम आदि पर कर। (४१) कृषि सम्बन्धी आय पर कर। (४२) भूमि, इमारतों, पर कर। (४३) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार सम्बन्धी कर। (४४) खणिज

अधिकारों पर कर। (४५) व्यक्ति-कर। (४६) व्यापार, पेशे धन्धे पर कर। (४७) पशुओं और किश्तियों पर कर। (४८) माल की विक्री और विज्ञापनों पर कर। (४९) चुँगी। (५०) विलासिता की वस्तुओं पर कर; इस में दावत, मनोरंजन, जुए सट्टे पर का कर सम्मिलित है। (५१) स्टाम्प। (५२) प्रान्त के भीतर के जल-मार्गों में जाने वाले माल और यात्रियों पर कर। (५३) मार्ग-कर (टोल)। (५४) अदालती फ़ीस को छोड़ कर किसी प्रान्तीय विषय सम्बन्धी फ़ीस।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकारों की सीमा-- गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति बिना प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल की सभा में कोई ऐसा प्रस्ताव या संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकता:—

(क) जो पार्लिमैंट के ब्रिटिश भारत सम्बन्धी किसी क़ानून को रद्द (रिपील) या संशोधित करता हो, या जो उससे असंगत हो।

(ख) जो गवर्नर-जनरल के किसी क़ानून या आर्डिनैंस को रद्द या संशोधित करता हो, या उससे असंगत हो।

(ग) जिसका प्रभाव किसी ऐसे विषय पर पड़ता हो, जो गवर्नर-जनरल को नवीन विधान के अनुसार अपनी मर्ज़ी से करना हो।

(घ) जो योरपियन ब्रिटिश प्रजा सम्बन्धी फ़ौजदारी कार्य-पद्धति पर प्रभाव डालता हो।

गवर्नर की पूर्व स्वीकृति बिना कोई ऐसा प्रस्ताव या संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकता:—

(१) जो गवर्नर के किसी क़ानून या आर्डिनैंस को रद्द या संशोधित करता हो, या उससे असंगत हो।

(२) जो पुलिस सम्बन्धी किसी क़ानून के प्रस्ताव को रद्द या संशोधित करता हो, या उसपर असर डालता हो।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल को ऐसा क़ानून बनाने का अधिकार नहीं है, जिसका प्रभाव ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग के लिये पार्लिमैंट के क़ानून बनाने के अधिकार पर पड़े, या जिस का सम्बन्ध सम्राट् या उसके परिवार से, सम्राट् के भारत में प्रभुत्व से, सपरिषद सम्राट् की आज्ञाओं से, या भारत मंत्री के नवीन विधान के अनुसार बनाये हुए नियमों से, या गवर्नर या गवर्नर-जनरल के अपनी मर्ज़ी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार बनाये हुए नियमों से हो, या जिससे सम्राट् के किसी न्यायालय से अपील करने की अनुमति देने के विशेषाधिकार में कमी पड़े।

भेद भाव सम्बन्धी व्यवस्था--नवीन विधान में इस बात की परी व्यवस्था कीगयी है, कि इङ्गलैंड में बसे हुए ब्रिटिश प्रजाजनों के साथ भारतवर्ष में वैसाही व्यवहार हो, जैसा भारतीय प्रजाजनों के साथ होता है, कोई भेद भाव मूलक क़ानून न बनाया जाय। उन्हें ब्रिटिश भारत में आने में कोई बाधा न हो, न उन्हें जन्म-स्थान, जाति, वंश, भाषा, निवास स्थान आदि के आधार पर यहां यात्रा करने, सम्पत्ति प्राप्त करने और बेचने, सरकारी पद प्राप्त करने, या व्यापार अथवा उद्योग धंधा करने में कोई बाधा रहे। गवर्नर के विशेषाधिकारों के प्रसङ्ग में यह बताया जाचुका है कि यदि भारतवर्ष में इंगलैंड के माल की आयात के सम्बन्ध में कोई भेद भाव मूलक क़ानून ज़ारी हो या शासन विभाग की ओर कोई ऐसा आदेश जारी हो तो गवर्नर

उसे रोक सकता है। विधान में यह स्पष्ट व्यवस्था की गयी है कि भारतीय व्यवसाय को आर्थिक सहायता देने के सम्बन्ध में, यहां व्यापार करने वाली भारत और इंगलैंड की कम्पनियों में कोई भेद भाव न रखा जाय। इस विधान के निर्माण से चाहे पूर्व संगठित हो, या पीछे, उक्त विदेशी कम्पनियों से भारतीय कम्पनियों के समान ही व्यहार हो। जिन जहाजों की रजिस्टरी इंगलैंड में हुई हो, उनके सम्बन्ध में भी किसी प्रकार का—जहाज़, उसके स्वामी, अफ़सर, मल्लाह, यात्री या उस पर लदे हुए माल आदि के विषय में, कोई भेद भाव मूलक क़ानून न बनाया जाय। हां, यदि ब्रिटिश भारत में रजिस्टरी किये हुए जहाज़ों के सम्बन्ध में इंगलैंड में भेद भाव मूलक क़ानून हो, तो उतने अंश तक यहां भेव भाव रह सकता है।

यह नीति समानता मूलक दिखाई देती है, परन्तु जब कि वर्तमान दशा में ब्रिटिश और भारतीय जहाज़ों की स्थिति में आकाश पाताल का अन्तर है, समानता की नीति के व्यवहार का अर्थ असमानता को चिरस्थायी बनाये रखना है। विविध व्यापार और उद्योग धन्धों के सम्बन्ध में भी अंगरेज़ों और भारतीयों में भेद भाव मूलक क़ानून न बनाये जाने की व्यवस्था की गयी है। इस सम्बन्ध में भी ऊपर कही हुई बात विचारणीय है। निदान, भेद भाव मूलक क़ानून को रोकने के आधार पर, ऐसा प्रतीत होता है कि अंगरेज़ों, अंगरेज़ व्यापारियों, कम्पनियों तथा अन्य पेशेवरों को भारतीयों, भारतीय व्यापारियों, कम्पनियों और अन्य पेशेवरों से स्थायी रूप से उच्च स्थान दिये जाते रहने का आयोजन किया गया है।

व्यवस्थापक मण्डल के नियम—व्यवस्थापक मण्डलों की कार्य प्रणाली के नियम बहुत विस्तृत हैं। हम यहां उनमें से

कुछ ख़ास ख़ास का उल्लेख मात्र कर सकते हैं । गवर्नर को अधिकार है कि ग़ैर-सरकारी कार्य के लिये समय और क्रम निश्चय करे। सभापति को अधिकार है कि किसी प्रश्न के पूछे जाने की अनुमति, इस आधार पर देने से इन्कार करदे कि यह प्रान्तीय सरकार से विशेष सम्बन्ध नहीं रखता । कुछ विषय ऐसे हैं, जिन पर मंडल की किसी सभा में विचार नहीं होसकता, उनके अन्तिम निर्णय का अधिकार गवर्नर को है । सार्वजनिक महत्व के किसी ख़ास विषय की बहस करने के लिये परिषद् के अधिवेशन को कुछ शर्तों के साथ स्थगित करने का प्रस्ताव किया जा सकता है। सभापति को अधिकार है कि वह किसी सदस्य के भाषण में पुनरुक्ति या अप्रासंगिक विषय का उल्लेख करे, और, उसको बोलने से रोके। सभापति किसी सदस्य को किसी मन्त्री पर अविश्वास या निन्दा का प्रस्ताव करने की अनुमति उस समय देता है, जब सदस्यों की एक बड़ी संख्या खड़ी होकर, अनुमति देने के पक्ष में होना सूचित कर दे। सदस्यों की यह संख्या भिन्न भिन्न प्रान्तों में पृथक् पृथक् है।

व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों को प्रश्न पूछने और प्रस्ताव करने का वैसा ही अधिकार है जैसा भारतीय व्यवस्थापक मंडल के सम्बन्ध में हम पांचवें परिच्छेद में बता आये हैं । मंडल में किसी प्रस्ताव या उसके किसी भाग के उपस्थित किये जाने से रोकने का अधिकार, उस प्रान्त के गवर्नर को होता है।

क़ानून कैसे बनते हैं ?---आय व्यय सम्बन्धी मसविदों के विशेष नियमों का उल्लेख आगे किया जायगा, उन्हें ध्यान में रखते हुए किसी क़ानून का मसविदा व्यवस्थापक सभा में, और जिस प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद् है, किसी भी सभा में, उसके सदस्य द्वारा उपस्थित किया जा सकता है। मसविदा किसी ऐसे

विषय के ही सम्बन्ध में हो सकता है जो प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल की अधिकार-सीमा के अन्दर हो। सरकारी मसविदा सरकार के उस सदस्य द्वारा उपस्थित किया जाता है जो मसविदे के विषय का अधिकार रखता हो। जब कोई ग़ैर-सरकारी सदस्य कोई मसविदा उपस्थित करना चाहता है तो उसे अपने इस विचार की, पहले सूचना देनी होती है। जब कोई मसविदा नियमानुसार उपस्थित हो चुकता है तो वह प्रायः एक विशेष कमेटी में भेजा जाता है। इस कमेटी का चेयरमैन वह सरकारी सदस्य होता है जो इस विषय का अधिकार रखता हो। उसकी रिपोर्ट उस सभा में पेश की जाती है, जिसका कि उक्त प्रस्तावक सदस्य हो। पश्चात् मसविदे के प्रत्येक वाक्यांश पर पृथक् पृथक् विचार किया जाता है। सर्व सम्मति या बहुमत द्वारा स्वीकृत होने पर मसविदा उस सभा में पास हुआ कहा जाता है।

यदि उस प्रान्त में दूसरी व्यवस्थापक सभा हो तो उपर्युक्त पहली सभा में पास हुआ मसविदा, दूसरी सभा में भेजा जाता है। जब यह इस सभा में भी उसी रूप में पास हो जाता है, या ऐसे संशोधनों सहित पास होजाता है, जिन्हें पहली सभा स्वीकार कर ले, तो यह मसविदा दोनों सभाओं में, अर्थात् व्यवस्थापक मंडल में पास हुआ कहा जाता है।

यदि कोई मसविदा जो व्यवस्थापक सभा में पास होगया है, और व्यवस्थापक परिषद में भेज दिया गया है, परिषद में आने के बारह महिने समाप्त होने से पूर्व गवर्नर की स्वीकृति के लिये न भेजा जाय तो गवर्नर उस पर विचार करने और मत लेने के लिये दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक करा सकता है। यदि गवर्नर को यह प्रतीत हो कि मसविदा अर्थ सम्बन्धी है, अथवा ऐसे विषय सम्बन्धी है, जिसका प्रभाव उन कार्यों पर पड़ेगा जिनके

विषय में उसे अपनी मर्ज़ी या व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करना है, तो वह बारह महिने से पूर्व भी सभाओं की संयुक्त बैठक करा सकता है। यदि दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में मसविदा (यदि कोई संशोधन दोनों सभाओं द्वारा स्वीकृत हो तो उसके सहित), दोनों सभाओं के उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के बहुमत से पास होजाय तो वह दोनों सभाओं में (पृथक् पृथक्) पास हुआ समझा जायगा।

संशोधन किस प्रकार उपस्थित किये जा सकते हैं, इस के सम्बन्ध में नियम निर्धारित है, और उनके सम्बन्ध में सभापति का स्थान ग्रहण करने वाले व्यक्ति का निर्णय अन्तिम माना जाता है।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा, या जिस प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद् भी है, दोनों सभाओं द्वारा पास किया हुआ मसविदा गवर्नर के सामने रखा जाता है। गवर्नर को यह अधिकार है कि वह अपनी मर्ज़ी से उसको सम्राट् की ओर से स्वीकार करे, या अपनी स्वीकृति को रोकले, या उसे गवर्नर-जनरल के विचारार्थ रख छोड़े। गवर्नर को यह भी अधिकार है कि वह मसविदे को इस संदेश सहित लौटादे कि सभा या सभाएं मसविदे या उसके किन्हीं अंशों पर पुनः विचार करें, विशेषतया उसके द्वारा सूचित संशोधनों को उपस्थित करने का विचार करें। इस पर सभा या सभाओं को उस मसविदे के सम्बन्ध में पुनः विचार करना पड़ता है।

जब कोई मसविदा प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल से पास होजाने पर, गवर्नर–जनरल के विचारार्थ रख छोड़ा जाता है, तो गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह सम्राट् की ओर से उसे

स्वीकार करे, या अपनी स्वीकृति को रोके, अथवा उसे सम्राट् की इच्छा प्रकट होने के लिये रख छोड़े। गवर्नर-जनरल चाहे तो गवर्नर को यह हिदायत कर सकता है कि वह उस मसविदे को सभा या सभाओं में, निर्धारित संदेश सहित भेज दे। जब मसविदा इस प्रकार लौटा दिया जाता है तो सभा या सभाओं को उस पर तदनुसार विचार करना होता है, और अगर ये उसे मूल रूप में या संशोधनों सहित पास कर दें तो यह पुनः गवर्नर-जनरल के विचारार्थ रखा जायगा।

सम्राट् की इच्छा प्रकट होने के लिये रख छोड़ा हुआ मसविदा प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल का क़ानून उस समय तक नहीं बनता, जब तक कि गवर्नर के सामने उपस्थित किये जाने के बारह महिने के भीतर वह सार्वजनिक विज्ञप्ति द्वारा यह सूचित न करदे कि सम्राट् ने उसको स्वीकृति देदी है।

गवर्नर या गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकार किये हुए किसी क़ानून को सम्राट् उसकी स्वीकृति के दिन से बारह महिने तक अस्वीकार कर सकता है; इस दशा में गवर्नर इस बात की सूचना सार्वजनिक विज्ञप्ति द्वारा कर देता है, और इस विज्ञप्ति के दिन से क़ानून रद्द होजाता है।

इस प्रकार प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा पास किये हुआ मसविदा, जब उसे गवर्नर स्वीकार करले; और सम्राट् अस्वीकार न करे, अथवा यदि गवर्नर उसे गवर्नर-जनरल या सम्राट् की स्वीकृति के लिये रख छोड़े तो जब क्रमशः इनकी स्वीकृति मिल जाय, क़ानून बन जाता है।

कुछ अन्य बातें--व्यवस्थापक मंडल की सभाओं के

भवनों में कुछ दर्शक भी उपस्थित हो सकते हैं। प्रत्येक दर्शक को पहले एक 'पास' लेना होता है। 'पास' अपने परिचय के किसी सदस्य द्वारा लिया जासकता है, यह जिस व्यक्ति के लिये होता है वही उसका उपयोग कर सकता है, दूसरे व्यक्ति के काम नहीं आ सकता।

सभा भवन में सदस्यों के बैठने के स्थान एक ख़ास ढङ्ग से निश्चित किये जाते हैं, जिससे सरकारी पक्ष तथा विपक्ष के एवं भिन्न भिन्न दलों के मत गिनने में यथा-सम्भव सुविधा हो। भवन में अध्यक्ष, सदस्यों, मन्त्रियों और सेक्रेटरियों के अतिरिक्त कुछ समाचारपत्रों के सम्वाददाताओं के भी बैठने की व्यवस्था रहती है।

जिस दिन सभा में कोई नया सदस्य उपस्थित होता है, उस दिन का पहला कार्य उस सदस्य का राजभक्ति की शपथ लेना होता है। यह कार्य कभी कभी ही होता है। साधारणतया दैनिक कार्य क्रम में पहली बात प्रश्नोत्तरों की होती है। यह कार्य थोड़ी ही देर का होता है, इसके बाद क़ानूनी मसविदों या प्रस्तावों पर विचार होता है। सार्वजनिक महत्व के विषय की बहस करने के लिये, अधिवेशन स्थगित करने के प्रस्ताव का विचार शाम के चार बजे होता है। उस दिन उस समय अन्य कार्य-वाही बन्द करके वह प्रस्ताव लेलिया जाता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि प्रस्ताव पर बाद विबाद होते हुए ही, सभा की बैठक का समय समाप्त होजाता है, और प्रस्ताव पर मत लिये जाने का अवसर नहीं आता। इस प्रकार निर्णय न होने की दशा में प्रस्ताव को 'चर्चा में ही गया' ('टाकूड आउट') कहते हैं।

आय व्यय के विषयों सम्बन्धी कार्य पद्धति– गवर्नर प्रति वर्ष प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल की सभा या दोनों सभाओं

के सामने उस वर्ष के अनुमानित आय व्यय का नक्शा उपस्थित कराता है। उसमें दो प्रकार की मदों की रक़में पृथक् पृथक् दिखायी जाती हैं। (१) जिनपर प्रांतीय व्यवस्थापक सभा का मत लिया जाता है, और (२) जिन पर मत नहीं लिया जाता। कर निर्धारण तथा व्यय के लिये मांग के प्रस्तावों पर व्यवस्थापक परिषद का मत नहीं लिया जाता।

व्यय की निम्न लिखित मदों पर प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा को मत देने का अधिकार नहीं है:—

(क) गवर्नर का वेतन और भत्ता, तथा उसके कार्यालय सम्बन्धी निर्धारित व्यय।

(ख) प्रान्तीय ऋण सम्बन्धी व्यय, सूद आदि।

(ग) मंत्रियों और ऐडवोकेट जनरल का वेतन और भत्ता।

(घ) हाईकोर्ट के जजों का वेतन और भत्ता।

(च) 'पृथक्' क्षेत्रों के शासन सम्बन्धी व्यय।

(छ) अदालती निर्णयों के अनुसार होने वाला व्यय।

(ज) अन्य व्यय जो नवीन शासन विधान या किसी प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून के अनुसार किया जाना आवश्यक हो। इसके अन्तर्गत उन सब कर्मचारियों के वेतन और भत्ते भी सम्मिलित हैं, जो भारत मंत्री द्वारा नियुक्त होते हैं, जैसे इण्डियन सिविल सर्विस, या इण्डियन पुलिस सर्विस आदि के कर्मचारी।

कोई प्रस्तावित व्यय उक्त मदों में से किसी में आता है, या नहीं, इसका निर्णय गवर्नर अपनी मर्ज़ी से करता है। (क) को छोड़ कर अन्य मदों पर व्यवस्थापक मंडल में वादानुवाद हो सकता है। इन अन्य मदों के ख़र्च के प्रस्ताव व्यवस्थापक सभा के

मत के लिये मांग के रूप में रखे जाते हैं; इस सभा को अधिकार है कि यह किसी मांग को स्वीकार करे, अस्वीकार करे, या उसे कुछ घटाकर स्वीकार करे।

गवर्नर की सिफ़ारिश के बिना किसी काम के लिये रुपये की मांग का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता।

यदि सभा व्यय सम्बन्धी कोई मांग स्वीकार न करे, या घटाकर स्वीकार करे, और, इससे गवर्नर की सम्मति में उसके उत्तरदायित्व को पूरा करने में वाधा उपस्थित हो तो वह अपने विशेषाधिकार से, रद्द की हुई या घटाई हुई मांग की पूर्ति कर सकता है।

व्यय का पूरक नक्शा—यदि किसी वर्ष निर्धारित व्यय से अधिक ख़र्च की आवश्यकता हो तो गवर्नर सभा या दोनों सभाओं के सामने उस अधिक ख़र्च को सूचित करने वाला पूरक नक्शा उपस्थित कराएगा, और पूर्वोक्त नियम की बातें उस नक्शे और उस ख़र्च के सम्बन्ध में उसी प्रकार लागू होंगी जो वार्षिक आय व्यय अनुमान पत्र और उसमें उल्लिखित व्यय के सम्बन्ध में लागू होती हैं।

कर निर्धारण सम्बन्धी विशेष नियम—निम्न लिखित प्रकार के क़ानून के मसविदे या उसके संशोधन का प्रस्ताव गवर्नर की सिफ़ारिश बिना नहीं किया जाता, और वह व्यवस्थापक परिषद में नहीं रखा जाता—

(क) जिसमें कर लगाने या बढ़ाने की व्यवस्था हो।

(ख) जिसमें प्रान्तीय सरकार द्वारा रुपया उधार लेने की व्यवस्था हो।

सारांश यह कि गवर्नर की इच्छा बिना, मंत्री मंडल या व्यवस्थापक सभा किसी कार्य के लिये ख़र्च स्वीकार नहीं कर सकती। जिन रक़मों को गवर्नर अपना उत्तरदायित्व पूरा करने के लिये आवश्यक समझता है, उन पर सभा का मत नहीं लिया जाता; यहां तक कि सभा द्वारा अस्वीकृत रक़म को भी, गवर्नर उचित समझे तो ख़र्च किये जाने की स्वीकृति दे सकता है।

बजट अधिवेशन---व्यवस्थापक मंडल की एक मुख्य बैठक फ़रवरी के अन्त, और मार्च के आरंभ में होती है। इसमें आगामी वर्ष के प्रांतीय आय व्यय का अनुमान-पत्र उपस्थित किया जाता है, वैसे वास्तव में यह अनुमान-पत्र सदस्यों के पास १५ दिन पहले भेज दिया जाता है। सदस्य भिन्न भिन्न खर्चों का विचार करते हैं और यदि उन्हें किसी ख़र्च में कुछ कटौती की सूचना देनी हो तो वे, सभा में बजट उपस्थित किये जाने से तीन दिन पहिले, उस सूचना को सेक्रेटरी के पास भेज देते हैं। यदि किसी ख़ास मद में ख़र्च की कमी न करते हुए केवल उस विभाग की कार्य प्रणाली की आलोचना या शिकायत करनी हो तो उस मद में कटौती करके एक रुपये की स्वीकृति सूचित की जाती है। इससे उस कटौती सम्बन्धी चर्चा के प्रसंग में सदस्य उस विभाग के विषय में अपना विचार प्रकट कर सकते हैं।

बजट काफ़ी बड़ा होता है, वह सभा में पढ़ा नहीं जाता। उसे उपस्थित करते समय अर्थ मंत्री उसके सम्बन्ध में अपना भाषण करता है। पश्चात् (अगले दिन) उस बजट पर चर्चा होती है, इसमें सदस्य कुल बजट पर अपने साधारण विचार प्रकट करते हैं। इसके बाद एक हफ्ते तक भिन्न भिन्न मदों की, सदस्यों द्वारा प्रस्तुत कटौतियों की चर्चा होती है। पहले किसी विभाग की नीति की आलोचना करने के उद्देश्य से प्रस्तुत की हुई

कटौतियों पर विचार होता है। पश्चात् अन्य कटौतियों का विचार होकर, एक एक मद के ख़र्च की मांग की जाती है। बजट की बहस के लिये निश्चित किये हुए सप्ताह के अन्तिम दिन के पांच बजे कटौतियों की समाप्ति ('गिलोटिन') होजाती है, इसके बाद किसी कटौती पर बहस नहीं होती। सदस्य के आग्रह पर कटौती की रक़म पर मत लिये जाते हैं, और यदि वह स्वीकार होजाय तो उस मद की रकम को उसमें आवश्यक कमी करके मंजूर किया जाया जाता है। इस प्रकार सारा शेष कार्य थोड़ी देर में ही निपटा लिया जाता है।

कार्य पद्धति के नियमों का निर्माण-शासन विधान के नियमों का पालन करते हुए प्रत्येक सभा अपनी कार्य पद्धति के नियम बना सकती है। परन्तु गवनर उसके अध्यक्ष से परामर्श करके निम्न विषयों के नियम बना सकता है:—

(१) जिन विषयों में गवर्नर को अपनी मर्ज़ी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करना होता है, उन पर असर डालने वाली सभा की कार्य पद्धति के सम्बन्ध में।

(२) मण्डल का आय व्यय सम्बन्धी कार्य यथा-समय समाप्त करने के सन्बन्ध में।

(३) किसी देशी राज्य सम्बन्धी बादानुवाद या प्रश्नों का निषेध करने के सम्बन्ध में।

(४) जब तक गवर्नर को सहमति न हो, निम्नलिखित विषयों के बादानुवाद या प्रश्नों का निषेध करने के सम्बन्ध में:—

(क) सम्राट् या गवर्नर-जनरल का किसी विदेशी राज्य या नरेश से सम्बन्ध।

(ख) जंगली जातियों या 'पृथक' क्षेत्र के शासन का विषय (ख़र्च के अनुमान को छोड़कर) ।

(ग) किसी देशी राज्य के नरेश या उसके परिवार के व्यक्तिगत व्यवहार सम्बन्धी बादानुवाद या प्रश्न ।

उपर्युक्त विषयों में यदि गवर्नर का बनाया हुआ कोई नियम किसी प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के बनाए हुए नियम से भिन्न हो तो गवर्नर का बनाया हुआ नियम मान्य होगा ।

जिस प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद हो, उसमें गवर्नर दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक तथा पारस्परिक विचार विनिमय के नियम उनके सभापतियों का परामर्श लेकर बनाता है । इन नियमों में, उपयुक्त नियमों सम्बन्धी ऐसी व्यवस्था रहती है जैसी गवर्नर अपनी मर्ज़ी से उचित समझता है ।

दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद का अध्यक्ष सभापति होता है, और उसकी अनुपस्थिति में वह व्यक्ति सभापति का कार्य करता है जो कार्य पद्धति के नियमों के अनुसार निश्चित हो ।

अंगरेज़ी भाषा का प्रयोग—प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल की सब कार्रवाई अंगरेज़ी भाषा में होती है; प्रत्येक सभा की कार्य पद्धति के नियमों में और संयुक्त बैठक सम्बन्धी नियमों में इस बात को व्यवस्था रहती है कि अंगरेज़ी भाषा न जानने वाले या अपर्याप्त रूप से जानने वाले व्यक्ति अन्य भाषा का प्रयोग कर सकें ।

व्यवस्थापक मंडल में वादानुवाद न किये जाने योग्य विषय—प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल में संघीय न्यायालय, या हाईकोर्ट के किसी जज के, अपने कर्तव्य को पालन करने के

समय के व्यवहार पर वादानुवाद नहीं होसकता। अगर गवर्नर अपनी मर्ज़ी से यह तसदीक़ करदे किसी क़ानून के मसविदे, उस के अंश या संशोधन से उसके शान्ति रक्षा सम्बन्धी विशेष उत्तर-दायित्व पर असर पढ़ता है तो वह इस विषय का आदेश करके उस मसविदे आदि के सम्बन्ध में होने वाली कार्रवाई को रोक सकता है।

गवर्नर के कानून बनाने के अधिकार; आर्डिनैंस— गवर्नर को आर्डिनैंस बनाने का अधिकार (१) व्यवस्थापक मण्डल के अवकाश के समय में होता है, और (२) उसके कार्य काल में भी। जब किसी प्रान्त के व्यवस्थापक मण्डल का कार्यकाल न हो, यदि गवर्नर को यह निश्चय होजाय कि तत्का-लीन परिस्थिति में तुरन्त कार्रवाई करना आवश्यक है तो वह अपनी सम्मति के अनुसार आवश्यक आर्डिनैंस बना सकता है। जिस आर्डिनैंस के विषय के प्रस्ताव को व्यवस्थापक मण्डल में पेश किये जाने के लिये उसकी (गवर्नर की) पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता होती उस आर्डिनैंस को बनाने में वह अपने व्यक्ति-गत निर्णय का उपयोग करेगा, और जिस विषय के प्रस्ताव को व्यवस्थापक मण्डल में उपस्थित करने के लिये गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता होती, या गवर्नर उस विषय के प्रस्ताव को गवर्नर-जनरल के विचारार्थ रख छोड़ने की आवश्य-कता समझता, उस विषय के आर्डिनैंस को वह गवर्नर-जनरल के, उसकी मर्ज़ी से दिये हुए, आदेश बिना नहीं बनाएगा।

इस प्रकार बनाये हुए आर्डिनैंस का वही बल और प्रभाव होता है जो प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के बनाए और गवर्नर से स्वीकृत क़ानून का होता है। परन्तु, ऐसा प्रत्येक आर्डिनैंस प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के सामने रखा जायगा, और मंडल

की आगामी सभा होने से छः सप्ताह समाप्त होने पर, अमल में आना बन्द होजायगा, यदि उसको नापसन्द करने का प्रस्ताव प्रांतीय व्यवस्थापक सभा में (और अगर उस प्रांत में व्यवस्थापक परिषद हो तो उसमें भी) पास होजाय।

ऐसे आर्डिनैंस को सम्राट् उसी प्रकार रद्द कर सकता है, जैसे गवर्नर से स्वीकृत प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल के क़ानून को। और, उसे गवर्नर जब चाहे वापिस लेसकता है।

अगर उपर्युक्त आर्डिनैंस में कोई ऐसी बात है, जो प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के बनाये और गवर्नर द्वारा स्वीकृत क़ानून में नहीं होसकती, तो वह आर्डिनैंस रद्द होजायगा।

सारांश यह है कि जैसा प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल को क़ानून बनाने का अधिकार है, वैसाही उसके अवकाश के समय गवर्नर को आर्डिनैन्स बनाने का है।

इसी प्रकार प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के कार्य काल में भी, गवर्नर जब कि वह अपने उत्तरदायित्व के विचार से आवश्यक समझे, निर्धारित काल के लिये वैसा ही क़ानून बना सकता है, जैसा कि मण्डल। अर्थात्, उसको कुछ विषयों में मण्डल के समान अधिकार प्राप्त हैं, और वह मण्डल की इच्छा के विरुद्ध भी उनका अस्थायी रूप से प्रयोग कर सकता है।

गवर्नर के क़ानून--यही नहीं, कुछ दशाओं में वह स्थायी रूप से भी क़ानून बना सकता है। इस प्रसङ्ग में, विधान में यह नियम है कि यदि गवर्नर को किसी समय यह निश्चय होजाय कि उसके उत्तरदायित्व को पालन करने के लिये उसकी मर्ज़ी से काम करने या उसके व्यक्तिगत निर्णय का उपयोग करने के

सम्बन्ध में क़ानून से व्यवस्था होनी चाहिये तो वह सन्देश भेज कर सभा या सभाओं को तत्कालीन परिस्थिति का परिचय कराएगा, और वह या तो 'गवर्नर का क़ानून' बना देगा, या अपने संदेश के साथ प्रस्ताव का मसविदा लगा देगा। दूसरी दशा में, वह एक मास के बाद 'गवर्नर का क़ानून' बना देगा जो या तो उसी रूप में होगा जैसा कि उसने सभा या सभाओं में मसविदा भेजा था, या उसमें उसकी मर्ज़ी के अनुसार आवश्यक संशोधन होंगे। हां, ऐसा करने से पूर्व यदि किसी सभा की ओर से उसे प्रस्ताव या संशोधन सम्बन्धी कोई निवेदन पत्र दिया गया तो वह उस पर विचार करेगा।

गवर्नर के क़ानून का वही बल और प्रभाव होगा, और वह उसी प्रकार सम्राट् द्वारा रद्द किया जा सकेगा, जैसा गवर्नर से स्वीकृत, प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल का क़ानून। और, अगर इस क़ानून में कोई ऐसी बात होगी जिसके सम्बन्ध में प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल क़ानून नहीं बना सकता तो उपर्युक्त 'गवर्नर का क़ानून' रद्द हो जायगा।

प्रत्येक 'गवर्नर के क़ानून' की सूचना गवर्नर-जनरल द्वारा भारत मन्त्री को दी जायगी. और वह इसे पार्लिमैंट की दोनों सभाओं के सामने रखेगा। गवर्नर आर्डिनैंस या क़ानून बनाने का कार्य अपनी मर्ज़ी से करेगा, परन्तु वह इस विषय के किसी अधिकार का उपयोग गवर्नर-जनरल की मर्ज़ी से सहमति प्राप्त किये बिना न करेगा।

स्मरण रहे कि अब तक गवर्नरों को आर्डिनैंस जारी करने, या क़ानून बनाने का अधिकार न था, यह अधिकार उन्हें नवीन शासन विधान से ही मिला है; फिर भी कुछ ब्रिटिश अधिकारियों का यह दावा है कि यह विधान केन्द्र में न सही, प्रान्तों में तो स्वराज्य स्थापित करने वाला है ही।

पृथक् या अंशतः पृथक् क्षेत्रों की व्यवस्था—इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकार के प्रसंग में लिखा जा चुका है। प्रान्तीय (या केन्द्रीय) व्यवस्थापक मंडल का कोई क़ानून इन पर उस समय तक लागू नहीं होता, जब तक कि गवर्नर सार्वजनिक सूचना द्वारा ऐसी हिदायत न करे। गवर्नर किसी क़ानून के सम्बन्ध में ऐसी हिदायत देते हुए यह सूचित कर सकता है कि क़ानून या उसका कोई निर्दिष्ट भाग अमुक अपवादों या परिवर्तनों सहित लागू होगा। गवर्नर इन क्षेत्रों के लिये नियम बना सकता है, और, उसके नियम उन संघीय या प्रांतीय व्यावस्थापक मंडल के, या अन्य भारतीय क़ानूनों को रद्द या संशोधित कर सकते हैं, जो इन क्षेत्रों सम्बन्धी हों। ये नियम गवर्नर-जनरल के सामने उपस्थित किये जांयगे, और उसकी स्वीकृति होने तक इन पर कोई अमल न होगा। सम्राट् को गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृत इन नियमों को रद्द करने का वैसा ही अधिकार है, जैसा गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृत प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के क़ानूनों को है।

विधानात्मक शासन न चलने पर कार्य में लाये जाने वाले नियम; गवर्नर की घोषणा—यदि किसी समय गवर्नर को यह निश्चय होजाय कि तत्कालीन परिस्थिति में प्रान्तीय शासन का कार्य इस विधान के अनुसार नहीं चल सकता तो वह घोषणा निकाल कर सूचित कर सकता है कि (क) अमुक कार्य वह स्वयं अपनी मर्ज़ी से करेगा, (ख) प्रांतीय संस्था या अधिकारियों के सब या कुछ अधिकारों का वह स्वयं उपयोग करेगा। इस घोषणा में इसको व्यवहृत करने के उपयोगी आवश्यक नियमों का उल्लेख किया जा सकता है। हां, गवर्नर हाईकोर्ट के अधिकार नहीं ले सकता और न इस न्यायालय सम्बन्धी नवीन शासन विधान के सब या किसी नियम को स्थगित कर सकता है।

पीछे होने वाली दूसरी घोषणा से, ऐसी घोषणा मन्सूख़ की जा सकती है, अथवा उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। इस घोषणा की सूचना भारत मंत्री को दी जायगी, और उसके द्वारा पार्लिमेंट की दोनों सभाओं के सामने रखी जायगी। जो घोषणा पहिले की घोषणा को मन्सूख़ करने वाली न हो, वह छः माह के बाद अमल में आनी बन्द होजायगी।

अगर ऐसी घोषणा को जारी रखने का प्रस्ताव पार्लिमेंट की दोनों सभाओं से स्वीकार होजाय (या होता रहे), तो यह घोषणा, मन्सूख़ न किये जाने की दशा में, अपनी अवधि के पश्चात् बारह मास तक जारी रहेगी। परन्तु ऐसी कोई घोषणा तीन साल से अधिक व्यवहृत न होगी।

अगर गवर्नर घोषणा द्वारा प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के क़ानून बनाने का अधिकार ग्रहण कर ले, तो उसका बनाया हुआ क़ानून, घोषणा का प्रभाव समाप्त होने के दो साल बाद तक जारी रहेगा, सिवाय उस दशा के जब कि उसे कोई अधिकार-प्राप्त व्यवस्थापक संस्था नियमानुसार दो साल से पूर्व संशोधित न कर दे।

उपयक्त व्यवस्था करने में,गवर्नर अपनी मर्ज़ी से कार्य करेगा, और उपयुक्त विषय सम्बन्धी घोषणा गवर्नर-जनरल की मर्ज़ी से सहमति प्राप्त किये बिना, न की जायगी।

विशेष वक्तव्य—यद्यपि प्रजातंत्रात्मक देशों की शासन पद्धति के अनुसार ही यहां मंत्री मंडल की व्यवस्था की गयी है, तथापि इस आधार पर जो शासन भवन निर्माण किया गया है, वह प्रजातंत्रात्मक न होकर बहुत-कुछ स्वेच्छाचार-मूलक है।

गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्वों और विशेषाधिकारों का आयोजन करके, उन्हें प्रान्तीय आय के अधिकांश भाग को स्वयं ख़र्च करने का अधिकार देकर, मंत्रियों को सभी महत्व-पूर्ण अधिकारों से बंचित करके, उनके वेतन तक पर व्यवस्थापक सभा का मत न लिया जा सकने का नियम बनाकर, एवं छः प्रांतों में दो दो व्यवस्थापक सभाओं की स्थापना करके प्रान्तीय स्वराज्य का मानों उपहास ही किया गया है। गवर्नर प्रायः सर्वेसर्वा बना दिया गया है। यह कहा जा सकता है कि अनेक स्वतंत्र देशों में भी किसी न किसी के हाथ में ऐसे अधिकार रहते हैं, जिनसे विशेष परिस्थिति में देश को राजनैतिक संकट से बचाया जा सकता है। परन्तु स्मरण रहे कि वहां विशेषाधिकारों का प्रयोग बहुत ही कम और बहुत ही विशेष परिस्थितियों में किया जाता है। भारतवर्ष में गत-वर्षों में इसके विपरीत यह अनुभव में आया है कि अधिकारी विशेषाधिकारों का प्रयोग साधारण परिस्थिति में भी करते हैं। पुनः स्वतंत्र देशों में जिन व्यक्तियों के हाथ में विशेषाधिकार रहते हैं, वे जनता के विश्वास-पात्र होते हैं। उनका, और उन देशों के जन साधारण का, हित परस्पर विरोधी न होकर एक ही होता है। इस लिये यहां प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के कार्य क्षेत्र में गवर्नर को व्यापक और स्वेच्छाचार-मूलक विशेषाधिकारों से सम्पन्न करना, उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन प्रणाली के मूल पर कुठाराघात करना है। नवीन शासन विधान की यह बात अत्यन्त चिन्तनीय है।

ग्यारहवां परिच्छेद

न्यायालय

[नवीन विधान से पूर्व, भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों में ऊंची अदालतें हाईकोर्ट थीं। अब भारतवर्ष भर के लिये एक सर्वोच्च न्यायालय 'संघ न्यायालय' (फ़ीडरल कोर्ट) का भी आयोजन किया गया है। इसे शासन विधान के नियमों का वास्तविक अर्थ निश्चित करने का अधिकार है। इसकी, संघ और संघान्तरित देशी राज्यों सम्बन्धी बातें, यहां संघ की स्थापना होने पर अमल में आएंगी।]

पिछले परिच्छेदों में भारतवर्ष की केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के शासन और व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों का विचार किया गया, इस परिच्छेद में तीसरे अर्थात् न्याय सम्बन्धी कार्य का वर्णन किया जायगा।

संघ न्यायालय—यह भारतवर्ष का सर्वोच्च न्यायालय है। इसके प्रधान जज को 'भारतवर्ष का चीफ़ जस्टिस' कहा जायगा। उसके अतिरिक्त, इसमें आवश्यकतानुसार साधारणतः छः तक जज रहेंगे। यदि संघीय व्यवस्थापक मण्डल गवर्नर-जनरल द्वारा सम्राट् से यह निवेदन करेगा कि इस न्यायालय के जजों की संख्या बढ़ाई जाय, तो इसके लिये छः से अधिक जज भी नियत किये जा सकेंगे। यह न्यायालय देहली में होगा, परन्तु चीफ़-जस्टिस गवर्नर-जनरल की सलाह से इसके कार्य (इजलास) के लिये समय समय पर अन्य स्थान भी निश्चित कर सकेगा।

जजों की नियुक्ति और वेतन आदि--इस न्यायालय के जजों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा की जायगी;प्रत्येक जज पैंसठ वर्ष की आयु तक अपने पद पर रहेगा। हां, वह गवर्नर-जनरल को त्यागपत्र देकर अपना पद छोड़ सकता है, और सम्राट् दुराचार या मानसिक अथवा शारीरिक निर्बलता के आधार पर उसे अपने पद से हटा सकता है, जब कि प्रिवी कौंसिल की जुडीशल कमेटी की भी ऐसी सम्मति हो। जज अथवा चीफ़ जस्टिस के पद पर नियुक्त होने के लिये किसी व्यक्ति में निर्धारित योग्यता होना आवश्यक है। जजों का वेतन, भत्ता और मार्ग व्यय, छुट्टी का वेतन और पेन्शन आदि सपरिषद सम्राट् समय समय पर निर्धारित करेगा; किसी जज की नियुक्ति हो जाने पर उसके वेतन या छुट्टी अथवा पेन्शन आदि के अधिकार में कमी न की जायगी।

अधिकार-क्षेत्र; 'आरिजिनल' भाग—संघ न्यायालय के दो भाग होंगे, आरिजिनल और अपील भाग। अपील भाग में दूसरे न्यायालयों से फ़ैसला किये हुए मामलों की अपील होगी; आरिजिनल भाग में अन्य विविध विषयों पर विचार होगा। संघ, प्रान्तों और देशी राज्यों का परस्पर में क़ानूनी अधिकार सम्बन्धी मत भेद होने पर उसका फ़ैसला केवल संघ न्यायालय में होगा, और यह न्यायालय उसका विचार अपने 'आरिजिनल' भाग में करेगा। इसमें यह शर्त है कि देशी राज्य से सम्बन्ध रखने वाले उसी मत भेद के विषय का विचार होगा, (क) जिसका सम्बन्ध भारतीय शासन विधान की व्याख्या से, या इस विधान के अन्तर्गत दी हुई सम्राट् की किसी आज्ञा से हो, या (ख) जिस का सम्बन्ध इस बात से हो कि देशी राज्यों के संघ में सम्मिलित होने के शर्तनामे के अनुसार, संघ का शासन या व्यवस्था सम्बंधी अधिकार कहां तक है, या (ग) जिसका सम्बन्ध इस बात से

हो कि संघीय व्यवस्थापक मंडल का कोई क़ानून किसी देशी राज्य में कहां तक लागू हो सकता है, या (घ) जिसका सम्बन्ध ऐसे समझौते से हो जो संघ की स्थापना के बाद, वाइसराय की स्वीकृति से देशी राज्य और संघ या प्रान्त में हुआ हो, जब कि उस समझौते में इस बात का स्पष्ट उल्लेख हो कि ऐसे विषय में संघ न्यायालय को विचार करने का अधिकार होगा।

अपील भाग—संघ न्यायालय में ब्रिटिश भारत के हाईकोर्टों के ऐसे फ़ैसले या अन्तिम आज्ञा की अपील हो सकेगी जिसके विषय में हाईकोर्ट यह तसदीक़ करदे कि उसमें शासन विधान की व्याख्या से, या विधान के अन्तर्गत सपरिषद सम्राट् की किसी आज्ञा से, सम्बन्धित कोई महत्वपूर्ण क़ानूनी प्रश्न आता है।

संघीय व्यवस्थापक मंडल क़ानून बना कर संघ न्यायालय को निर्धारित प्रकार के साधारणतया पन्द्रह हज़ार रुपये या अधिक के दीवानी दावों की अपील सुनने का अधिकार दे सकता है, और तदनंतर वह क़ानून से इस बात की भी व्यवस्था कर सकता है कि ब्रिटिश भारत के हाईकोर्टों के सब या कुछ दीवानी मामलों की अपील सीधे प्रिवी कौंसिल में न हो। संघीय व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा में उपर्युक्त क़ानून का मसविदा या संशोधन गवर्नर-जनरल को अपनी मर्ज़ी से दी हुई पूर्व स्वीकृति बिना उपस्थित नहीं किया जा सकता।

क़ानूनी प्रश्न का ठीक निर्णय न होने के आधार पर, संघान्तरित देशी राज्यों के हाईकोर्टों के उन विषयों के फ़ैसलों की अपील संघ न्यायालय में हो सकेगी, जो इस न्यायालय के आरिजिनल भाग में लिये जासकते हैं, (ये विषय पहले बताए जाचुके हैं)।

कुछ अन्य नियम आदि—यदि गवर्नर-जनरल किसी सार्वजनिक महत्व के क़ानून के प्रश्न पर संघ न्यायालय की सम्मति लेना चाहे तो वह उस प्रश्न को इसके विचारार्थ रख सकता है, और न्यायालय उसके सम्बन्ध में आवश्यक बातें जान लेने पर गवर्नर-जनरल को अपनी रिपोर्ट देगा। संघ न्यायालय गवर्नर-जनरल की स्वीकृति से समय समय पर अपनी काय पद्धति के नियम बना सकता है, जिनमें यह बातें भी सम्मिलित होंगी:— इस न्यायालय में कैसे वकील आदि पैरवी कर सकते हैं, कितने समय में यहां अपील दाख़िल की जानी चाहिये, मुक़द्दमे की कर्रवाई में क्या क्या ख़र्च हो, क्या फ़ीस लगे, किस प्रकार व्यर्थ अपीलों का तुरन्त निपटारा कर दिया जाय और, किसी विषय के विचारार्थ कम से कम कितने जज बैठें, जो तीन से कम न हों। इस न्यायालय का सब काम अँगरेज़ी में होगा। न्यायालय का सब ख़र्च संघ की आय से होगा, और इसकी फ़ीस आदि की आमदनी संघ की आय में सम्मिलित करदी जाया करेगी। संघ के सिविल और न्याय विभाग के सब अधिकारी संघ न्यायालय के कार्य में सहायता देंगे।

संघ न्यायालय के फ़ैसलों की अपील--संघ न्यायालय के फ़ैसले को अपील प्रिवी कौंसिल * (गुप्त सभा) में होसकती है। जिन मामलों का, संघ न्यायालय अपने आरिजिनल भाग में फ़ैसला कर सकता है, उनकी अपील संघ न्यायालय की अनुमति के बिना ही होसकती है। अन्य विषयों के फ़ैसलों की अपील संघ न्यायालय या स-परिषद सम्राट् की अनुमति मिलने पर हो सकती है। संघ न्यायालय द्वारा, तथा प्रिवी कौंसिल के फ़ैसलों

* देखो पृष्ठ १५।

से सूचित किया हुआ क़ानून प्रसंगानुसार ब्रिटिश भारत के सब न्यायालयों में मान्य होगा।

हाईकोर्ट—शासन विधान से निम्न लिखित न्यायालय 'हाईकोर्ट' माने गये हैं:—कलकत्ता, मदरास, बम्बई, इलाहाबाद, लाहौर, पटना तथा मध्यप्रान्त और बरार के हाईकोर्ट, अवध का चीफ़ कोर्ट, पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत और सिन्ध के चीफ़ कमिश्नर्स कोर्ट। इनके अतिरिक्त सपरिषद् सम्राट् ब्रिटिश भारत में किसी न्यायालय को हाईकोर्ट के अधिकार दे सकता है, तथा कोई नया हाईकोर्ट बना सकता है।

जजों की नियुक्ति और वेतनादि—प्रत्येक हाईकोर्ट में एक चीफ़ जस्टिस और कुछ जज रहते हैं, जिनकी संख्या सम्राट् निश्चय करता है। इन पदों पर नियुक्त होने के लिये किसी व्यक्ति में निर्धारित गुण होना आवश्यक है; इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्यों को भी ये पद पर्याप्त संख्या में प्राप्त हो सकते हैं। इन पदों पर नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती है; आवश्यकता होने पर अस्थायी रूप से गवर्नर-जनरल भी योग्य व्यक्तियों को नियुक्त कर सकता है। प्रत्येक जज साठ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकता है। जजों का वेतन, भत्ता, मार्ग-व्यय, छुट्टी का वेतन और पेन्शन आदि समय समय पर सपरिषद सम्राट् निश्चय करता है। जज की नियुक्ति होजाने पर उसके वेतन या छुट्टी अथवा पेन्शन आदि के अधिकार में कमी नहीं की जाती। प्रत्येक हाईकोर्ट का ख़र्च उस प्रान्त की आय से होता है, और उसकी फ़ीस आदि से होने वाली आमदनी प्रान्तीय आय में शामिल की जाती है।

हाईकोर्टों का अधिकार क्षेत्र—हाईकोर्टों के क्षेत्र और अधिकार क़ानून से निश्चित हैं, और सम्राट् की आज्ञा से ही

उनमें परिवर्तन हो सकता है। प्रत्येक हाईकोर्ट में दो भाग होते हैं, 'आरिजिनल' और अपील भाग। साधारणतया 'आरिजिनल' भाग का कार्य्य क्षेत्र हाईकोर्ट वाले नगर की सीमा से बाहर नहीं होता। इस भाग में उस स्थान के सब दीवानी मामले जाते हैं, जो 'स्माल काज़ कोर्ट' अर्थात् अदालत ख़फ़ीफ़ा में नहीं जा सकते, तथा ऐसे सब फ़ौजदारी मुक़दमे ज़ाते हैं जो अन्य स्थानों में ज़िला या सेशन जज की अदालतों में फ़ैसल हों। इसी भाग में फ़ौजदारी मामलों के उन अपराधियों का विचार होता है, जिनका विचार मुफ़स्सिल अदालतों में नहीं हो सकता। हाईकोर्ट वादी प्रतिवादी की प्रार्थना पर, अथवा न्याय के विचार से, मुक़द्दमों को सब-जजों की अदालतों से उठाकर अपने इस (आरिजिनल) भाग में ले सकते हैं।

अपील भाग में 'आरिजिनल' भाग की तथा मुफ़स्सिल अदालतों की अपील सुनी जाती हैं।

हाईकोर्ट अपनी नियमित सीमा की सब दीवानी तथा फ़ौजदारी अदालतों का नियंत्रण व निरीक्षण करते हैं। प्रान्तिक सरकारों की स्वीकृति से वे उनकी कार्य प्रणाली के नियम बना सकते हैं; 'अटर्नी', अमीन, और मोहर्रिर आदि की फ़ीस की दर ठहरा सकते हैं। वे किसी मुक़द्दमे को या उसकी अपील को, एक अदालत से दूसरी उसके समान या बड़ी अदालत में बदल सकते हैं, एवं कोर्ट को 'रिटर्न' अर्थात् लेखा मांग सकते हैं। प्रायः माल (लगान) सम्बन्धी मुक़द्दमों का, हाईकोर्ट के 'आरिजिनल' भाग में फ़ैसला होने का रिवाज नहीं है। हाईकोर्टों का सब काम अंगरेज़ी भाषा में होता है।

रेवन्यू कोर्ट—मालगुज़ारी सम्बन्धी सब बातों का फ़ैसला

करने के लिये कहीं कहीं रेवन्यू कोर्ट और कहीं कहीं सेटलमैंट (बन्दोबस्त) कमिश्नर हैं । इनके अधीन कमिश्नर, कलेक्टर, तहसीलदार आदि रहते हैं, जिन्हें लगान मालगुज़ारी और आबपाशी आदि के मामलों का फ़ैसला करने का निर्धारित अधिकार है।

दीवानी की अदालतें—हाईकोर्टों के नीचे दीवानी व फ़ौजदारी की अदालतें होती हैं। प्रायः हर एक ज़िले में एक ज़िला जज होता है, जो वहां की सब कचहरियों का नियंत्रण करता है। उसकी अदालत ज़िले में सब से बड़ी दीवानी अदालत है, जिसमें नीचे की अदालतों के फ़ैसलों की अपील हो सकती हैं । ज़िला-जज के नीचे सब-जज होते हैं। सब-जज को सदर-आला भी कहते हैं। इनके नीचे मुन्सिफ़ों का दर्जा है । मुन्सिफ़ों के पास साधारणतः १,०००) रु० तक के मुक़द्दमे पेश होते हैं, परन्तु उन्हें ५,०००) रु० तक का अधिकार मिल सकता है । सब-जज की अदालत में बड़ी से बड़ी रक़म तक का मामला दायर हो सकता है। यद्यपि ज़िला-जज का दर्जा इससे बड़ा है तथापि इसकी अदालत में १०,०००) रु० से अधिक का मुकदमा दायर नहीं हो सकता। सब-जजों और ज़िला-जजों के फ़ैसला किये हुए १०,०००) रु० से अधिक के मुकद्दमों की, तथा ज़िला-जजों के फ़ैसला किये हुए सब मुकदमों की अपील हाईकोर्ट में होती है।

कलकत्ता, बम्बई, मदरास तथा कुछ अन्य स्थानों में 'स्माल काज़ कोर्ट' या अदालत ख़फ़ीफ़ा स्थापित हैं,जो छोटे छोटे मामलों में जल्दी तथा कम ख़र्च से अंतिम निर्णय सुना देती हैं। इन्हें कलकत्ता, बम्बई और मदरास में २,०००) रु०, तथा अन्य स्थानों में ५००) रु० तक का मामला सुनने का अधिकार है।

फ़ौजदारी की अदालतें—प्रत्येक ज़िले में, या कुछ ज़िलों

के एक समूह में एक 'सेशन्स कोर्ट' रहता है। इसका प्रधान भी ज़िला-जज ही होता है जो फ़ौजदारी के अधिकार रखने से, सेशन जज का कार्य सम्पादन करता है। उसे अन्य सहकारी सेशन जजों से इस काम में सहायता मिल सकती है। फ़ौजदारी मामले में सेशन्स कोर्टों के अधिकार हाईकोर्टों सरीखे ही हैं, हां मृत्यु सम्बन्धी हुक्म हाईकोर्ट से अनुमोदित ('कनफर्म') होना चाहिये। इनमें फ़ैसला जूरी या असेसरों की सहायता से होता है। असेसर जज को अपनी सम्मति पर चलने के लिये वाध्य नहीं कर सकते।

मेजिस्ट्रेट और उनके अधिकार—सेशन जजों के नीचे प्रथम, द्वितीय, और तृतीय श्रेणियों के मेजिस्ट्रेट रहते हैं। बम्बई कलकत्ता और मदरास में 'प्रेसीडेन्सी मेजिस्ट्रेट,' छावनियों में 'छावनी-मेजिस्ट्रेट,' एवं कुछ नगरों और क़स्बों में 'आनरेरी' अर्थात् अवैतनिक पहिले, दूसरे, या तीसरे दर्जे के मेजिस्ट्रेट, और, वैञ्च रहते हैं। छावनी मेजिस्ट्रेट प्राय: फ़ौजी अफसर ही होते हैं।

प्रेसीडेन्सी-मेजिस्ट्रेटों तथा अव्वल दर्जे के मेजिस्ट्रेटों को दो साल तक की क़ैद और एक हज़ार रुपये तक का जुर्माना करने का अधिकार होता है। जिन मुक़द्दमों का फ़ैसला प्रेसीडेंसी मेजिस्ट्रेट नहीं कर सकते, उन्हें वे हाईकोर्ट में भेज देते हैं। अव्वल दर्जे के मेजिस्ट्रेट जिन मुक़द्दमों का फ़ैसला नहीं कर सकते, उन्हें वे सेशन जज के यहां भेज देते हैं। दूसरे दर्जे के मेजिस्टेट छः मास तक की क़ैद और दो सौ रुपये तक जुर्माना कर सकते हैं। तीसरे दर्जे के मेजिस्ट्रेट एक मास तक की क़ैद और पचास रुपये तक जुर्माना कर सकते हैं। छावनी-मेजिस्ट्रेट फ़ौजदारी मामलों का प्रारम्भिक स्थिति में विचार करते हैं। कहीं

कहीं छोटे मामलों का निपटारा गांव के मुखिया ही, मेजिस्ट्रेट की हैसियत से, कर देते हैं। प्रायः सब प्रान्तों में पंचायतों को कुछ छोटे छोटे दीवानी और फ़ौजदारी मामलों का फ़ैसला करने का अधिकार है।

अपील पद्धति—यहां के वर्तमान क़ानून में अपील की गुञ्जाइश बहुत रहती है। दूसरे और तीसरे दर्जे के मेजिस्ट्रेट के फ़ैसले के विरुद्ध, ज़िला मेजिस्ट्रेट के सामने अपील हो सकती है, और अव्वल दर्जे के मेजिस्ट्रेट के फ़ैसले की अपील सेशन्स कोर्ट में चल सकती है। जिन मनुष्यों को मुक़द्दमे को प्रारम्भिक दशा में सेशन्स कोर्ट ने दोषी ठहराया हो, उनको अपील उस प्रान्त के चीफ़कोर्ट या हाईकोर्ट में हो सकती है। जब मृत्यु का हुक्म देदिया जाता है तो प्रान्त के शासक या वायसराय के पास दया के लिये दर्ख़ास्त भी दी जा सकती है। दीवानी के मुक़द्दमों में भी अपील के लिये कम स्थान नहीं है। साधारणतया 'स्माल काज़ कोर्ट,' और पंचायतों के फ़ैसलों की अपील नहीं होती, अन्य सब के फ़ैसलों की होती है। मुन्सिफ़ के फ़ैसलों की अपील ज़िला-जज के यहां हो सकती है, जो यदि चाहे तो उसे सब-जज के पास भेज सकता है। सब-जज या ज़िला-जज के फ़ैसलों की अपील कुछ दशाओं जुडीशल कमिश्नर्स कोर्ट में, या हाईकोर्ट में होसकती है। हाईकोर्टों के कुछ फ़ैसलों की अपील संघ न्याया लय में होसकती है। खास खास हालतों में अपील इंगलैंड की प्रिवी कौंसिल तक भी पहुंचती है।

भारतवर्ष में मुक़द्दमेवाज़ी से जनता बहुत हानि उठा रही है। पंचायतों के विस्तार और वृद्धि की बड़ी आवश्यकता है। क़ानून सरल और न्याय सस्ता होना चाहिये।

बारहवां परिच्छेद

सरकारी नौकरियां

[शासन कार्य का जनता के लिये यथेष्ट हितकर होना या न होना, क़ायदे क़ानूनों के अतिरिक्त, बहुत-कुछ सरकारी कर्मचारियों की योग्यता, अनुभव और देशहितैषिता पर भी निर्भर होता है। अतः इस परिच्छेद में यहां की सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। संघान्तरित राज्यों सम्बन्धी बातों पर संघ की स्थापना के बाद अमल होगा, (जिसके विषय में अगले खण्ड में लिखा जायगा); वर्तमान अवस्था में संघ और संघीय का आशय केन्द्रीय सरकार और केन्द्रीय लिया जाना चाहिये।]

यहां कुछ सर्वोच्च पदों के लिए नियुक्तियां सम्राट् द्वारा होती हैं। इनमें गवर्नर-जनरल, गवर्नर, तथा उनकी प्रबन्धकारिणी कौंसिलों के सदस्य, तथा संघ न्यायालय और हाईकोर्टों के जज और कमांडरन-चीफ़, शामिल हैं। इनका उल्लेख प्रसङ्गानुसार किया जा चुका है।

इम्पीरियल सर्विस—इन पदों से नीचे इम्पीरियल सर्विस के नौकरों का दर्जा है। इनकी नियुक्ति प्रायः भारत मन्त्री द्वारा होती है, इन्हें प्रायः 'इण्डियन सिविल सर्विस' * (आई. सी.

* एक महाशय का कथन है कि 'इंडियन सिविल सर्विस' न तो इंडियन है (इसमें अधिकांश आदमी योरोपियन होते हैं), न यह सिविल अर्थात् सभ्य या शिष्टाचार-युक्त है, और न यह सर्विस (नौकरी) ही है, क्योंकि अनेक कर्मचारी अपने आपको नौकर समझने की अपेक्षा मालिक समझ कर हुकूमत करते हैं।

एस.) की परीक्षा पास करनी होती है। पहले यह परीक्षा इंगलैंड में ही होती थी, अब भारतवर्ष में भी होती है। यह परीक्षा प्रतियोगिता से होती है; अर्थात् किसी वर्ष जितने कर्मचारियों की आवश्यकता होती है, उतने ही, परीक्षा में अच्छे नम्बर पाने वाले व्यक्ति चुन लिये जाते हैं। पहले इंगलैंड की परीक्षा पास किये हुए व्यक्तियों में से चुनाव होता है, उसके बाद भारतवर्ष की परीक्षा पास वालों का नम्बर आता है। इसका परिणाम यह होता है कि इंगलैंड में परीक्षा पास करने वालों को चुनाव में आने की अधिक संभावना होती है, और भारतीय परीक्षा का महत्व कम रह जाता है। पुनः भारतवर्ष में होने वाली परीक्षा के फल के आधार पर चुने हुए व्यक्तियों को दो वर्ष विशेष शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंगलैंड जाना होता है, (इसका ख़र्च सरकार देती है) । पश्चात् ये व्यक्ति भारतवर्ष के किसी भी प्रान्त में नौकरी के वास्ते भेजे जा सकते हैं। इनमें से प्रत्येक का वेतन प्रायः ५००) से ३,०००) मासिक तक होता है। कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर, डिस्ट्रिक्ट जज, आदि प्रायः इनमें से ही होते हैं। ये बम्बई, बङ्गाल, और मदरास को छोड़कर, अन्य प्रांतों के गवर्नर तक हो सकते हैं।

सन् १९१९ ई० के सुधारों के अनुसार निश्चय हुआ था कि जिन सरकारी नौकरियों के लिए भरती इंगलैंड में होती है, और जिनमें योरपियन और भारतीय दोनों लिये जाते हैं, उनमें सैकड़े पीछे ३३ भारतवासी ही भरती किए जांय, और इनमें डेढ़ फ़ी सदी वार्षिक बढ़ती तब तक होती रहनी चाहिए जब तक एक सामयिक कमीशन नियत होकर फिर से सब मामले की जांच करे।

सन् १९२३ ई० में नियुक्त 'ली कमीशन' ने उच्च पदों पर काम करने वाले योरपियनों के लिए खूब पैंशन तथा भत्ते आदि

दिये जाने की सिफ़ारिश की। यद्यपि भारतीय व्यवस्थापक सभा ने इसकी सिफ़ारिशों को कार्यान्वित करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था, ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार से सहमत होकर उसकी प्रधान सिफ़ारिशों को स्वीकार कर लिया। इससे यहां शासन व्यय, जो पहले ही अधिक था, और भी बढ़ गया।

नवीन शासन विधान और सरकारी नौकरियां— नवीन विधान में बड़ी बड़ी सरकारी नौकरी करने वालों के हितों का पूर्ण ध्यान रखा गया है। उनकी नियुक्ति, वेतन, पेन्शन, भत्ते आदि के नियमों में इस बात की व्यवस्था की गयी है कि उनकी सुविधा तथा मर्यादा की यथेष्ट रक्षा हो, वे यथा-सम्भव अपने पद पर बने रहें। यदि उन्हें किसी कारण निर्धारित समय से पूर्व नौकरी से पृथक् होना पड़े तो उन्हें या उनके परिवारों को आर्थिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े; भारत मन्त्री उन्हें मुनासिब हर्जाना, संघ सरकार या प्रांतीय सरकार के खजाने से, दिलाये। उनके वेतन भत्ते और पेन्शन आदि के सरकारी व्यय पर व्यवस्थापक मण्डल का मत नहीं लिया जायगा। रेलवे, आयात-निर्यात, डाक, तार आदि में ऐंग्लो-इण्डियनों की नियुक्ति का लिहाज रखा जाने का स्पष्ट आदेश है; यहां तक कि यह भी कहा गया है कि प्रतिशत जितने पदों पर वे अब तक रहे हैं, उसका भी भविष्य में विचार रखा जाय।

साधारणतः संघ से सम्बन्धित पदों पर नियुक्तियां करने, तथा उनकी नौकरी की शर्तें तय करने का कार्य गवर्नर-जनरल करेगा और किसी प्रान्त सम्बन्धी यह कार्य उस प्रान्त का गवर्नर करेगा। परन्तु इण्डियन सिविल सर्विस, इण्डियन मेडिकल

सर्विस और इण्डियन पुलिस सर्विस तथा आबपाशी विभाग के पदाधिकारियों की नियुक्ति भारत मन्त्री ही करेगा।

ग़ैर-ब्रिटिश प्रजा की नियुक्ति—नवीन विधान के अनुसार संघ में सम्मिलित देशी राज्यों के नरेश और प्रजा जन भी उच्च सिविल पदों पर नियुक्त हो सकेंगे। संघ में सम्मिलित न होने वाले राज्य का नरेश या प्रजा, तथा जंगली जातियों के क्षेत्र का या भारतवर्ष के निकटवर्ती भू-भाग का निवासी भारत मंत्री की घोषणा से, उसके द्वारा नियुक्ति की जाने योग्य पद पर, और,गवर्नर-जनरल की घोषणा से संघीय पद पर, तथा गवर्नर की घोषणा से प्रान्तीय पद पर नियुक्त हो सकेगा। इस बात को छोड़ कर, साधारणतः जो व्यक्ति ब्रिटिश प्रजा नहीं है, उसकी भारतवर्ष में किसी सरकारी पद पर नियुक्ति न हो सकेगी।

पबलिक सर्विस कमीशन; संघ एवं प्रान्तों के लिये—नवीन शासन विधान के अनुसार एक पबलिक सर्विस कमीशन संघ के लिये और एक पबलिक सर्विस कमीशन प्रत्येक प्रान्त के लिये रहेगा। परन्तु यदि दो या अधिक प्रान्त समझौता करलें तो वे मिलकर एक ही कमीशन रख सकते हैं, अथवा एक कमीशन सब प्रान्तों के लिये भी काय सम्पादन कर सकता है। संघीय कमीशन के सभापति और सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा, और प्रांतीय कमीशन के सभापति और सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा होगी। प्रत्येक कमीशन के कम से कम आधे सदस्य ऐसे होंगे, जो नियुक्ति के समय भारतवर्ष में कम से कम दस वष नौकरी कर चुके हों। संघीय और प्रान्तीय कमीशनों के सदस्यों की संख्या, तथा उनकी नौकरी की शर्तें क्रमशः गवर्नर-जनरल और गवर्नर तय करेंगा। इन कमीशनों का कार्य क्रमशः संघ तथा प्रान्त की नौकरियों के लिये नियुक्तियां करने के वास्ते परीक्षा

लेना, तथा इन नौकरियों के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल और गवनरों को विविध विषयों पर आवश्यक परामर्श देना, होगा।*

इन कमीशनों का ख़र्च, इनके सदस्यों का वेतन, पेन्शन, भत्ता आदि क्रमशः संघीय तथा प्रान्तीय सरकार देगी, और इस पर संघीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल को मत देने का अधिकार न होगा। इन कमीशनों का सम्बन्ध भारतीय सिविल सर्विस और प्रान्तीय सिविल सर्विस से होगा। इनमें से भारतीय सिविल सर्विस के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। प्रान्तीय सर्विस के विषय में कुछ आवश्यक बातें आगे दी जाती हैं।

प्रान्तीय सिविल सर्विस—इस श्रेणी के कर्मचारी प्रान्तीय सरकारों द्वारा, भिन्न भिन्न विभागों में, उनकी योग्यतानुसार नियत किये जाते हैं। भरती के लिये कभी तो परीक्षा होती है, और कभी नीचे की सर्विस के आदमी उसमें बदल दिये जाते हैं। प्रान्तीय सिविल सर्विस में प्रान्त का नाम होता है, जैसे मदरास सिविल सर्विस। इस सर्विस में डिप्टी कलेक्टर, एक्सट्रा ऐसिस्टेएट कमिश्नर, मुँसिफ़, स्कूलों के इन्स्पेक्टर, कालिजों के प्रोफ़ेसर, सब-जज, ऐसिस्टेएट सर्जन आदि कर्मचारी होते हैं। इनका मासिक वेतन प्रायः तीन सौ से आठ सौ रुपये तक होता है।

उपसंहार--अन्यत्र बताया गया है कि गवर्नरों तथा गवर्नर-जनरल के अन्यान्य उत्तरदायित्वों में एक यह भी है कि वर्तमान तथा भूत-पूर्व उच्च सरकारी कर्मचारियों, तथा उनके

* आवश्यकता होने पर, निर्धारित नियमों के अनुसार, ऐसे पदाधिकारियों की नियुक्ति हो सकेगी, जो संघ और एक या अधिक प्रान्तों में, अथवा दो या अधिक प्रान्तों में एक साथ काम कर सकें।

आश्रितों के अधिकारों और हितों की रक्षा करे। यह बात विशेष चिन्तनीय इस लिये है कि यहां सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में जाति या वर्ण भेद का विचार किया जाता है। योरपियन या ऐंग्लो-इंडियनों के लिये कुछ स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं, अथवा इन्हें भारतीयों की अपेक्षा अच्छा समझा जाता है। इससे यह स्वाभाविक है कि यहां की विविध जातियां अपने अपने आदमियों के लिये कुछ पद सुरक्षित कराने की मांग उपस्थित करें, और यहां साम्प्रदायिक वातावरण और भी अधिक विषमय हो। अस्तु, जाति या धर्म का विचार करके किसी आदमी के लिये कोई नौकरी संरक्षित करना, सार्वजनिक हित की हत्या करके अयोग्यता का संरक्षण करना है। इससे संरक्षित जाति को भी वास्तविक लाभ नहीं पहुंचता, क्यों कि उसके आदमियों को अपनी योग्यता बढ़ाने की प्रेरणा या उत्साह नहीं होता। अतः ऐसी नीति का सर्वथा परित्याग होना चाहिये।

पुनः, सरकारी पदों पर विदेशियों का बोल-बाला न रहना चाहिये; वे चतुर या अनुभवी हो सकते हैं, पर उनका और देश का स्वार्थ भिन्न होने के कारण उनकी योग्यता जनता के लिये हानिकर ही होती है। अतः यहां कुछ विशेष और बहुत थोड़े से अपवादों को छोड़कर सब पद भारतीयों को मिलने चाहियें। साथ ही सब नौकरों पर—उनका पद कितना ही उच्च क्यों न हो—प्रजा प्रतिनिधियों का यथेष्ठ नियंत्रण रहना चाहिये, जिस से जनता का स्वराज्य हो, न कि नौकरशाही का; और, उनके वेतन भत्ते आदि में जनता की निर्धनता को न भुला दिया जाय। देश काल का विचार करके यहां के पदाधिकारियों का अधिकतम वेतन साधारणतया पांच सौ रुपये मासिक से अधिक न होना चाहिये।

तेरहवां परिच्छेद

सरकारी आय-व्यय

[इस परिच्छेद में ब्रिटिश भारत के ही आय व्यय पर विचार किया गया है। देशी राज्यों के हिसाब के सम्बन्ध में, अगले परिच्छेद में लिखा जायगा।]

ब्रिटिश भारत की कुल आय और व्यय—ब्रिटिश भारत में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारें प्रति वर्ष लगभग तीन सौ करोड़ रुपया विविध करों से वसूल करके विभिन्न कार्यों में ख़र्च करती हैं। हां, साधरणतया यही समझा जाता है कि वार्षिक सरकारी आय तथा व्यय लगभग दो दो सौ करोड़ रुपये है, सरकारी हिसाब में आय तथा व्यय के अन्तर्गत रक़मों का योग यही दिखाया जाता है। बात यह है कि रेल, डाक, तार, नहर आदि से जो कुल आय होती है उसमें से इन कार्यों के प्रबंध और संचालन आदि में ख़र्च होने वाला रुपया निकाल कर बिशुद्ध आय ही हिसाब में दिखायी जाती है। इसी प्रकार इन मद्दों के व्यय में, विविध कर्मचारियों के वेतन आदि का ख़र्च न दिखाकर, केवल इन कार्यों में लगी हुई पूँजी का सूद ही दिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त, उपयुक्त विविध कार्यों में जो मूलधन लगता है, वह भी ख़र्च की रक़मों में सम्मिलित नहीं किया जाता, अलग दिखाया जाता है।

हिसाब की इस पद्धति से सरकारी वार्षिक आय व्यय दो दो अरब रुपये के क़रीब ही रह जाता है। यह अंक भी काफ़ी बड़े हैं। इन से सरकारी आय व्यय के महत्व का अनुमान सहज ही हो सकता है। वास्तव में ऐसे महत्व-पूर्ण विषय का विवेचन

प्रस्तुत पुस्तक के एक परिच्छेद में नहीं हो सकता।* हम यहां कुछ मुख्य मुख्य बातों का दिग्दर्शन मात्र कराते हैं।

सरकारी हिसाब—सरकारी हिसाब के लिये किसी वर्ष की एक अप्रेल से अगले वर्ष की ३१ मार्च तक, एक साल समझा जाता है। इस प्रकार १ अप्रेल १९३४ से ३१ मार्च १९३५ ई० तक; के साल को सन् १९३४-३५ ई० कहते हैं। वर्ष आरम्भ होने के पूर्व बजट, बजट-एस्टीमेट या आय-व्यय का अनुमान तैयार किया जाता है। व्यवस्थापक संस्थाओं में उपस्थित करते समय गत वर्ष के आय-व्यय के अनुमान का संशोधन भी कर लिया जाता है। उस समय लगभग ११ मास का असली हिसाब और साल के शेष समय का अनुमानित हिसाब रहता है। इसे संशोधित अनुमान कहते हैं। कुछ समय पीछे वर्षभर के आय-व्यय के ठीक अंक मिलजाने पर वास्तविक हिसाब प्रकाशित होता है।

राज्य साधारणतया पहले यह विचार करता है कि उसे देश में क्या क्या काम करने हैं, उनमें कितना ख़र्च होगा। इस ख़र्च के लिये वह अपनी आय-प्राप्ति के मार्ग निकालता है, और विविध कर निश्चय करता है। इसलिये यहां सरकारी व्यय का विचार पहले किया जाता है, और सरकारी आय का पीछे।

केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों का ख़र्च—हिसाब को संक्षिप्त करने के अभिप्राय से हमने सब प्रान्तों का एक एक मद का ख़र्च इकट्ठा जोड़ करके दिया है। विदित हो कि चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों का (प्रान्तीय विषयों में किया गया) ख़र्च केन्द्रीय सरकार के हिसाब में शामिल किया गया है, कारण, यह ख़र्च केन्द्रीय सरकार को ही करना पड़ता है।

* हमारी 'भारतीय राजस्व' पुस्तक में इस विषय का व्यौरेवार विवेचन किया गया है।

सरकारी व्यय (लाख रुपयों में)

सन् १९३४-३५ ई० का अनुमान

	मद	केन्द्रीय सरकार	प्रान्तीय सरकार
रक्षा	(१) सेना	४९,५८	...
शान्ति सुव्यवस्था	(२) कर वसूल करने का ख़र्च	४,०१	६,०४
	(३) पेन्शन	३,०८	२,४१
	(४) शासन		११,०७
	(५) न्याय, पुलिस और जेल		१९,०८
जन हितकारी कार्य	(६) शिक्षा	९,५९	११,६०
	(७) स्वास्थ और चिकित्सा		६,११
	(८) कृषि और उद्योग		२,९९
	(९) सिविल निर्म्माण कार्य	२,०२	५,०९
	(१०) मुद्रा, टकसाल, विनिमय	६	...
	(११) अन्य विभाग	...	७२
व्यवसायिक कार्य	(१२) रेल	३२,५८	...
	(१३) डाक और तार	८४	...
	(१४) जंगल	...	२,५५
	(१५) आबपाशी	...	५,७३
	(१६) विविध	१,२५	२,००
ऋण	(१७) ऋण का सूद	१३,२४	४,०८
	योग	११६,९५	७९,४७

खर्च की मद्दों का ब्यौरा--(१) सेना की मद में स्थल सेना, जल सेना, और वायु सेना का व्यय है। इस मद का ख़र्च बहुत अधिक है, और इसके कारण भारतीय जनता पर कर-भार बहुत अधिक होने पर भी अन्य उपयोगी कार्यों के लिये धन की कमी रहती है। भारतीय नेताओं की चिरकाल से यह शिकायत है कि यहां सेना का सञ्चालन और प्रबन्ध भारतवर्ष की दृष्टि से न कर साम्राज्य रक्षा के हेतु किया जा रहा है, तथा सेना के भारतीयकरण की ओर यथेष्ठ ध्यान नहीं दिया जाता। अभी तक इस सम्बन्ध में कुछ सुधार नहीं हुआ है।

(२) कर वसूल करने के ख़र्च में आयात निर्यात कर, आय-कर, मालगुज़ारी, स्टाम्प, रजिस्टरी, अफ़ीम, नमक, और आबकारी आदि विभागों के ख़र्च के अतिरिक्त, अफ़ीम और नमक तैयार करने का ख़र्च भी सम्मिलित है।

(३) इस मद में सिविल कर्मचारियों को दी जाने वाली पेन्शनों का ख़र्च शामिल है।

(४), (५), (६), (७) और (८) मदें स्पष्ट हैं।

(९) इस मद में सरकारी इमारतें और सड़कें बनवाने तथा उनकी मरम्मत आदि करवाने का ख़र्च शामिल है।

(१०) यह मद स्पष्ट है।

(११) अन्य विभाग में विज्ञान सम्बन्धी तथा बन्दरगाहों आदि का ख़र्च शामिल है।

(१२), (१३), (१४) और (१५) में क्रमशः रेल, डाक

और तार, जङ्गलों, और नहरों में लगायी हुई पूँजी का सूद शामिल है।

(१६) विविध व्यय में अकाल-पीड़ितों को सहायता, स्टेशनरी और छपाई का ख़र्च शामिल है।

(१७) डाकखानों के सेविंग बैंकों या प्रौविडैन्ट फण्ड के अस्थायी ऋण के अतिरिक्त, भारत सरकार यहां के सरकारी (पब्लिक) ऋण पर सूद देती है। भारत सरकार का कुल सरकारी ऋण ३१ मार्च १६३५ ई० को १२३६ करोड़ रुपये था, इसमें ७२२ करोड़ भारतवर्ष में, और शेष इंगलैंड में लिया हुआ था। कुल ऋण में से १०३३ करोड़ रुपये का ऋण ऐसा है जिसके बदले में किसी न किसी प्रकार की सम्पत्ति विद्यमान है, ७५७ करोड़ रुपये तो रेलवे में ही लगे हुए हैं, शेष में से कुछ रक़म व्यवसायिक विभागों में लगी हुई है, कुछ प्रान्तों तथा देशी राज्यों को उधार दी हुई है और कुछ नक़द मौजूद है। ऋण की जो रक़म रेलों में लगी हुई है, उसका सूद रेलों के व्यय की मद में दिखाया गया है। ऋण के २०३ करोड़ रुपये ऐसे हैं जिनके बदले में कोई सम्पत्ति विद्यमान नहीं है। कुल रक़म का सूद, ऋण के सूद की मद में दिखाया जाता है।

यह संक्षेप में ख़र्च का विचार हुआ। अब हम आय का विचार करते हैं।

सरकारी आय के साधन; प्रत्यक्ष और परोक्ष कर— सरकार को विविध कार्यों में ख़र्च करने के वास्ते रुपये की आवश्यकता होती है। यह रक़म वह तरह तरह के कर लगाकर तथा अन्य प्रकार से वसूल करती है। करों के मुख्य दो भेद हैं प्रत्यक्ष,

और परोक्ष । प्रत्यक्ष कर वह कर है, जो उसी आदमी से लिया जाता है, जिस पर उसका भार डालना अभीष्ट हो । यह कर देते समय कर-दाता यह भली भांति जान लेता है कि उसने आय में से इतना रुपया इस रूप में सरकारी कोष में दिया । उदाहरण-वत् ज़मीन का लगान, आय-कर, आदि प्रत्यक्ष कर हैं ।

परोक्ष कर, उस कर को कहा जाता है, जिसका भार, उसके चुकाने वाले औरों पर डाल देते हैं । व्यापारी लोग आयात और निर्यात पर जो महसूल देते हैं,उसे माल बेचने के समय,वह अपने ग्राहकों से वसूल कर लेते हैं । कपड़े, नमक, शराब, अफ़ीम आदि के कर परोक्ष कर हैं ।

करों के अतिरिक्त सरकारी आय के और भी कई साधन हैं । सरकार न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्यादि के बहुत से कार्य ऐसे करती है, जिनके उपलक्ष्य में वह जनता से फ़ीस लेती है । इसी प्रकार सरकार कुछ कार्यों को व्यवसायिक ढंग से करती है, ये कार्य ऐसे होते हैं, जो जनता द्वारा उतनी अच्छी तरह, तथा उतनी किफ़ायत से नहीं किये जा सकते । इन कार्यों से सरकार को आय भी होती है। इनके अतिरिक्त सरकारी आय के कुछ फुटकर साधन भी हैं ।

सरकार को किस किस मद्द से कितनी आय होती है, यह यह आगे नक्शे में दिखाया गया है ।

सरकारी आय (लाख रुपयों में)
सन् १९३४-३५ ई० का अनुमान

	मद	केन्द्रीय सरकार	प्रान्तीय सरकार
कर, प्रत्यक्ष	(१) आय कर	१७,२५	...
	(२) मालगुज़ारी	...	३३,८८
कर, परोक्ष	(३) आयात निर्यात कर	४७,७६	...
	(४) नमक	८,७३	...
	(५) अफ़ीम	६५	...
	(६) आबकारी	...	१४,४७
	(७) स्टाम्प	...	११,६६
	(८) रजिस्टरी	...	१,११
	(९) अन्य कर	१,८२	४१
फ़ीस	(१०) न्याय पुलिस जेल	७८ (१० और ११ मिलाकर)	१,७०
	(११) शिक्षा स्वास्थ्यादि		३,३१
	(१२) सिविल निर्म्माण कार्य	२४	१,५४
	(१३) मुद्रा टकसाल विनिमय	१,२७	...
व्यवसायिक आय	(१४) रेल	३२,५८	...
	(१५) डाक तार	७०	...
	(१६) जंगल	...	३,०५
	(१७) आबपाशी	...	६,८७
अन्य आय	(१८) सैनिक आय	५,२०	...
	(१९) सूद की आय	१,८६	२,११
	(२०) विविध	५७	८६
	योग	१,१९,११	८१,३३

आय की मद्दों का ब्यौरा—(१) से (८) तक की मद्दों में जो ख़र्च होता है, उसकी अपेक्षा आय की जितनी अधिकता होती है, वही यहां दिखायी गयो है। पिछले कोष्ठक के अङ्कों से यह स्पष्ट है कि आयात निर्यात कर केन्द्रीय सरकार की, और मालगुज़ारी* प्रांतीय सरकारों की, आय की सबसे बड़ी मद है।

उपर्युक्त आठ मद्दों में से पहली छः स्पष्ट हैं। स्टाम्प में अदालती और ग़ैर-अदालती दोनों प्रकार का स्टाम्प सम्मिलित है। अदालती स्टाम्प में कोर्ट फ़ीस स्टाम्प को, तथा उसके साथ काम में आने वाले काग़ज़ की, बिक्री की आय गिनी जाती है। ग़ैर-अदालती स्टाम्प वह कहा जाता है, जो रुपया लेने की रसीद, हुण्डी या दस्तावेज़ आदि पर लगाया जाता है।

रजिस्टरी की आय में, दस्तावेज़ों की रजिस्टरी कराने तथा रजिस्टरी की हुई दस्तावेज़ों की नक़ल लेने की फ़ीस शामिल है।

(९), अन्य केन्द्रीय कर में भारत सरकार को देशी राज्यों से मिलने वाले वार्षिक नज़राने की आय के अतिरिक्त, वह आय

---

* मालगुज़ारी के सम्बन्ध में, ब्रिटिश भारत में तीन तरह का बन्दोबस्त है :—(१) स्थायी प्रबन्ध; बंगाल में, बिहार के ५/६ भाग में एवं आसाम के आठवें और संयुक्त प्रान्त के दसवें भाग में। (२) ज़मींदारी या ग्राम्य प्रबन्ध; संयुक्त प्रान्त में ३० वर्ष और पंजाब तथा मध्य प्रान्त में २० वर्ष के लिए मालगुज़ारी निश्चित कर दी जाती है। गांव वाले मिल कर इसे चुकाने के लिए उत्तरदायी होते हैं। (३) रय्यतवारी प्रबन्ध; बम्बई, सिंध, मदरास और आसाम में, एवं बिहार के कुछ भाग में। इन स्थानों में सरकार सीधे काश्तकारों से सम्बन्ध रखती है। बम्बई, मदरास में ३० वर्ष में, तथा अन्य प्रान्तों में जल्दी जल्दी बन्दोबस्त होता है। नये बन्दोबस्त में प्रायः हर जगह सरकारी मालगुज़ारी बढ़ जाती है।

है, जो चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों में मालगुज़ारी, आबकारी, स्टाम्प, जंगल और रजिस्टरी से होती है। इस मद के प्रान्तीय भाग में वह रक़म सम्मिलित है जो प्रांतीय सरकारें सिनेमा आदि खेल तमाशों से कर के रूप में लेती हैं।

(१०), न्याय में दीवानी अदालत के अमीन, और कुड़क-अमीन की फ़ीस, मेजिस्ट्रेटों का किया हुआ जुर्माना, और ज़प्ती, लावारसी माल की बिक्री, वकालत की परीक्षा फ़ीस शामिल है। पुलिस की आय में सावजनिक विभागों, प्राइवेट कम्पनियों और लोगों को पुलिस देने के उपलक्ष्य में प्राप्त आय, मोटर आदि रजिस्टरी की फ़ीस, तथा जुर्मानों से होने वाली आय गिनी जाती है। जेल की आय में, जेलों के कारख़ानों के सामान की बिक्री से होने वाली आय मुख्य है ।

(११), इस मद में शिक्षा स्वास्थ, चिकित्सा, कृषि और उद्योग धन्धों आदि विभागों से होने वाली आय सम्मिलत है।

(१२), इस मद में सरकारी मकानों का किराया, तथा उन की बिक्री आदि से होने वाली आय सम्मिलित है।

(१३), इस मद में सरकार के 'पेपर करेंसी रिज़र्व' नामक कोष में जो 'सिक्यूरिटियां' रखी जाती हैं, उनकी रक़म का सूद तथा भारत के लिये पैसा इकन्नी आदि सिक्के, एवं कुछ अन्य देशों के सिक्के ढालने का लाभ सम्मिलित है। [रुपये ढालने का लाभ 'गोल्ड स्टेन्डर्ड रिज़र्व' अर्थात् मुद्रा--ढलाई--लाभ--कोष में डाला जाता है।]

(१४), (१५), (१६), और (१७), ये मदें स्पष्ट हैं।

(१८), सैनिक आय में सैनिक स्टोर कपड़े, दूध, मक्खन तथा पशुओं की बिक्री से होने वाली आय सम्मिलित है।

(१६), इस मद में सरकार जो रुपया किसानों को, तथा म्युनिसिपैलटियों आदि संस्थाओं को उधार देती है, उसके सूद की आय है।

(२०), विविध मद में पैन्शन सम्बन्धी आय के अतिरिक्त, सरकारी स्टेशनरी और रिपोर्टों आदि की बिक्री की आय भी सम्मिलित है।

सरकारी आय व्यय की भिन्न भिन्न मदों के सम्बन्ध में कहां तक भारतीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल को अधिकार है, और कहां तक शासक उक्त संस्थाओं के निर्णय के विरुद्ध काम कर सकते हैं, यह पिछले परिच्छेदों में बताया जा चुका है।

चौदहवां परिच्छेद

देशी राज्य

प्राक्कथन—देशी राज्यों ('स्टेट्स') से भारतवर्ष के उन भागों का प्रयोजन है जिनका आन्तरिक शासन यहां के ही राजा या सरदार, विविध संधियों के अनुसार, सम्राट् की अधीनता में रहते हुए, करते हैं। छोटे बड़े इन सब राज्यों की संख्या ५६० है। इनमें से हैदराबाद, बड़ौदा, मैसूर, कशमीर और गवालियर

आदि कुछ तो अपने विस्तार और जन संख्या में योरप के एक एक राष्ट्र के समान, तथा एक एक करोड़ रुपये से अधिक आय वाले हैं, और बहुत से राज्य साधारण गांव सरीखे हैं । जिन्हें वास्तव में राज्य कहा जाना चाहिये, उनकी संख्या दो सौ से भी कम है; शेष सनदी जागीरें ('इस्टेट्स') हैं, जिनके अधिपति सरदार या 'चीफ़' कहलाते हैं। केवल ३० ही राज्य ऐसे हैं जिनकी आबादी, क्षेत्रफल और साधन ब्रिटिश भारत के औसत ज़िले के समान हैं। ६ राज्य तो ऐसे हैं जिनका विस्तार एक एक ही वर्ग मील है, और २३ ऐसे हैं जिनका क्षेत्रफल एक एक वर्ग मील भी नहीं है। चार राज्यों में सौ सौ आदमियों की भी आबादी नहीं है, और तीन की वार्षिक आय सौ सौ रुपये से कम है।*

देशी राज्यों का शासन प्रबन्ध—अधिकतर देशी राज्यों में कोई शासन विधान नहीं है । उनका शासन, शासक की व्यक्तिगत इच्छा, रुचि या योग्यता आदि के अनुसार बदलता रहता है। जिन राज्यों का शासन प्रबन्ध कुछ निश्चित है, उनमें भी परस्पर में समानता नहीं है, प्रायः सबका अपना अपना निराला ढङ्ग है। अतः उनके सम्बन्ध में कुछ मुख्य मुख्य बातें ही कही जा सकती हैं। कहीं कहीं तो महाराजा (प्रधान शासक) के बाद मुख्याधिकारी दीवान होता है, और सब बड़े बड़े अधिकारी उसके अधीन रहते हैं। कहीं कहीं दीवान प्रधान मन्त्री होता है, और विविध विभागों का प्रबन्ध करने वाले मन्त्री उसके सहायक होते हैं। किसी किसी राज्य में प्रबन्धकारिणी कौंसिल है, इसके सदस्य भिन्न भिन्न विभागों का सञ्चालन करते हैं, परन्तु सब पर महाराजा का नियन्त्रण रहता है।

---

* ये अङ्क भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'इंडयन स्टेट्स' के आधार पर दिये गये हैं, जो सन् १ जनवरी १९२९ ई० तक संशोधित है।

कुछ देशी राज्यों में व्यवस्थापक सभाएँ हैं। पर ऐसे राज्यों की संख्या केवल तीस के लगभग है। इनकी सभाओं में से भी अधिकतर में सरकारी सदस्यों की काफ़ी संख्या है, तथा ग़ैर-सरकारी सदस्य भी जनता द्वारा निर्वाचित न होकर नामज़द अथवा म्युनिसिपैलटियों आदि संस्थाओं द्वारा चुने हुए होते हैं। वास्तव में देशी राज्यों में निर्वाचन प्रथा का बहुत ही कम उपयोग होरहा है। जनता को व्यवस्था कार्य के लिये अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं-सा है। फिर, देशी राज्यों की अधिकतर व्यवस्थापक सभाओं को क़ानून बनाने या बजट की मदें स्वीकार करने का यथेष्ट अधिकार न होने से वे एक प्रकार की परामर्शदातृ संस्था हैं। उनका शासकों पर कुछ नियंत्रण नहीं।

न्याय के सम्बन्ध में बात यह है कि शासन की भांति उसकी भी भिन्न भिन्न राज्यों में पृथक् पृथक् रीति है। अधिकांश राज्यों में निराले निराले क़ानून प्रचलित हैं। कुछ में तो न्याय सम्बन्धी क़ानून का अभाव ही कहा जासकता है, शासकों की इच्छा ही क़ानून है। लगभग चालीस राज्यों में हाईकोर्ट ब्रिटिश भारत के ढंग पर संगठित है। हां, कुछ राज्यों में यह विशेषता है कि उनमें न्याय शासन विभाग से पृथक है; परन्तु ऐसे राज्यों की संख्या केवल ३४ के ही लगभग है।

कुछ थोड़े से उन्नत राज्यों को छोड़ कर अन्य राज्यों में म्युनिसिपैलटियों आदि स्थानीय संस्थाओं की भी बहुत कमी है। कितने ही राज्यों में तो राजधानी में भी म्युनिसिपैलिटी नहीं है, अथवा, यदि है भी, तो उसमें नागरिकों का यथेष्ट प्रतिनिधित्व नहीं, राज-कर्मचारियों का ही प्रभुत्व रहता है।

राज्यों का आय व्यय—अधिकांश देशी राज्य अपना

वार्षिक शासन विवरण या रिपोर्ट प्रकाशित नहीं करते, और जो रिपोर्टें प्रकाशित भी होती हैं वे अङ्गरेजी में तो होती ही हैं, इसके अतिरिक्त वे सर्वसाधारण को सुलभ नहीं होतीं।* इसलिये यह ठीक ठीक मालूम नहीं हो सकता कि किसी ख़ास वर्ष में प्रत्येक राज्य को किस किस मद से कितनी कितनी आय हुई, तथा वह किस प्रकार ख़र्च की गयी। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'इण्डियन स्टेट्स' पुस्तक में सब राज्यों की नामावली, क्षेत्रफल, जन संख्या, सेना और तोपों की सलामी आदि के साथ प्रत्येक की कुल वार्षिक आय के अङ्क भी दिये हुए हैं। पर इस पुस्तक में भी व्यय के अङ्क सूचित नहीं किये गये। यह अनुमान किया जा सकता है, कि व्यय भी इसके थोड़ा बहुत समान ही होगा; कुछ राज्य अपनी आय से कम ख़र्च करते हैं, तो कुछ उससे अधिक भी करते हैं। कुछ राज्यों पर तो ऋण भार बहुत अधिक है, यद्यपि उन्होंने किसी विशेष उत्पादक कार्य में पूँजी नहीं लगायी।

अस्तु. समस्त राज्यों की वार्षिक आय कुल मिलाकर लगभग पचास करोड़ रुपये है। पर्याप्त सामग्री और स्थान के अभाव में इस आय की, ब्रिटिश भारत की सरकारी आय से तुलना करना ठीक नहीं है। यहां कुछ अन्य बातों का ही उल्लेख किया जाता है। जैसा कि पहले गया है, अधिकतर देशी नरेश प्रजा के प्रति कुछ भी उत्तरदायी नहीं हैं, वे स्वेच्छानुसार भांति भांति के कर लगाते हैं, और जब चाहें वे उन्हें बढ़ा देते हैं; किसी व्यवस्थापक सभा आदि का कुछ नियन्त्रण नहीं रहता।

* हमारे बहुत से राज्यों से पत्र व्यवहार करने पर, केवल टावंकोर, मैसूर, बड़ौदा, कशमीर और इन्दौर के अधिकारियों ने ही हमारे पास अपनी अपनी रिपोर्ट भेजने की कृपा की।

ख़र्च के विषय में भी वे बहुधा स्वच्छन्द हैं। प्रजा के करों के बोझ से दबे रहने पर भी वे लाखों रुपये के महल आदि बनाते रहते हैं, और यदि राज्य की रिपोर्ट छपती हैं तो वे इस ख़र्च को निर्माण कार्य के अन्तर्गत दिखा देते हैं। जनता की शिक्षा स्वास्थ और चिकित्सा की चिन्ता न कर, शिकार, मनोरञ्जन और विदेश यात्रा में, तथा कुत्ते मोटर आदि ख़रीदने में, और भारत सरकार के अफ़सरों आदि का स्वागत सत्कार करने में असंख्य धन ख़र्च कर डालते हैं। निदान, वे आय का अधिकांश भाग अपनी इच्छानुसार ख़र्च करते हैं। उनका स्वयं अपने लिये या राज्य परिवार के वास्ते लिया जाने वाला द्रव्य निर्धारित नहीं होता, और यदि निर्धारित होता भी है, तो उसकी मात्रा काफ़ी अधिक होती है। अवश्य ही ट्रांवकोर आदि राज्य इसके अपवाद हैं, पर कुल राज्यों को देखते हुए इनकी संख्या अत्यल्प है। प्रायः नरेश अपने कृपा-पात्रों को भी यथेष्ठ सम्पन्न बनाते रहते हैं; और जिनकी रुचि सत्कार्यों में होती है, उनके द्वारा दान, धर्म आदि लोकोपकारी कार्यों में भी अच्छा ख़र्च हो जाता है।

भारत सरकार का नियन्त्रण—सब देशी राज्य भारत-सरकार के न्यूनाधिक अधीन हैं। भारत सरकार का विदेश विभाग उनकी निगरानी किया करता है। यह विभाग स्वयं वाइसराय के अधीन हैं। उसकी सहायता के लिये एक पोलिटिकल सेक्रेटरी, तथा उसके कुछ सहायक रहते हैं। देशी राज्यों में से हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा, कशमीर, गवालियर और सिक्कम, ये छः ऐसे हैं, जिनका भारत सरकार से सीधा सम्बन्ध है। इनमें से प्रत्येक की राजधानी में भारत सरकार का एक एक रेज़ीडैण्ट रहता है। देशी राज्य और भारत सरकार में जो पत्र व्यवहार आदि होता है, वह रेज़ीडैंट द्वारा ही होता है। रेज़ीडैंट देशी नरेश को प्रत्येक आवश्यक विषय पर परामर्श देता रहता है।

कुछ राज्य ऐसे हैं, जिनके एक एक समूह की एक एक 'एजन्सी' है। प्रत्येक ऐजन्सी में एक 'गवर्नर-जनरल का एजन्ट' (एजन्ट टू दि गवर्नर-जनरल) या 'ए. जी. जी.' रहता है। यह भारत सरकार के अधीन होता है, और इसके अधीन कई कई पोलिटिकल एजन्ट (या छोटे रेज़ीडेण्ट) होते हैं। प्रत्येक पोलिटिकल एजण्ट एक या अधिक देशी राज्यों का कार्य करता है। पोलिटिकल एजन्ट इनके नरेशों को शासन आदि विषयों में आवश्यक परामर्श देते हैं। इन नरेशों और भारत-सरकार में जो पत्र व्यवहार आदि होता है वह क्रमशः पोलिटिकल एजन्ट और 'ए. जी. जी.' के द्वारा होता है।

जो राज्य प्रान्तीय सरकारों के अधीन होते हैं, उनमें भी पोलिटिकल एजण्ट (या छोटे रेजीडेंट) रहते हैं। किन्तु जहां तहां फैले हुए छोटे छोटे राज्यों या जागीरों (इस्टेट्स) में एजण्ट का कार्य प्राय उस कलेक्टर या कमिश्नर को ही सौंपा हुआ रहता है, जिसके क्षेत्र में वह राज्य होता है।

देशी राज्यों का परिचय—अब देशी राज्यों का कुछ विशेष परिचय दिया जाता है। स्मरण रहे कि देशी राज्यों की जन संख्या और क्षेत्रफल सम्बन्धी जो नक्शा इस पुस्तक के प्रथम परिच्छेद में दिया गया है, वह सन् १९३१ ई० की मनुष्य गणना के अनुसार है। उसके बाद, सन् १९३३ ई० में कुछ देशी राज्यों का नया वर्गीकरण होगया है, कुछ नयी एजन्सियां बन गयी हैं। इस लिये आगे दिये हुए परिचय की बातों का उस नक्शे से पूर्णतः मिलान नहीं होता। कुछ राज्यों की पृथक् पृथक् जन संख्या के अंक इस पुस्तक के दूसरे खंड में, संघीय व्यवस्थापक मंडल के संगठन के प्रसंग में, दिये गये हैं।

हैदराबाद—जन संख्या, क्षेत्रफल तथा वार्षिक आय एवं राजकीय कोष—सभी दृष्टियों यह राज्य सब राज्यों में प्रधान है। प्रधान शासक मुसलमान है, वह 'निजाम' कहलाता है। जब कि अन्य बड़े बड़े राजाओं को 'हिज़ हाईनेस' की उपाधि है, निज़ाम को उससे ऊँची 'हिज़ एग्ज़ाल्टेड हाईनेस' की उपाधि प्राप्त है। शासन कार्य संगठित विभागों में विभक्त है। राज्य के अन्तर्गत, निज़ाम के डाक, स्टाम्प और टकसाल विभाग स्वतंत्र हैं यही एक मात्र राज्य है, जिसमें अपने प्रामिसरी नोट और मुद्रा चलती है। यहां की वार्षिक आय लगभग आठ करोड़ रुपये है। निज़ाम की सहायतार्थ सात सदस्यों की प्रबंधकारिणी सभा रहती है। राज्य दो सूबों में विभक्त है, जिनमें १५ ज़िले हैं। यहां एक व्यवस्थापक सभा है, पर उसे आय व्यय की आलोचना आदि का कुछ अधिकार नहीं है; उसमें १२ सरकारी और केवल छः ग़ैर-सरकारी सदस्य हैं। ये छः (ग़ैर-सरकारी) सदस्य भी निर्वाचित न होकर, नामज़द होते हैं। इस प्रमुख देशी राज्य में भी प्रजा को निर्वाचन-अधिकार न होना अत्यन्त चिन्तनीय है। यहां उसमानिया यूनिवर्सिटी विविध विषयों की उच्च शिक्षा उर्दू भाषा में देती है, यद्यपि राज्य में तेलगू, मराठी और कनारी भाषा-भाषियों की संख्या क्रमशः ६७, ३७, और १६ लाख है, जब कि उर्दू बोलने वाले केवल १५ लाख हैं। यहां की ८५ प्रतिशत जनता हिन्दू है, उसे प्रायः शिक्षा, नागरिक अधिकारों और सरकारी पदों को प्राप्ति तथा अन्य बातों के सम्बन्ध में बहुत असन्तोष रहता है।

मैसूर—यहां नरेश के निरीक्षण में दीवान तथा कौंसिल के तीन सदस्य शासन कार्य करते हैं। न्याय कार्य के लिये तीन जजों का एक हाईकोर्ट है। राज्य ८ ज़िलों और ६८ ताल्लुकों में

बटा हुआ है। ज़िलों में डिप्टी कमिश्नर और ताल्लुक़ों में 'आमिलदार' शासन कार्य करता है। यहां व्यवस्थापक सभा सन् १९०७ ई० से है। इसमें २० सरकारी और ३० ग़ैर-सरकारी सदस्य बैठते हैं, इस सभा को राज्य सम्बन्धी प्रश्न पूछने तथा बजट की व्यय की मांग स्वीकार करने का अधिकार है। यहां की प्रतिनिधि-सभा अपने ढंग की भारतवर्ष में सर्व प्रथम संस्था है। इसके समस्त सदस्य राज्य के निवासियों के प्रतिनिधि हैं। राज्य का दीवान इस सभा में साल भर के आय व्यय का लेखा, तथा दरबार के क़ानून पेश करता है, और प्रतिनिधियों का मत सुनता है। यह सभा प्रजा की आवश्यकताओं या शिकायतों की ओर, सरकार का ध्यान आकर्षित करती है। कोई नया कर लगाने से पूर्व प्रतिनिधि-सभा का मत लिया जाता है। मताधिकार का विस्तार किया गया है। स्त्रियों को न केवल निर्वाचन में मत देने का अधिकार है, वरन् ये सदस्य बनने के लिये उम्मेदवार भी हो सकती हैं। स्थानीय स्वराज्य के कार्य में खूब प्रगति होरही है। ग्राम पंचायतों की संख्या बारह हज़ार तक पहुँच गयी है। सन् १९३४-३५ ई० में इस राज्य की अनुमानित आय १ करोड़ ६३ लाख रु० थी। यहां शिक्षा प्रचार, स्वास्थ रक्षा, कृषि, ग्राम संगठन, उद्योग, बैंकिंग, और आमोदरफ्त के साधनों में अच्छी उन्नति होरही है। कुर्ग का चीफ़ कमिश्नर इस राज्य का रेज़ीडेंट है।

बड़ौदा—यहां बड़े बड़े अफ़सरों की एक प्रबन्धकारिणी सभा गायकवाड़ महाराज के निरीक्षण में राज्य प्रबन्ध करती है। इस कार्य में दीवान से भी सहायता मिलती है। कुछ चुने हुए तथा नामज़द सदस्यों की एक व्यवस्थापक सभा है, पर इसके अधिकार बहुत कम हैं। न्याय कार्य के लिये एक हाईकोर्ट है। राज्य पांच प्रांतों में विभक्त है। यहां कृषि बैंक तथा सहकारी

समितियों का अच्छा प्रचार है। ग्राम्य संस्थाओं का पुनरुद्धार करने, शिक्षा को निशुल्क और अनिवार्य करने, अन्त्यजों (दलितों) और जङ्गली जातियों के लिये शिक्षा संस्थाएं, तथा गश्ती (चलते फिरते) पुस्तकालय स्थापित करने में इस राज्य का काय प्रशंसनीय रहा है। गत वर्ष अपनी 'हीरक' (साठ वर्ष की) जयन्ती के अवसर पर महाराज ने एक करोड़ रुपये ग्रामोत्थान, और इससे भी विशेषया हरिजनों के उत्थान आदि में लगाने की घोषणा की थी। राज्य की वार्षिक आय दो करोड़ सत्तर लाख रुपया है।

कशमीर—जम्बू और काशमीर दो पृथक् पृथक् प्रांत हैं, दोनों पर एक एक गवनर है। महाराज अपने मंत्रियों की सहायता से कार्य करते हैं। ब्रिटिश रेज़ीडैंट का हैड-कार्टर श्रीनगर है। गिलगिट में एक पोलिटकल एजंट रहता है, जो पास की छोटी रियासतों के शासन के लिये भारत सरकार के प्रति उत्तरदायी है। लेह में एक ब्रिटिश अफ़सर रहता है, यह मध्य एशिया के व्यापार की देख रेख में सहायता करता है। शिक्षा प्रचार और आमोदरफ्त के साधनों में यह राज्य बहुत पीछे है। वार्षिक आय सवा दो करोड़ रुपये है। यहां की ८० प्रतिशत जनता मुसलमान है।

ग्वालियर—यहां का महाराजा सिन्धिया (मराठा) है। यहां की 'मजलिस ख़ास' में नौ सदस्य हैं जिन्हें विविध शासन विभाग सोंपे हुए हैं। व्यवस्था कार्य के लिये 'मजलिस आम' (लोक सभा) सन् १६२१ ई० से संगठित है। इसमें लगभग ४० सदस्य होते हैं। इनका साधारण निर्वाचन नहीं होता। कुछ सदस्य म्युनिसिपैलिटियों, ज़िला बोर्डों, चेम्बर-आफ़-कामर्स, और बार (वकील) ऐसोसियेशन आदि से भेजे जाते हैं, तथा कुछ दरबार की ओर से, सरकारी या ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों में से

नामज़द किये जाते हैं। इस सभा के, साल में दो अधिवेशन होते हैं पिछले महाराजा साहब के उद्योग से शासन सम्बन्धी, तथा ग्वालियर राज्य सम्बन्धी विविध आवश्यक बातों का समावेश 'पोलिसी दरबार' में हो चुका है। प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार, ज़मीदार सभाओं तथा पंचायत बोर्डों की स्थापना, औरनिर्माण कार्य आदि में राज्य उन्नतशील है। वार्षिक आय ढाई करोड़ रुपये है।

सिक्कम—यह तिब्बत और भूटान के बीच में एक छोटासा राज्य है, परन्तु यहां से तिब्बत सीधा रास्ता होने के कारण इस का भौगोलिक महत्व बहुत अधिक है। पहले यह बंगाल सरकार के अधीन था, सन् १९०६ ई० से यह भारत सरकार के प्रत्यक्ष निरीक्षण में है। अंगरेज़ों से यहां व्यापार बढ़ रहा है, और इस समय प्रतिवर्ष चालीस पचास लाख रुपये के बीच में होता है। गत वर्षों कुछ अच्छी सड़कों का निर्माण होगया है। यहां की वार्षिक आय सवा पांच लाख रुपये हैं।

राजपूताना एजन्सी—इस एजन्सी में तेईस रियासतें हैं। इन में से टोंक और पालनपुर मुसलमान हैं, भरतपुर और धौलपुर में जाट हैं, और शेष राजपूत हैं। इस एजन्सी का एजन्ट अजमेर में रहता है।

रातपूताने में आमोदरफ्त के साधन बहुत कम है, कुल मिला कर केवल सवा तीन हज़ार मील रेल हैं। यहां शिक्षा, सभ्यता, और उद्योग धन्धों की शोचनीय कमी है। यद्यपि कुछ नरेश क्रमशः उदारता की नीति का व्यवहार करने लगे हैं, अधिकांश प्रबन्धकर्ताओं में स्वेच्छाचार की भावना बनी है। बीकानेर के सिवाय राजपूताने के और किसी राज्य में व्यवस्थापक सभा या प्रजा का मत सूचित करने वाली संस्थाएं नहीं हैं; यहा तक कि इने गिने बड़े बड़े नगरों को छोड़कर अन्यत्र म्युनिसिपैलिटी भी नहीं है।

राजपूताना एजन्सी के भाग	रियासत	शासक का पद	वार्षिक आय (रुपये)	जन संख्या (हज़ार)
ए. जी. जी. से सीधा सम्बन्ध रखने वाली	बीकानेर	महाराजाधिराज	१ करोड़	९३६
	सिरोही	महाराव	१० लाख	२१६
पूर्वी राजपूताना एजन्सी	झालावाड़	महाराजराना	८ लाख	१०८
	भरतपुर	महाराजा	३० लाख	४८७
	धौलपुर	महाराजराना	१७ लाख	२५५
	करौली	महाराजा	८ लाख	१४१
	कोटा	महाराव	५१ लाख	६८६
	बून्दी	महाराव राजा	१४ लाख	२१७
पश्चिमी राजपूताना रेज़ीडैन्सी	जोधपुर	महाराजा राव	१४१ लाख	२१२६
	जैसलमेर	महारावल	४ लाख	७६
	पालनपुर	नवाब	११ लाख	२६४
	दांता	महाराना	२ लाख	२६
जैपुर रेज़ीडैन्सी	टोंक	नवाब	२२ लाख	३१७
	शाहपुरा	राजाधिराज	५ लाख	५४
	अलवर	महाराजा	३५ लाख	७५०
	जैपुर	महाराजाधिराज	१२० लाख	२६३१
	किशनगढ़	महाराजाधिराज	९ लाख	८६
	लावा	राव	५० हज़ार	३
मेवाड़ रेज़ीडैन्सी और दक्षिण राजपूताना एजन्सी	उदयपुर	महाराना	८० लाख	१५६७
	बांसवाड़ा	महारावल	७ लाख	२२५
	डूंगरपुर	महारावल	८ लाख	२२७
	प्रतापगढ़	महारावत	५$\frac{1}{2}$ लाख	६७
	कुशलगढ़	राव	१$\frac{3}{4}$ लाख	३६

बीकानेर राज्य के शासन कार्य में, यहां का महाराजा अपने प्रधान मंत्री तथा एक प्रबन्धकारिणी सभा की सहायता लेता है। यहां की व्यवस्थापक सभा के ४५ सदस्यों में से केवल २० ही निर्वाचित होते हैं। निर्वाचित सदस्यों का चुनाव प्रजा के प्रत्यक्ष मत से नहीं, वरन् म्युनिसिपल सदस्यों द्वारा होता है, जिन में राज कर्मचारियों का ही प्रभुत्व होता है। पुनः व्यवस्थापक सभा के प्रस्ताव केवल परामर्श के रूप में होते हैं, राज्य उन्हें मानने के लिये वाध्य नहीं होता।

भरतपुर के भूत-पूर्व नरेश सर कृष्णसिंहजी ने सितम्बर सन् १६२७ ई० में 'शासन समिति' नामक व्यवस्थापक सभा के विधान पर स्वीकृति दी थी। उसकी कुछ बातें काफ़ी उदारता-पूर्ण थीं, उदाहरणवत् समिति के १२० सदस्यों में से ६० प्रजा द्वारा निर्वाचित होंगे; निर्वाचन तीन वर्ष में हुआ करेगा, और साम्प्रदायिक न होकर संयुक्त होगा, समिति अपने सदस्यों में से मंत्री मंडल का चुनाव करेगी। मंत्री मंडल राज्य के समस्त विषयों पर परामर्श देगा, और उसकी सभा प्रति सप्ताह होगी; आदि। महाराजा साहब के सन् १६२८ ई० में राज-त्याग पर, उनका पुत्र नाबालिग़ होने के कारण, यहां एक अँग्रेज़ दीवान की नियुक्ति की गयी, उसने शासन समिति के चुनाव को रोक दिया और उसके विधान को अनिश्चित समय तक के लिये स्थगित कर दिया।

जोधपुर में शासन कार्य के लिये जो परिषद है, उसके सभापति स्वयं महाराजा साहिब हैं। राज्य की रीति व्यवहार विषयक बातों में सम्मति देकर सहायता पहुँचाने के लिये एक परामर्श-समिति है। इसमें बहुत से सरदारों के प्रतिनिधि हैं, जिनके पास राज्य की लगभग लगभग ८० प्रतिशत भूमि है। जनता के नागरिक अधिकारों की दृष्टि से यह राज्य बहुत अवनत अवस्था में

है। जैसलमेर नरेश सुप्रसिद्ध प्राचीन यादववंशी राजपूत हैं! पर यह राज्य भी कुछ प्रगतिशील नहीं है।

टोंक का शासन-प्रबन्ध नवाब चार सदस्यों की कौंसिल की सहायता से करता है। नवाब का परामर्शदाता इस कौंसिल का उपसभापति है। वही फ़ाइनैंस मेम्बर है। अन्य तीन सदस्य होम मेम्बर, जूडीशल मेम्बर और रेवन्यू मेम्बर हैं। शाहपुरा एक छोटा सा राज्य है, तथापि यहां का नरेश, सुप्रसिद्ध प्राचीन शीशोदिया वंश का होने के कारण, बहुत प्रतिष्ठित माना जाता है। अलवर का महाराजा शासन कार्य मंत्रियों और कौंसिल के सदस्यों की सहायता से करता है। राज्य और जनता की आर्थिक स्थिति असंतोषप्रद है। जयपुर में प्रारम्भिक शिक्षा निशुल्क है, पर उसकी ठीक व्यवस्था नहीं है। यहां सन् १६२१ ई० से 'चीफ़ कोर्ट' नामक न्यायालय है। किशनगढ़ के राजा की, राज्य प्रबन्ध में सहायता के लिये एक कौंसिल है।

उदयपुर को मेवाड़ भी कहते हैं। यहां सुप्रसिद्ध महाराणा प्रतापसिंह के वंश का राज्य है। इसमे, विशेषतया चित्तौड़ में प्राचीन गौरव की स्मृति-स्वरूप अनेक वस्तुएं विद्यमान हैं। परन्तु आधुनिक शासकों का अभिमान योग्य कृतियों का शोचनीय अभाव है। अधिकांश प्रजा की निरक्षरता और आर्थिक हीनता चिंतनीय है। बांसवाड़ा के महारावल को शासन कार्य में दीवान और होम मिनिस्टर से सहायता मिलती है। यहां एक जूडीशल अर्थात् न्याय सम्बन्धी, और व्यवस्थापक परिषद है। दीवान इसका सभापति और युवराव इसका सीनियर मेम्बर होता है। प्रतापगढ़ के महारावत को राज्य कार्य में दीवान की, तथा न्याय सम्बन्धी विषयों में राज सभा के सदस्यों की, सहायता मिलती है।

मध्य भारत एजन्सी—इस एजन्सी में ८६ राज्य और

जागीरें हैं। उनमें अधिकतर के प्रधान शासक हिन्दू हैं। मुसलमान राज्यों में भोपाल, जावरा और बावनी मुख्य हैं। इन्दौर, रीवां, हीरापुर और लालगढ़ को छोड़कर शेष राज्य निम्न लिखित भागों में विभक्त हैं:—(१) भोपाल एजन्सी; इसमें १२ राज्य और जागीरें हैं, इनमें से मुख्य भोपाल, देवास सीनियर और देवास जूनियर हैं। (२) बुन्देलखण्ड एजन्सी; इसमें ३३ राज्य और जागीरें हैं, इनमें मुख्य ओरछा और दतिया हैं। (३) मालवा एजन्सी; इसमें ४७ राज्य और जागीरें हैं, इनमें मुख्य धार, जावरा और रतलाम हैं। विविध राज्यों का भारत सरकार से भिन्न भिन्न प्रकार का राजनैतिक सम्बन्ध है। गवर्नर-जनरल का एजण्ट (ए. जी. जी.) इन्दौर में रहता है। उसकी अधीनता में उपयुक्त एजन्सियों में एक एक पोलिटिकल एजन्ट कार्य करता है।

मराठों, बुन्देलों और बघेलों की प्राचीन कीर्ति और वीरता सुप्रसिद्ध है। परन्तु इस समय इन राज्यों में केवल इन्दौर ही कुछ विशेष प्रगतिशील है। यहां की प्रबंधकारिणी सभा में प्रधान मंत्री, चार भिन्न भिन्न विभागों के मन्त्री, तथा एक अन्य मंत्री है। यहां सन् १६२५ ई० से एक व्यवस्थापक परिषद भी है,उसमें केवल नौ सदस्य हैं, दो सरकारी और सात ग़ैर-सरकारी। यह एक प्रकार की प्रामर्श-समिति है। न्याय कार्य के लिये विविध अदालतों के अतिरिक्त एक हाईकोर्ट तथा न्याय कमेटी है। यहां शिक्षा, साहित्य, उद्योग और ग्राम-सुधार सम्बन्धी अच्छा कार्य हो रहा है। कुछ समय से हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना का भी विचार चल रहा है। समाज सुधार के कई उपयोगी क़ानून बने हैं। मध्य भारत के इस अपेक्षाकृत कुछ उन्नत राज्य में भी नागरिकों के भाषण तथा सभा सम्मेलनों पर कुछ प्रतिबन्ध रहना बहुत खटकता है। इन्दौर एक सम्पत्तिशाली राज्य है, वार्षिक आय एक करोड़ अड़तीस लाख रुपया है।

भोपाल में सन् १६२७ ई० से एक व्यवस्थापक सभा है, जो अपने प्रस्तावों द्वारा लोकमत सूचित करती है। इसके सदस्यों को आवश्यक विषयों के प्रश्न पूछने का अधिकार है। दतिया में भी एक व्यवस्थापक सभा है, पर उसे अभी कुछ वास्तविक अधिकार नहीं है। रीवां राज्य भी कुछ समय से प्रगति-पथ पर है, यहां समाज सुधार सम्बन्धी कई क़ानून बने हैं।

पश्चिम भारत एजन्सी—पश्चिम के राज्य पहले बम्बई सरकार के अधीन थे। सन् १६२४ ई० से 'पश्चिम भारत एजन्सी' नामक एक पृथक् एजन्सी बनाई गयी। इसमें सन् १६३३ ई० में कुछ अन्य राज्य मिलाये गये। अब इसमें काठियावाड़ और साबरकंठ एजन्सी तथा कुछ अन्य राज्य हैं। काठियावाड़ में लगभग दो सौ राज्य हैं, जिनमें कुछ भारत-प्रसिद्ध बन्दरगाह हैं। शासन प्रबंध के लिये काठियावाड़ पूर्वी और पश्चिमी दो एजन्सियों में विभक्त है। साबरकंठ एजन्सी में पहले की बनसकंठ और माईकंठ एजन्सियां सम्मिलित हैं। पश्चिम भारत एजन्सी के राज्यों में भावनगर के अतिरिक्त ध्रांगधर, गोंडल, जूनागढ़, नवानगर, कच्छ, पोरबन्दर, और ईदर मुख्य हैं। कई राज्य अपने अधीन अन्य राज्यों और जागीरों से कर लेते हैं, और कुछ स्वयं दूसरों को कर देते हैं।

भावनगर में राज्य प्रबन्ध के लिये एक कौंसिल है; यहां शासन और न्याय कार्य को पर्ण रूप से पृथक् किया गया है। प्रत्येक विभाग के सर्वोच्च पदाधिकारी के अधिकार स्पष्ट रूप से निर्धारित हैं, और सब कौंसिल के प्रति उत्तरदायी रहते हुए, अपने अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र हैं। इस राज्य की राजधानी इसी की नाम-राशी—भावनगर है, यह जहाज़ों के लिये एक अच्छा सुरक्षित बन्दरगाह तथा व्यापार का मुख्य केन्द्र है इसे आयात-कर से

खूब आय होती है; कुल वार्षिक आय डेढ़ करोड़ रुपये है। यह राज्य ब्रिटिश सरकार के अतिरिक्त बड़ौदा और जूनागढ़ को कर देता है। ध्रांगधर एक प्रथम श्रेणी का राज्य है। यहां शासन कार्य महाराजा साहब के आदेशानुसार चार मेम्बरों की कौंसिल से होता है। कच्छ का शासक महाराव कहलाता है। इस राज्य में महाराव की बिरादरी के १३७ राजपूत सरदार हैं। इनकी अपनी अपनी जागीरें हैं, जिनमें इन्हें कुछ क़ानूनी अधिकार प्राप्त हैं। ये आवश्यकता होने पर महाराव साहब को सैनिक देने के लिये बाध्य हैं।

गुजरात एजन्सी—बहुत से ऐसे राज्यों और जागीरों को मिलाकर, जो पहले बम्बई सरकार के अधीन थी, भारत सरकार की यह नयी एजन्सी बनायी गयी है। इसका कार्य बड़ौदा के रेजीडेन्ट को सौंपा गया है। इसके मुख्य राज्य ये हैं:—बालसिनोर, बांसड़ा, बरिया, केम्बे, छोटा उदयपुर, धर्मपुर, जौहर, लूनावाडा, राजपोपला, सची और सन्त। इस एजन्सी के ही अधीन रीवाकंठ एजन्सी है, जिसके अधिकांश राज्य बहुत छोटे छोटे हैं।

दक्षिण भारत एजन्सी—बम्बई प्रान्त के कुछ राज्यों का सन् १९३३ ई० में भारत सरकार से सीधा सम्बन्ध हुआ, उसी के परिणाम-स्वरूप इस नयी एजन्सी का निर्माण किया गया। इसका एजन्ट कोल्हापुर में रहता है। कोल्हापुर राज्य खासा प्रगतिशील है। इसके आधीन नौ जागीरदार हैं। यहां का महाराजा, मराठा साम्राज्य के संस्थापक सुप्रसिद्ध शिवाजी का वंशज है। एजन्सी के अन्य मुख्य राज्य ये हैं:—जंजीरा, सावन्तवाड़ी, मुढोल, सांगली, भोर, अकलकोट, औंध, जामखंडी, जाठ, कुरडबाद, मिराज, फालटन, रामदुर्ग और सावनूर।

पूर्वी राज्य एजन्सी–सन १९३३ ई० में, बिहार उड़ीसा के राज्यों में, मध्यप्रान्त के राज्यों को (मकरई को छोड़ कर) मिलाकर इस नवीन एजन्सी का निर्माण किया गया। इस में चालीस राज्य हैं। क्षेत्रफल ५९,६८० वर्गमील, जन संख्या ७१,०८,७३६ है और वार्षिक आय है डेढ़ लाख रुपये। मध्यप्रांत के राज्यों में बस्तर, रायगढ़, सिरगुजा मुख्य हैं।

मदरास एजन्सी–इसमें पांच राज्य हैं:–ट्रावंकोर, कोचीन, पद्दूकोटा, बंगनपल्ले और संदुर; इनमें से प्रथम दो बहुत प्राचीन हिन्दूराज्य है। ट्रावंकोर बहुत प्रगतिशील है। प्रारम्भिक शिक्षा निश्शुल्क है। सड़क और नहरों आदि में भी यहां बहुत उन्नति हुई है। स्त्री शिक्षा में तो यह ब्रिटिश भारत से भी आगे है। यहां सन् १८८८ ई० में ही व्यवस्थापक परिषद की स्थापना हो गयी थी। सन् १९३३ ई० में यहां व्यवस्थापक मण्डल की दो सभाएं करदी गयीं, व्यवस्थापक सभा और राज्य परिषद। दोनों में ग़ैर-सरकारी निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होता है, और दोनों को ही वार्षिक आय व्यय पर मत देने, प्रस्ताव करने और प्रश्न पूछने का अधिकार है। व्यवस्थापक सभा का निर्वाचन विस्तृत मताधिकार से होता है। मतभेद के प्रश्नों का निर्णय दोनों सभाओं के द्वारा चुने हुए समान संख्यक सदस्यों की संयुक्त कमेटी द्वारा होता है। स्त्रियों को मत देने तथा सदस्य बनने का वैसाही और उतना ही अधिकार है, जितना पुरुषों को। बड़े बड़े क़स्बों में जनता को एक छोटे परिमाण में स्थानीय स्वराज्य के अधिकार प्राप्त हैं। राज्य की वार्षिक आय लगभग ढाई करोड़ रुपये है। न्याय विभाग, शासन विभाग से पृथक है। सहकारी समितियों और कृषि शिक्षा का अच्छा प्रचार है। राज्य का अपना डाक विभाग है। राज्य का काय महाराणी के हाथ में है, वह अपने तथा

राज घराने के खर्च के लिये राज्य की आय में से चार प्रतिशत के लगभग लेती है, जो भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा कम है।

कोचीन का शासन कार्य यहां के महाराजा के नियंत्रण में संचालित होता है। उनका चीफ़ मिनिस्टर और राज्य का प्रबन्धक अफ़सर दीवान होता है। वार्षिक आय ६२ लाख रुपये है। पदुदूकोटा राज्य के विविध विभागों का संगठन ब्रिटिश भारत के ढंग पर होता है। वार्षिक आय ५३ लाख रुपये है।

पंजाब एजन्सी–यह एजन्सी सन् १९२३ ई० में बनी। इस में अब चौदह राज्य हैं :— पटियाला, बहावलपुर, खैरपुर, जींध, नाभा, कपूर्थला, मंडो, सिरमौर (बाहन), बिलासपुर, (कहलूर) मलेरकोटला, फ़रीदकोट, चम्बा, सुकेत, और लुहारू। एजन्ट लाहौर में रहता है। इन राज्यों में से केवल कपूरथला में व्यवस्थापक सभा है, इसकी स्थापना वहां सन १९१६ ई० में हुई थी। इस राज्य की वार्षिक आय ३६ लाख रुपये हैं। यद्यपि पटियाला की वार्षिक आय लगभग डेढ़ करोड़ रुपये है, और इस दृष्टि से यह पंजाब एजन्सी का प्रमुख राज्य है, तथापि आय व्यय के कारण राज्य बहुत ऋणी है, तथा यहां शिक्षा स्वास्थ आदि के जन हितकारी कार्यों की व्यवस्था भी बहुत कम है।

बिलोचिस्तान एजन्सी-यह एजन्सी ब्रिटिश बिलोचिस्तान के चीफ़ कमिश्नर की निगरानी में है, और इस में किलात खरां और लसबेला के राज्य हैं। इन में किलात का राज्य प्रमुख है। इसकी वार्षिक आय लगभग चौदह लाख रुपये है।

पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त एजन्सी-इसमें चित्राल, दीर

और स्वात के छोटे छोटे राज्य हैं। यह पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के गवर्नर के निरीक्षण में हैं।

अन्य रियासतें—ऊपर जिन राज्यों का उल्लेख हुआ है, उन्हें छोड़ कर, शेष राज्य ऐसे हैं, जिनका राजनैतिक सम्बन्ध ब्रिटिश भारत के प्रान्तीय शासकों या ज़िलाधीशों से ही है। ये भिन्न भिन्न प्रान्तों में हैं। इनमें से अधिकतर तो बहुत छोटे छोटे हैं, हां, कुछ जन संख्या एवं आय की दृष्टि से भी ख़ासे बड़े हैं।

कुछ मुख्य मुख्य राज्य निम्न लिखित हैं। बंगाल में कूचबिहार और त्रिपुरा हैं। इनकी आय क्रमशः ४२ और ३२ लाख रुपये सालाना है। प्रान्तीय सरकार इनका नियंत्रण कलेक्टरों द्वारा कराती है, जिन्हें इनके पोलिटिकल एजंट के अधिकार हैं। संयुक्त प्रान्त में रामपुर, टेहरी और बनारस के राज्य हैं, इनका निरीक्षण इस प्रान्त का गवर्नर ए. जी. जी. की हैसियत से करता है। इनकी वार्षिक आय क्रमशः ६२, १६ और २६ लाख रुपये है। आसाम में २५ खासी जागीरों के अतिरिक्त केवल एक मनीपुर राज्य है, इसकी वार्षिक आय ८ लाख रुपये है।

नरेशों का सम्मान—भारत सरकार की ओर से देशी नरेश दो प्रकार सम्मानित होते हैं, (१) उपाधियों तथा अवैतनिक सैनिक पदों से, और (२) तोपों की सलामी से। कुछ उपाधियां पैत्रिक होती हैं, ये स्थायी रहती हैं। इनके अतिरिक्त जो उपाधियां ब्रिटिश सरकार या भारत सरकार प्रदान करती है, वे अस्थायी और व्यक्तिगत रहती हैं, अर्थात् नरेश का उत्तराधिकारी ऐसी उपाधि का उपयोग नहीं कर सकता। उपाधियों के अतिरिक्त, ब्रिटिश सरकार कभी कभी नरेशों को अवैतनिक सैनिक पद भी देती है, जैसे लेफ्टिनेंट जनरल, या कर्नल आदि।

देशी नरेशों में से ११८को सलामी का सम्मान प्राप्त है। इनमें से जब कोई नरेश अपने राज्य से बाहर जाता है, या बाहर से आता है, अथवा नरेश की हैसियत ब्रिटिश भारत में आता है, या वहां से लौटता है तो उसके सम्मान के लिये निर्धारित संख्या में तोपें छोड़ी जाती हैं, यह संख्या ६ से २१ तक होती है। इसके तीन भेद हैं :—स्थायी, व्यक्तिगत और स्थानीय। स्थायी सलामी में परिवर्तन नहीं होता, यह पीढ़ी दर पीढ़ी उसी परिमाण में चली जाती है। व्यक्तिगत सलामी की संख्या भारत सरकार स्थायी से कुछ अधिक निश्चित करती है, वह नरेश के जीवन काल तक रहती है, उसके उत्तराधिकारी के लिये नहीं होती। स्थानीय सलामी केवल राज्य के भीतर मिलती है, बाहर नहीं मिलती।

देशी राज्यों के अधिकार—देशी राज्यों के निवासी अपने अपने नरेश की प्रजा हैं। साधारणतया इन पर, अथवा इनके शासकों पर, ब्रिटिश भारत का क़ानून नहीं लग सकता। हां, देशी राज्य में रहने वाली ब्रिटिश प्रजा पर, तथा रेज़ीडेन्सी, छावनी, रेल या नहर की भूमि में, अथवा राजकोट या बढ़वान (गुजरात) जैसे स्थानों में जहां व्यापार आदि के कारण बहुतसे अंगरेज़ रहते हों, ब्रिटिश भारत के ही क़ानून का व्यवहार होता है। ब्रिटिश भारत का कोई अपराधी यदि किसी देशी राज्य में भाग जाय तो वह उस नरेश की आज्ञा से पकड़ा जाकर, ब्रिटिश भारत में भेज दिया जाता है। देशी राज्यों की प्रजा अपने राज्य की सीमा के बाहर ब्रिटिश प्रजा की तरह मानी जाती है। साधारणतः देशी नरेश अपनी प्रजा से कर लेते तथा उसके दीवानी और फ़ौजदारी मामलों का फ़ैसला करते हैं। कुछ नरेश अपने यहां आने वाले माल पर चुङ्गी लेते हैं; कुछ अभी तक अपने रुपये आदि सिक्के ढालते हैं। परन्तु, इन सब को अपने यहां

अंगरेज़ी रुपये को वही स्थान देना पड़ता है जो उसे ब्रिटिश भारत में मिला है। ब्रिटिश भारत की प्रान्तीय या केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं में साधारणतया देशी राज्यों सम्बन्धी आलोचना या प्रश्नोत्तर नहीं हो सकते।

भारत सरकार की नीति--देशी राज्यों के प्रति भारत सरकार की नीति यह है कि जब तक वे ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति बनायी रखें और पहले की सन्धि की शर्तों का यथोचित पालन करते रहें, तब तक सरकार उनकी रक्षा करेगी और उनका अस्तित्व बनाये रखेगी। यद्यपि साधारण दशा में देशी नरेश अपने राज्यों का स्वयं प्रबन्ध करते हैं, कुछ नरेश वायसराय को 'मेरे दोस्त' लिखते हैं और इंगलैंड को अपना, 'मित्र-राज्य' समझते हैं, परन्तु कार्य व्यवहार में नरेश भारत सरकार के परामर्श की अवहेलना नहीं कर सकते।* सरकार जिस नरेश को अयोग्य या असमर्थ समझे, उसे गद्दी से उतार कर, उसके किसी सम्बन्धी को पदारूढ़ कर देती है या उसके राज्य में किसी अँगरेज़ को ऐडमिनिस्ट्रेटर (शासक) बना देती है। यदि किसी नरेश के सन्तान न हो तो वह उसे उत्तराधिकारी या वारिस गोद लेने की इजाज़त दे देती है। वारिस की नाबालिग़ी (अल्पावस्था) की हालत में देशी राज्य के शासन का प्रबन्ध सरकार करती, या रीजेन्सी द्वारा करवाती है। इन राज्यों को इस बात की अनुमति नहीं रहती कि सरकार की आज्ञा बिना वे परस्पर में एक दूसरे से, अथवा किसी विदेशी राष्ट्र से किसी

* सरकार नरेशों से कभी कभी ऐसा भी अनुरोध करती है कि वे अपनी सन्तान का किसी ख़ास राजघराने में ही विवाह करें, अथवा, उसे ख़ास ढंग से, राजकुमार कालेज में या विलायत में ही शिक्षा दिलावें।

प्रकार का राजनैतिक व्यवहार कर सकें, अथवा किसी विदेशी को अपने यहां नौकर रख सकें। इन राज्यों की रक्षा का भार सरकार ने अपने ऊपर रखा है, और इन्हें सरकार की सहायता के लिये कुछ सेना रखनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त ये थोड़ी सी फ़ौज अपनी आन्तरिक शान्ति अथवा दिखावे के लिये रख सकते हैं, परन्तु किसी पर चढ़ाई करने, अथवा किसी की चढ़ाई से अपने को बचाने के लिये वे कोई फ़ौज नहीं रख सकते।

बरार के सम्बन्ध में, निज़ाम हैदराबाद से पत्र व्यवहार करते समय भूत-पूर्वक वायसराय लार्ड रीडिंग ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, उसका आशय यह है कि देशी नरेश अपने राज्यों के भीतरी प्रबन्ध में भी स्वतंत्र नहीं हैं। भारतवर्ष में, शान्ति और सुव्यवस्था रखना साम्राज्य सरकार का, किसी संधि-पत्र से नहीं, स्वयं-सिद्ध अधिकार है। ब्रिटिश सरकार को जब जैसा जँचे, वह किसी देशी राज्य के भीतरी प्रबन्ध में हस्तक्षेप कर सकती है। * देशी नरेश प्रायः अपने को स्वतंत्र समझते थे। लार्ड रीडिंग के उक्त निर्णय के अनुसार उनके अधिकार बहुत परिमित हैं।

जांच कमीशन—ऐसे झगड़ों के विषय में जो दो या अधिक राज्यों में, किसी राज्य और किसी प्रान्तिक सरकार में, या किसी राज्य और भारत सरकार में उपस्थित हों, एवं जब कोई राज्य भारत सरकार अथवा उसके किसी प्रतिनिधि के आदेश से

---

* गत वर्षों में उदयपुर नाभा, और इन्दौर में सरकार ने स्वेच्छा से ही हस्तक्षेप किया, प्रजा की प्रार्थना पर नहीं। भरतपुर में हस्तक्षेप उस समय किया गया जब स्थिति असह्य होगयी। यदि आरम्भ में ही चेतावनी दे दी जाय, तो ऐसे हस्तक्षेप का अवसर न आये।

असन्तुष्ट हो, वायसराय एक कमीशन नियुक्त कर सकता है, जो झगड़े वाले मामले की जांच करके अपनी सम्मति उसके सामने उपस्थित करे। अगर वायसराय इसे मंजूर न कर सके तो वह उस मामले को फ़ैसले के लिए भारत मंत्री के पास भेज देगा।

जांच कमीशन की यह व्यवस्था सन् १६२० ई० से हुई है। पर अभी तक इसके प्रयोग का अवसर नहीं आया। सन् १६२१ ई० में महाराणा उदयपुर के विरुद्ध भारत सरकार को कुछ शिकायतें हुई, इस पर महाराणा ने युवराज को कुछ अधिकार देकर मुक्ति पायी। नाभा के भूतपूर्व महाराजा रिपुदमनसिंह और इन्दौर के भूतपूर्व महाराजा तुकोरावजी होल्कर ने भी प्रसंग आनेपर कमीशन स्वीकार नहीं किया और स्वेच्छा से राज्य त्याग दिया। भरतपुर के भूतपूर्व महाराजा सर कृष्णसिंहजी ने सन् १६२७ ई० में कमीशन स्वीकार करलिया था, पर उस के साथ सरकार की यह शर्त नहीं मानी कि जब तक कमीशन जांच करेगा तब तक महाराजा को भरतपुर से बाहर रहना होगा, और शासनकार्य एक योग्य ब्रिटिश अधिकारी के सुपुर्द रहेगा। पीछे महाराजा ने कमीशन की स्वीकृति ही रद करदी और स्वेच्छा से राज्य त्याग करदिया। नरेशों के इस प्रकार 'स्वेच्छा पूर्वक' राज्य त्याग करने से प्रतीत होता है कि वे अपने दोषों पर प्रकाश नहीं पड़ने देना चाहते तथा वे कमीशन के परिणाम का पहले से अनुमान कर उससे बहुत आशंकित रहते हैं।

नरेन्द्र मण्डल—सन् १६२१ ई० से बड़े बड़े राज्यों की एक नरेन्द्र मण्डल (चेम्बर आफ़-प्रिंसेज़) नामक, संस्था बनी हुई है। जिन विषयों का सम्बन्ध किसी विशेष राज्य से न हो, जिनका प्रभाव साधारणतः सब राज्यों पर पड़ता हो, अथवा जिनका सम्बन्ध ब्रिटिश साम्राज्य या ब्रिटिश भारत और

देशी राज्यों से हो, उन पर इस संस्था की सम्मति मांगी जाती है। इसका सभापति वायसराय होता है, उसकी अनुपस्थिति में राजाओं में से ही कोई प्रधान का कार्य करता है। मण्डल का प्रधान कार्यालय देहली में है। इसका अधिवेशन प्रायः साल में एक बार होता है, उसमें वायसराय द्वारा स्वीकृत विषयों पर ही वादानुवाद होता है। मण्डल के नियम वायसराय नरेशों की की सम्मति लेकर बनाता है। नरेन्द्र मण्डल प्रति वर्ष एक छोटी सी स्थायी समिति बनाता है, जिससे वायसराय या सरकार का राजनैतिक विभाग देशी राज्यों सम्बन्धी महत्व-पूर्ण विषयों में परामर्श करता है।

नरेन्द्र मण्डल के कुल १२० सदस्य हैं, १०८ सदस्य तो उन ११८ नरेशों में से हैं जिन्हें तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है, और १२ सदस्य अन्य १२७ नरेशों के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार मण्डल में २३५ नरेशों के प्रतिनिधि होते हैं। शेष ३२५ जागीरों के सरदारों आदि की ओर से उसमें कोई प्रतिनिधित्व नहीं होता। सदस्यों में से प्रायः ४०, ५० ही अधिवेशन में उपस्थित होते हैं। हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा, आदि के नरेशों ने इसकी कार्रवाई में कभी भाग नहीं लिया। सन् १६२८ ई० तक इसकी सब कार्रवाई गुप्त रखी जाती थी, वायसराय का भाषण तक भी प्रकाशित नहीं किया जाता था। अब अधिवेशन में, कुछ दर्शक उपस्थित हो सकते हैं। अपने अब तक के जीवन में मण्डल प्रजाहित की दृष्टि से कोई स्वतंत्र या सन्तोषप्रद कार्य नहीं कर सका है।

बटलर कमेटी और उसके बाद—देशी राज्यों का ब्रिटिश सरकार से क्या सम्बन्ध रहे, तथा ब्रिटिश भारत से आर्थिक सम्बन्ध कैसा हो, इस विषय का विचार करने के लिये दिसम्बर १६२७ ई० में 'इण्डियन स्टेट्स कमेटी' नियुक्त हुई थी, जिसे

उसके सभापति के नाम पर बटलर कमेटी कहते हैं। इसके तीनों सदस्य अंगरेज़ थे। नरेशों ने भारी फ़ीस देकर सर लेस्ली स्काट को अपना वकील नियत किया, और साम्राज्य सरकार के सामने पेश करने के लिये एक योजना बनवाई। उस योजना का उद्देश्य यह था कि नरेशों के राजनैतिक और आर्थिक अधिकार, पूर्व संधियों के अनुसार, रहें; और नरेशों का, इङ्गलैंड के बादशाह से सीधा सन्बन्ध हो।

सम्भवतः नरेशों को भय था कि निकट भविष्य में ब्रिटिश भारत स्वतन्त्र हो जायगा और वायसराय भारतीय पार्लिमैंट के सामने उत्तरदायी हुआ करेगा, ऐसी स्थिति में उन (नरेशों) पर भी भारतीय पार्लिमैंट का नियन्त्रण होगा। यदि नरेश और नहीं तो समय के प्रवाह को देखकर ही, अपने अपने राज्य में उत्तर-दायी शासन स्थापित करके, प्रजा को संतुष्ट और सुखी रखने वाले हों तो उनको स्वराज्य-प्राप्त भारत की पार्लिमैंट के नियंत्रण से कोई भय नहीं हो सकता। अस्तु, नरेश भारत सरकार के राज-नैतिक विभाग के समय समय किये जाने वाले हस्तक्षेप से भी बहुत परेशान थे, और बटलर कमेटी से इस नीति में परिवर्तन की सिफ़ारिश कराना चाहते थे। इस कमेटी ने फरवरी १६२६ में अपनी रिपोर्ट उपस्थित की, पर उसने तो भारत सरकार के हस्तक्षेप अधिकार को और भी दृढ़ किये जाने में सहायता की। हां, उसने नरेशों का सम्राट् के साथ सीधा सम्बन्ध होने की बात स्वीकार की; और देशी राज्यों को ब्रिटिश भारत की, आयात-कर आदि उन मदों की आय में से कुछ रुपया देने के सम्बन्ध में विचार किये जाने की सिफ़ारिश की, जिनकी कुछ आय देशी राज्यों की प्रजा से वसूल होकर ब्रिटिश भारत के ख़ज़ाने में आती है। निदान, बटलर कमेटी से नरेशों की प्रधान आशा की पूर्ति न हुई।

फिर, उन्होंने गोलमेज़ परिषदों* में अपने दृष्टि-कोण को व्यक्त करने का प्रयत्न किया। इसके परिणाम-स्वरूप, संघ शासन विधान में उनके हित का बहुत कुछ ध्यान रखा गया है। इसके सम्बन्ध में इस पुस्तक के दूसरे खण्ड में लिखा गया है, वहां ही देशी राज्यों का सम्राट् से सम्बन्ध होने के विषय पर विचार किया गया है।

देशी राज्यों के गुण दोष—देशी राज्यों में कई बात तो बहुत अच्छी हैं। ये हमारे स्वराज्य-भोगी प्रदेश हैं। यहां हमारे प्रबन्ध की परीक्षा होती है और स्वराज्य की शिक्षा मिलती है। जहां हमारे अनेक पुरुष-रत्न ब्रिटिश भारत में 'कलेक्टर' जैसी नौकरियों को प्राप्त करने में सहज ही सफल नहीं होते, देशी राज्यों में योग्य भारतीय सज्जन दीवान जैसे उच्च पद को शोभित करते हैं। कई राज्यों में अनिवार्य शिक्षा प्रणाली व्यवहृत कर दी गई है। यहाँ कोई 'आर्म्स ऐक्ट' नहीं, लोगों को हथियार रखने की मनाई नहीं। ब्रिटिश भारत पाश्चात्य सभ्यता दर्शाता है तो ये प्राचीन आचार विचार की छटा दिखाते हैं। परन्तु इन राज्यों में बहुत से दोष भी हैं। कुछ उन्नत या सुधार-प्रिय राज्यों को छोड़कर उनकी प्रजा को सार्वजनिक कार्य करने की उतनी स्वाधीनता नहीं, जितनी ब्रिटिश भारत की जनता को है। बहुधा उनमें सार्वजनिक मत को दर्शाने वाले समाचार पत्रों का अभाव ही है। अनेक स्थानों में राजा करे सो न्याय, और नरेश की इच्छा ही क़ानून है। कर लगाने की निश्चित नीति नहीं, प्रजा से कितने ही प्रकार से धन संग्रह करके उसे स्वेच्छानुसार ख़र्च किया जाता है; प्रजा की सुनाई नहीं होती। शिक्षा और स्वास्थ्य आदि की ओर भी यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जाता।

* देखो 'भारतीय शासन नीति' शीर्षक, परिच्छेद।

देशी राज्यों का सुधार—देशी राज्यों के वर्तमान दोषों का दायित्व कुछ अंश में तो ब्रिटिश सरकार की नीति पर ही है। नरेशों की यह धारणा है कि जब तक वे उसके प्रतिनिधियों अर्थात् भारत सरकार के अधिकारियों को प्रसन्न करते रहेंगे, सरकार उनके शासन सम्बन्धी दोषों पर विशेष ध्यान न देगी। इस लिये वे प्रजा के प्रति अपने कर्तव्यों का समुचित पालन नहीं करते। अन्यथा, राज्य नामधारी प्रत्येक संस्था का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि नागरिकों के सुख स्मृद्धि और उन्नति में दत्तचित्त हो। जो राज्य अपनी आय या क्षेत्रफल आदि की दृष्टि से इतने छोटे या असमर्थ हैं कि उपर्युक्त कर्तव्य पालन के लिये शिक्षा, स्वास्थ, आजीविका और न्याय आदि की भी व्यवस्था नहीं कर सकते, उन्हें अपने पृथक् अस्तित्व का अधिकार नहीं है, उन्हें चाहिये कि अपने निकटवर्ती राज्य या प्रान्त में सम्मिलित हो जांय।*

कुछ समय से किसी किसी राज्य में प्रजा परिषद शासकों का ध्यान प्रजा के विविध कष्टों के निवारण तथा उन्नति-मूलक कार्यों की वृद्धि की ओर दिलाने के लिये संगठित है। सन् १९२७ ई० से अखिल भारतवर्षीय देशी राज्य प्रजा परिषद के बराबर अधिवेशन होरहे हैं। इस परिषद का उद्देश्य समस्त वैध और शांत उपायों द्वारा देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन प्रचलित करना है। भारतवर्ष की राष्ट्र सभा कांग्रेस ने भी समय समय पर इस सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किये हैं, और नरेशों से आग्रह किया है कि अपने राज्यों में प्रतिनिधि-संस्थाओं के आधार पर उत्तरदायी शासन चलावें और तुरन्त ऐसी घोषणाऐं निकालें या ऐसे क़ानून

* फ़रवरी १९२९ ई० में दक्षिण के कुछ राज्यों ने पूना में सभा करके एक संयुक्त हाईकोर्ट की स्थापना का विचार किया है।

बनाएं जिनमें सभा समिति बनाने, भाषण करने और लिखने की स्वतन्त्रता, तथा जान माल की रक्षा, और इसी प्रकार के अन्य मूल नागरिक अधिकारों के सुरक्षित रहने की बात हो। ज्यों ज्यों इस बात पर अमल होने में देरी होगी, परिस्थिति अधिकाधिक चिन्तनीय होने की आशंका है; कारण, कि संसार की वर्तमान भावना निरङ्कुश शासन को हटाकर उसकी जगह उत्तरदायी शासन की स्थापना करना है। जिन देशों में शासकों ने बुद्धिमता और उदारता से इस कार्य में योग दिया उनका ही कल्याण हुआ है। नरेशों को अपनी रक्षा और सहायता का प्रधान साधन अपनी प्रजा को ही समझ कर तन, मन, धन से उसकी शक्ति बढ़ानी चाहिये।

पन्द्रहवां परिच्छेद

ज़िले का शासन

[ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी मुख्य मुख्य विषयों का वर्णन कर चुकने पर, इस परिच्छेद में ब्रिटिश भारत के ज़िलों के शासन का विचार किया जाता है। देशी राज्यों में से अधिकांश का क्षेत्रफल या जन-संख्या बहुत कम हैं, उनमें सब शासन अधिकार प्रायः पोलिटिकल एजन्टों को ही है। कुछ थोड़े से ही राज्यों में जिले या प्रान्त है; उनका प्रबन्ध भिन्न भिन्न प्रकार से होता है।]

प्राक्कथन—ब्रिटिश भारत में, प्रायः प्रान्त और ज़िले के बीच में कमिश्नरी का दर्जा है, अतः पहले उसके विषय में जान लेना आवश्यक है। मदरास प्रान्त को छोड़ कर, प्रत्येक बड़े प्रान्त में चार पांच कमिश्नरियां हैं। कमिश्नरी के अफ़सर को कमिश्नर कहते हैं। यह शासन सम्बन्धी कोई कार्य स्वयं नहीं करता, केवल ज़िला-अफ़सरों के काम की जांच पड़ताल करता है। ज़िलों से जो रिपोर्ट या पत्रादि प्रान्तीय सरकार के पास जाते हैं, वे सब कमिश्नरों के हाथ से गुज़रते हैं। कमिश्नरों को अपनी अपनी म्युनिसिपैलिटियों का काम देखने भालने के भी कुछ अधिकार हैं; परन्तु इनका विशेष सम्बन्ध मालगुज़ारी से रहता है। ये मालगुज़ारी के बन्दोबस्त* में परामर्श देते हैं, और विशेष दशाओं में उसे वसूल करने के कार्य को स्थगित कर सकते हैं। ये माल के मुक़द्दमों की अपील भी सुनते हैं।

मदरास प्रान्त में कमिश्नरियां नहीं हैं। वहां कमिश्नरों के बिना भी सब काम सुचारू रूप से हो रहा है। अन्य प्रान्तों में भी कमिश्नरों की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती; ये हटा दिये जाने चाहियें।

शासन व्यवस्था में ज़िले का स्थान—प्रत्येक कमिश्नरी में तीन या अधिक ज़िले होते हैं। प्रत्येक ज़िले का औसत क्षेत्रफल चार हज़ार वर्गमील तथा उसकी औसत मनुष्य-संख्या नौ लाख है। कोई ज़िला छोटा है, कोई बड़ा। इसी प्रकार, कहीं की मनुष्य-

* मालगुज़ारी के बन्दोबस्त के लिये पंजाब और मध्यप्रान्त में फ़ाइनैन्शल (अर्थ) कमिश्नर हैं, और, संयुक्तप्रान्त, बिहार और बंगाल में चार मेम्बरों तक के 'रेवन्यू बोर्ड' हैं। ये कलेक्टरों और कमिश्नरों के इस विषय सम्बन्धी कार्य का निरीक्षण करते हैं।

संख्या कम है, कहीं की बहुत अधिक। ज़िलों की सीमा निश्चित करने में प्रायः यह विचार रखा जाता है कि प्रत्येक ज़िले के शासक को मालगुज़ारी तथा प्रबन्धादि का काम समान ही करना पड़े। ब्रिटिश भारत में ज़िलों की कुल संख्या २३० है।*

ब्रिटिश भारत में शासन की इकाई ज़िला ही है। राज्य की कल जैसी एक ज़िले में चलती दिखाई पड़ती है, वैसी ही प्रायः अन्य ज़िलों में भी है। जैसे अफ़सर एक ज़िले में काम करते हैं, वैसे ही औरों में भी हैं। जनता के काम काज का मुख्य स्थान और लोक-व्यवहार का केन्द्र ज़िला है। जो मनुष्य अन्य प्रान्तों तथा दूसरे शहरों आदि से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते, उन्हें भी बहुधा अपने ज़िले के भिन्न भिन्न स्थानों में, शासन या न्याय सम्बन्धी, कुछ न कुछ काम पड़ जाता है। यहां की व्यवस्था को देखकर जन-साधारण समस्त देश के राज्य-प्रबन्ध का अनुमान किया करते हैं।

ज़िला-मेजिस्ट्रेट—प्रत्येक ज़िला एक ज़िला-मेजिस्ट्रेट के अधीन होता है। ज़िलाधीश ज़िले का 'कलेक्टर' भी होता है। कलेक्टर अर्थ है, वसूल करने वाला। ज़िला-मेज़िस्ट्रेट का एक मुख्य कार्य मालगुजारी वसूल करना होने के कारण उसे साधारण बोल चाल में 'कलेक्टर' कहते हैं। (पञ्जाब, बर्मा, अवध और मध्य प्रान्त में वह डिप्टी कमिश्नर कहलाता है)।

ज़िले के लोगों के लिये ज़िला-मेजिस्ट्रेट ही सरकार का प्रतिनिधि है। उच्च कर्मचारियों को वह भले ही न जानें, पर

* मदरास २६, बम्बई २१, सिन्ध ७, बंगाल २८, संयुक्तप्रान्त ४८, पंजाब २९, बिहार ११, उड़ीसा (छोटा नागपुर सहित) १०, मध्यप्रान्त-बरार २२, आसाम १२, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त ५, बिलोचिस्थान ६, अजमेर मेरवाड़ा १, कुर्ग १, देहली १, अंडमान-निकोबार २।

ज़िला-मेजिस्ट्रेट से तो उन्हें बहुधा काम पड़ता ही रहता है। इसी की योग्यता पर सरकार के नियमों से प्रजा का यथेष्ट लाभ होना अथवा न होना निर्भर है, और जैसा इसका बर्ताव रहता है, उसी से अधिकांश जन-समाज सरकार की नीति का अन्दाज़ लगाते हैं। यह जो कार्य करता है, उसे सरकार का कार्य कहा जाता है; इसकी कही हुई बात सरकार की कही हुई बात समझी जाती है, सरकार को बहुत सी बातों का ज्ञान उतना या वैसा ही होता है, जैसा यह कराता है। इससे यह कहा जा सकता है कि ज़िला-मेजिस्ट्रेट सरकार का केवल हाथ मुँह ही नहीं, आंख कान भी है।

ज़िला-मेजिस्ट्रेट के अधिकार और कर्तव्य—उसकी संयुक्त उपाधि 'कलेक्टर-मेजिस्ट्रेट' उसके डबल कार्य की बोधक है। कलेक्टर की हैसियत से वह ज़िले की मालगुज़ारी वसूल करता है, और मेजिस्ट्रेट की हैसियत से वह ज़िले का शासन करता है। वह अपनी अमलदारी के भूमि सम्बन्धी मामलों पर विचार करता है, सरकार और प्रजा के सम्बन्ध का ध्यान रखता है, और ज़मींदारों और किसानों आदि के झगड़े का फ़ैसला करता है। दुर्भिक्ष अथवा अन्य आवश्यकता के समय कृषकों को सरकारी सहायता उसी की सम्मति के अनुसार मिलती है। इसके अतिरिक्त, स्थानीय आबकारी, इन्कम-टैक्स, स्टाम्प-ड्यूटी तथा आय के अन्य श्रोत भी उसी के सुपुर्द हैं। ज़िले के ख़ज़ाने का भी वही उत्तरदाता है। उसे म्यूनिसिपैलिटियों तथा ज़िला-बोर्डों की निगरानी का अधिकार है। उसे अव्वल दर्जे की मेजिस्ट्रेटी के भी अधिकार होते हैं, जिन से वह एक अपराध पर साधारणतः दो साल तक की क़ैद और एक हज़ार रुपये तक का जुर्माना कर सकता है। ज़िले की सब प्रकार की सुख शांति

का वही उत्तरदाता है। वह अपने अधीन पदाधिकारियों के विरुद्ध अपील भी सुनता है और स्थानीय पुलिस का निरीक्षण भी करता है। इस बात के निश्चय करने में, कि कहां पुल, सड़क इत्यादि बनने चाहिये, कहां सफ़ाई का प्रबन्ध होना चाहिये, तथा ज़िले के किन किन स्थानों को स्थानीय स्वराज्य का अधिकार मिलना चाहिये, उसी की सम्मति प्रामाणिक मानी जाती है। ज़िले में जो भी प्रबन्ध ठीक न हो, उसका सुधार करना, और हर एक बात की रिपोर्ट उच्च कर्मचारियों के पास भेजना, उसी का कर्तव्य है। ज़िले की आन्तरिक दशा जानने तथा उसे सुधारने के विचार से उसे देहातों में दौरा भी करना होता है। इस प्रकार इतने भिन्न भिन्न प्रकार के कार्य उसके सुपुर्द हैं कि उसके लिये, उन सब को स्वयं भली प्रकार चलाना दुस्तर है। इस लिये बहुत से काम उसके अधीन कर्मचारी ही कर डालते हैं, और वह उनके काग़ज़ों पर हस्ताक्षर कर देता है।

शासन और न्याय का पृथक्करण—शासन और न्याय दोनों कार्य भिन्न भिन्न व्यक्तियों के सुपुर्द रहने चाहिये, इस विषय में पहले परिच्छेद में कहा जा चुका है। परन्तु भारतवर्ष में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, ज़िला-मेजिस्ट्रेट अपने ज़िले की शांति का उत्तरदाता है, इस लिये पुलिस एक प्रकार से उसके अधीन है। जब वह और उसके अधीन डिप्टी मेजिस्ट्रेट आदि कर्मचारी फ़ौजदारी मुकद्दमों का फ़ैसला करते हैं तो बहुधा ऐसा देखा गया है कि वे पुलिस का पक्ष लेते हैं। इससे न्याय नहीं होने पाता। इस लिये न्याय कार्य को शासन कार्य से पृथक रखना चाहिये; इसका यहां बहुत वर्षों से आन्दोलन हो रहा है।

ज़िले के अन्य कार्य-कर्ता—ज़िले में अनेक प्रकार के कार्य होते हैं यथाः—शान्ति रखना, झगड़ों का फ़ैसला करना,

मालगुजारी वसूल करना, सड़क पुल आदि बनवाना, अकाल में लोगों की सहायता करना, रोगियों का इलाज करना, म्युनिसिपल व लोकल बोर्डों की निगरानी रखना, जेलख़ाना और पाठशाला आदि का निरीक्षण करना, इत्यादि। इन विविध कार्यों के लिए ज़िले में कई एक अफ़सर रहते हैं, जैसे पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट, डिस्ट्रिक्ट जज, मुन्सिफ़, एग्ज़ीक्यूटिव इञ्जिनियर, सिविल सर्जन, जेल-सुपरिंटेण्डेण्ट, तथा स्कूल-इन्स्पेक्टर, आदि। ये अफ़सर अपने पृथक् पृथक् विभागों के उच्च कर्मचारियों के अधीन होते हैं, परन्तु शासन के विचार से, ज़िला-जज और मुन्सिफ़ आदि को छोड़ कर, सब पर ज़िला-मेजिस्ट्रेट ही प्रधान होता है। 'ज़िले का हाकिम' वही कहा जाता है। इसके कार्य में सहायता देने के लिए डिप्टी व सहायक मैजिस्ट्रेट रहते हैं।

ज़िले के कार्यकर्ताओं को क़ानून बनाने का अधिकार नहीं होता। इनका मुख्य काम यह है कि ये सरकार के बनाये क़ानून को व्यवहार में लावें, तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करें। हां, क़ानून बनाने में अप्रकट रूप से इतना भाग इनका अवश्य रहता है कि इनकी रिपोर्ट के आधार पर सरकार स्थानीय परिस्थिति का अनुमान करती है, और तदनुसार क़ानून बनाती है।

ज़िले के भाग और उनके अधिकारी--प्रायः प्रत्येक ज़िले के कुछ भाग होते हैं, उन्हें सब-डिविज़न कहते हैं। हर एक सब-डिविज़न एक डिप्टी कलेक्टर, अथवा 'ऐक्सट्रा ऐसिस्टैंट कमिश्नर' के अधीन रहता है। अपनी अपनी अमलदारी में, सब-डिविज़नों के अफ़सरों के अधिकार थोड़े बहुत भेद से, कलेक्टर-मेजिस्ट्रेटों के समान ही होते हैं।

बङ्गाल प्रान्त को, तथा बिहार और संयुक्त प्रान्त के कुछ

भागों को छोड़कर, अन्यत्र प्रत्येक ज़िले के अन्तर्गत ५-६ तहसील (या ताल्लुक़े) हैं। ज़िलों के ये भाग सब-डिप्टी कलेक्टरों, या तहसीलदारों के अधीन हैं; ये कर्मचारी प्रजा और सरकार को एक दूसरे के विषय में आवश्यक सूचना देते रहते हैं, और, अपने इलाक़े के माल व फ़ौजदारी के काम के भी उत्तरदाता हैं। इनके सहायक कर्मचारी नायब तहसीलदार, पेशकार, क़ानूनगो, रेवन्यू इन्स्पेक्टर आदि होते हैं। प्रायः एक तहसील में कई सर्कल या हल्क़े होते हैं।

गांवों के अधिकारी--तहसीलदारों के अधीन गावों में नम्बरदार (पटेल), चौकीदार और पटवारी रहते हैं। नम्बरदार गांव का सब से बड़ा अधिकारी होता है। यह ज़मींदारों से मालगुज़ारी तथा आबपाशी की रक़म वसूल करके तहसील में भेजता हैं, वहां से वह ज़िले में भेजी जाती है। यह अपने गांव में शांति रखने का प्रयत्न करता है। चौकीदार पहरा देता और चौकसी करता है। वह पुलिस में प्रति सप्ताह यह ख़बर देता है कि गांव में उस सप्ताह के भीतर कितनी मृत्यु हुईं, और कितने बालकों का जन्म हुआ। वह गांव की चोरी, क़त्ल तथा अन्य अपराधों की भी रिपोर्ट करता है। चौकीदारों का अफ़सर 'मुखिया' कहलाता है। पटवारी अपने हल्क़े (ग्राम या ग्राम-समूह) के किसानों और ज़मींदारों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों के काग़ज़ तथा रजिस्टर आदि रखता है। कोई खेत या उसका कुछ हिस्सा बिकजाय, या किसी खेत का मालिक बदलजाय या मरजाय, तो पटवारी इस बात की रिपोर्ट तहसील में करता है, और अपने काग़ज़ों में उचित सुधार करलेता है। वह खेतों के नक्शे बनाता है, और मालगुज़ारी आदि का हिसाब रखता है।

बंगाल, बिहार तथा संयुक्त प्रान्त के जिन जिन भागों में

मालगुज़ारी का स्थायी बन्दोबस्त है, उनमें तहसीलदार, नम्बरदार और पटवारी आदि कर्मचारी नहीं रहते। सब-डिविज़नल अफ़सर के नीचे, थानेदार तथा एक एक ग्राम-समूह के लिये दफ़ादार, और प्रत्येक ग्राम में चौकीदार रहते हैं।

चौदहवां परिच्छेद

स्थानीय स्वराज्य

[इस परिच्छेद का विषय ब्रिटिश भारत को लक्ष्य में रख कर लिखा गया है; देशी राज्यों के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है, उन में स्थानीय संस्थाएं बहुत कम हैं।]

प्राक्कथन—सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार भी ब्रिटिश भारत के निवासियों को अपने केन्द्रीय या प्रान्तीय शासन में बहुत थोड़े अधिकार हैं। उन्हें सरकार द्वारा केवल अपने अपने स्थानों अर्थात् शहरों, नगरों या देहातों के सुधार या प्रबन्ध सम्बन्धी ही कुछ विशेष अधिकार मिले हुए हैं। इन अधिकारों का उपयोग करने के लिये जो संस्थाएं बनायी गयी हैं, वे यहां स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ कहलाती हैं।* इनके भेद ये हैं—

* स्वराज्य-प्राप्त देशों में ऐसी संस्थाओं को केवल 'स्थानीय संस्थाएं' कहा जाता है।

(१) 'कारपोरेशन', म्युनिसिपैलिटियां, और 'नोटीफ़ाइड एरिया', (२) 'पोर्ट ट्रस्ट', (३) 'इम्प्रूवमैंट ट्रस्ट', (४) बोर्ड या यूनियन कमेटियां, और (५) पञ्चायत।

प्राचीन व्यवस्था--पहले यहां प्रत्येक गांव (या नगर), देश का एक स्वावलम्बी भाग होता था। उसमें एक प्रभावशाली पंचायत रहती थी, जो स्थानीय स्वास्थादि का प्रबन्ध करती, रक्षा कार्य के लिये अपनी पुलिस रखती, स्वयं भूमि कर वसूल करके राजकोष में भेजती, और छोटे मोटे दीवानी और फ़ौजदारी के झगड़ों का निपटारा करती थी। राज वंश बदले, क्रान्तियां हुईं, बारी बारी से हिन्दू, (क्षत्रीय, राजपूत) पठान, मुग़ल, मराठे, और सिक्खों का प्रभुत्व हुआ। परन्तु सब विघ्न वाधाओं का सामना करते हुए भी ग्राम्य संस्थाओं ने अपना अस्तित्व और स्वतन्त्रता बनाये रखी।

आधुनिक स्थिति--अंगरेज़ों के प्रारम्भिक समय में, ग्राम्य संस्थाओं की आय और अधिकार प्रान्तीय सरकारों द्वारा ले लिये जाने पर, ग्राम-सङ्गठन का क्रमशः ह्रास होगया। यद्यपि अब भी पञ्चायती मन्दिर और धर्मशाला आदि बनते हैं, ये प्राचीन व्यवस्था के स्मृति-चिह्न मात्र हैं। अब पुनः नवीन रूप से पञ्चायतें स्थापित की जारही हैं। इसका विवेचन आगे किया जायगा। पहले अन्य प्रकार की स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं का वर्णन करते हैं।

कारपोरेशन--कलकत्ता, बम्बई, और मदरास शहरों की म्यूनिसिपैलिटियां 'म्यूनिसिपल कारपोरेशन' या केवल 'कारपो-रेशन' कहलाती हैं। इनके सदस्यों (कमिश्नरों) को कौंसिलर,

और सभापति को 'मेयर' कहते हैं। अन्य म्युनिसिपैलिटियां से इनका संगठन कुछ भिन्न प्रकार का, और आय व्यय तथा काय क्षेत्र अधिक, होता है।

म्यूनिसिपैलिटियां—म्यूनिसिपैलिटियों का कार्य-क्षेत्र नगर या शहर है। इनके दो उद्देश्य हैं, नगर का सुधार होना और जन साधारण को सार्वजनिक कार्य करने की व्यवहारिक शिक्षा मिलना। इनकी कुछ वास्तविक उन्नति सन् १८७० ई० से, (लार्ड मेयो के समय में) हुई। सन् १८८४ ई० में लार्ड रिपन ने इनके अधिकार बढ़ाये, तब से इनका विशेष प्रचार हुआ है। अब स्त्रियों को भी मताधिकार प्राप्त है। नया निर्वाचन चार साल में होता है। अब निर्वाचक सूची सरकार तैयार करती है, पहले म्युनिसिपैलिटियां ही करती थीं।

अधिकांश ब्रिटिश भारत में, प्रत्येक म्युनिसिपैलिटी के निर्वाचित सदस्य, उनकी कुल संख्या के आधे से दो तिहाई तक, रहते हैं। सभापति, सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जाता है। उप-सभापति सदस्यों में से ही निर्वाचित होता है। म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों में सेक्रेटरी का पद बड़े महत्व का होता है।

निर्वाचक कौन हो सकता है--प्रत्येक प्रान्त में, म्युनिसिपैलिटियों के निर्वाचकों की योग्यता सम्बन्धी साधारण नियम समान हैं, पर कुछ व्योरेवार नियमों में स्थानीय परिस्थिति के अनुसार थोड़ी बहुत भिन्नता है।*

भिन्न भिन्न म्युनिसिपैलिटियों का चुनाव सन् १९३४ या १९३५ ई० में हो चुका है। अब अगला चुनाव चार वर्ष बाद होगा। उससे पूर्व, शीघ्र ही इनके चुनाव सम्बन्धी वर्तमान नियम बदल जांयगे; कारण, नवीन

म्युनिसिपैलिटियों के कार्य—भिन्न भिन्न स्थानों में कुछ भेद होते हुए, साधारणतः म्युनिसिपैलिटियों के मुख्य कार्य ये हैं:—(१) सर्व साधारण की सुविधा की व्यवस्था करना; सड़कें बनवाना, उनकी मरम्मत कराना, उन पर छिड़काव कराना और वृक्ष लगवाना, डाक बंगला या सराय आदि सार्वजनिक मकान बनवाना, कहीं आग लगजाय तो उसे बुझाना; अकाल, जल की बाढ़ या अन्य विपत्ति के समय जनता की सहायता करना। (२) स्वास्थ्य रक्षा; अस्पताल या औषधालय खोलना, चेचक और प्लेग के टीके लगाने तथा मैले पानी के बहाने का प्रबन्ध कराना, और छूत की बीमारियों को बन्द करने के लिए उचित उपाय काम में लाना; पीने के लिए स्वच्छ जल (नल आदि) की व्यवस्था करना, खाने के पदार्थों में कोई हानिकारक वस्तु तो नहीं मिलायी गयी है, इसका निरीक्षण करना। (३) शिक्षा, विशेषतया प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार के लिए, पाठशालाओं की समुचित व्यवस्था करना*; मेले और नुमायशें कराना। (४) बिजली की रोशनी, ट्रामवे तथा छोटी रेलों के बनाने में सहायता देना।

विधान के अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों के चुनाव के लिये जो योग्यता निर्धारित की गयी है, उस का परिमाण म्युनिसिपल निर्वाचकों की योग्यता की अपेक्षा कम रखा गया है; और क़ानून से आवश्यकता है म्युनिसिपैलिटियों के निर्वाचकों की योग्यता कम होने की, वह किसी दशा में भी उससे अधिक नहीं रहनी चाहिये। अस्तु, निकट भविष्य में बदले जाने वाले नियम दिये जाना अनावश्यक है। पाठकों को उनका अनुमान संयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा सम्बन्धी निर्वाचन नियमों से हो सकता है, जो पहले दिये जा चुके हैं।

आमदनी के साधन—इन संस्थाओं की आमदनी के मुख्य मुख्य साधन ये हैं:—

(१) चुङ्गी, [अधिकतर उत्तर भारत, बम्बई और मध्य प्रान्त में]; यह इन संस्थाओं की सीमा के अन्दर आने वाले माल तथा जानवरों पर लगती है। संयुक्त प्रान्त में इस कर की इतनी प्रधानता है कि कुछ ज़िलों में म्यूनिसिपैलिटियों का नाम ही 'चुङ्गी' पड़ गया है। (२) मकान और ज़मीन पर कर [विशेषतया आसाम, बिहार उड़ीसा, बम्बई, मध्य प्रान्त और बङ्गाल में] (३) व्यापार और पेशों पर कर, [विशेषतया मदरास, संयुक्त प्रान्त, बम्बई, मध्य प्रान्त और बंगाल में] (४) सड़कों और नदियों के पुलों पर कर, [विशेषतया मदरास, बम्बई और आसाम में], (५) सवारियों, गाड़ी, बग्गी, साईकिल, मोटर और नाव पर कर। (६) पानी, रोशनी, नालियों की सफ़ाई, हाट बाज़ार, क़साईख़ाने, पायख़ाने आदि पर कर। (७) हैसियत, जायदाद और जानवरों पर कर। (८) यात्रियों पर कर। यह कर एक निर्धारित दूरी से अधिक के फ़ासले से आने वालों पर लगता है और प्रायः रेलवे टिकट के मूल्य के साथ ही वसूल कर लिया जाता है। (९) म्युनिसिपल स्कूलों की फ़ीस। (१०) कांजी हौस की फ़ीस। (११) सरकारी सहायता या ऋण।

कुछ प्रान्तों में शिक्षा, अस्पतालों और पशु चिकित्सा के लिए म्युनिसिपैलिटियों को सरकारी सहायता मिलती है। जब किसी म्युनिसिपैलिटी को मैले पानी के बहाव के लिए नालियां बनानी

* कुछ म्युनिसिपलटियों ने अपने अपने सम्पूर्ण या कुछ क्षेत्र में प्रारम्भिक शिक्षा निश्शुल्क तथा अनिवार्य कर दी है। परन्तु विशेषतया धनाभाव के कारण अभी बहुत से स्थानों में ऐसा होना शेष है।

होती हैं अथवा, जल-प्रबन्ध के लिए शहर में नल आदि लगाने होते हैं तो वह ऋण लेती है। यदि उचित समझा जाय, तो इस खर्च का कुछ भार सरकार, कुछ शर्तों से अपने ऊपर ले लेती है।

संख्या और आय व्यय—ब्रिटिश भारत में, (जिसमें अब बर्मा नहीं है) सब म्युनिसिपैलिटियों और कारपोरेशनों की संख्या सन् १९३१—३२ ई० में ७२७ थी।* इनके कुल सदस्य १२,२१४ थे, जिनमें से ६८२ सरकारी थे, और शेष, मतदाताओं द्वारा निर्वाचित। इन संस्थाओं की उक्त वर्ष की कुल आय और ऋण ३४ करोड़ रुपया था। इसमें से २२ करोड़ रुपये से अधिक कलकत्ता, मदरास और बम्बई का ही भाग था; अकेले बम्बई की उक्त मद की रक़म १८ करोड़ से अधिक थी। इस प्रकार ७२४ म्युनिसिपैलिटियों की आय १२ करोड़ रुपये रह गयी; और यह कितनी कम है, यह लिखने की आवश्यकता नहीं। कई प्रान्तों में म्युनिसिपैलिटियां अपना बजट या नया कर सरकार (या कमिश्नरों) से मंजूर कराती हैं।

जन संख्या और कर की मात्रा-कुल म्युनिसिपैलिटियों और कारपोरेशनों सीमा में २ करोड़ १२ लाख से अधिक, अर्थात् ब्रिटिश भारत की कुल जन संख्या के लगभग ८ फ़ीसदी से कुछ कम आदमी रहते हैं। ६५३ म्युनिसिपैलिटियों में पचास पचास हज़ार से कम, और शेष ७४ में पचास पचास हज़ार या अधिक आदमी हैं। म्युनिसिपैलिटियों की सीमा में, प्रत्येक आदमी पर म्युनिसिपल कर की औसत भिन्न भिन्न है उदाहरणवत् बम्बई शहर में २३ रु०, बम्बई प्रान्त में (बम्बई शहर छोड़कर) ५ रु०

* इन पंक्तियों के लिखते समय सन् १९३१–३२ ई० के बाद के, सरकारी रिपोर्टों के अङ्क नहीं मिल सके।

५ आने, संयुक्त प्रान्त में ३ रु० ४ आने, बिहार-उड़ीसा में २ रु० १ आना, मध्य प्रान्त बरार में ३ रु० ।

नोटीफ़ाइड एरिया—ये अधिकतर पंजाब और संयुक्त प्रान्त में हैं। इन्हें म्युनिसिपैलटियों के थोड़े थोड़े से अधिकार होते हैं। ये उसी क्षेत्र में होते हैं, जहां बाज़ार या क़स्बा अवश्य हो, और जिसकी जन-संख्या दस हज़ार से अधिक न हो। म्युनिसिपैलटियों की अपेक्षा इनकी आय (एवं व्यय) कम रहती है। इनके अधिकांश सदस्य नामज़द होते हैं।

पोर्ट ट्रस्ट—कलकत्ता, बम्बई, मदरास, चटगांव और करांची आदि बन्दरगाहों का स्थानीय प्रबन्ध करने वाली संस्थाएं 'पोर्ट ट्रस्ट' कहाती हैं। ये घाटों पर मालगोदाम बनाती हैं, और व्यापार के सुभीते के अनुसार, नाव और जहाज़ की सुव्यवस्था करती हैं। समुद्र तट, नगर के निकटवर्ती समुद्र भाग, या नदी पर इनका पूरा अधिकार रहता है। इनकी पुलिस अलग रहती है। इनके सभासद कमिश्नर या ट्रस्टी कहाते हैं। सभासदों में चेम्बर–आफ़--कामर्स जैसी व्यापार संस्थाओं के प्रतिनिधि होते हैं। कलकत्ते और करांची में, म्यूनिसिपैलटियों के भी प्रतिनिधि इनमें लिये जाते हैं। कलकत्ते के अतिरिक्त सब पोर्ट ट्रस्टों में निर्वाचित सदस्यों की अपेक्षा नामज़द ही अधिक रहते हैं। अधिकांश सदस्य योरपियन होते हैं। म्युनिसिपैलिटियों की अपेक्षा पोर्ट ट्रस्टों में सरकारी हस्तक्षेप अधिक है। ये ही ऐसी स्वराज्य संस्थाएं हैं, जिनके सभासदों को कुछ भत्ता मिलता है। माल लदाई और उतराई, गोदाम के किराये, तथा जहाज़ों के कर से जो आमदनी होती है वही इनकी आय है। इन्हें आवश्यक कार्यों के लिये क़र्ज़ लेने का अधिकार है। प्रधान पोर्ट ट्रस्ट कलकत्ता,

बम्बई, करांची, मदरास और चटगांव में हैं। इनकी कुल आय ७ करोड़ ४१ लाख रुपये है। पोर्ट ट्रस्टों पर लगभग ५० करोड़ रुपये से अधिक ऋण चढ़ा हुआ है।

इम्प्रूवमैंट ट्रस्ट—बड़े बड़े शहरों की उन्नति या सुधार के लिये कभी कभी विशेष कार्य करने होते हैं, जैसे सड़कों को चौड़ी करना, घनी बस्तियों को हवादार बनाना, ग़रीबों और मज़दूरों के लिये मकानों की सुव्यवस्था करना, आदि। इन कामों को म्युनिसिपैलटियां नहीं कर सकतीं; उन्हें तो अपना रोज़मर्रा का काम ही बहुत है। अतः इनके वास्ते 'इम्प्रूवमैंट ट्रस्ट', बनाये जाते हैं। ये कलकत्ता, बम्बई, रंगून, इलाहबाद, लखनऊ और कानपुर आदि में हैं। इनके सदस्य सरकार, म्युनिसिपैलिटियों तथा व्यापारिक संस्थाओं द्वारा नामज़द किये जाते हैं। ये अपने अधिकार--गत भूमि आदि का किराया, तथा आवश्यकतानुसार ऋण या सहायता लेते हैं।

बोर्ड या यूनियन—देहातों में स्थानीय स्वराज्य का आरंभ, म्युनिसिपैलिटियों के स्थापित होने के बहुत दिनों बाद हुआ। यहाँ स्वास्थ, सफ़ाई, प्रारम्भिक शिक्षा तथा औषधादि का प्रबन्ध रखने के उद्देश से 'ग्राम्य बोर्ड' संगठित किये गये हैं। इनके तीन भेद हैं:—(१) 'लोकल' बोर्ड (एक बड़े गांव में, या छोटे गांवों के समूह में) (२) ताल्लुक़ा अथवा सब-डिविज़नल बोर्ड, और (३) ज़िला-बोर्ड* । भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में बोर्डों की व्यवस्था एकसी नहीं है। मदरास और मध्य प्रांत में इनकी स्थापना अधिक हुई है। मदरास में प्रत्येक बड़े गांव का, अथवा कई गांवों को मिलाकर उन सब का, एक 'यूनियन' बना दिया

* ज़िला-बोर्ड को मध्य प्रान्त में ज़िला-कौन्सिल कहते हैं।

गया है । बम्बई में बोर्डों के केवल दो ही भेद हैं:—ज़िला-बोर्ड और ताल्लुक़ बोर्ड । बंगाल, पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में ज़िला-बोर्ड स्थापित कर दिये गये हैं, और लोकल बोर्डों के बनाने का अधिकार प्रान्तिक सरकारों को दे दिया गया है। आसाम में ज़िला-बोर्ड नहीं हैं, वहां केवल सब-डिवीज़नल बोर्ड ही हैं।

ज़िला-बोर्ड का सभापति चुना हुआ रहे या नियुक्त किया जाया करे, यह प्रत्येक प्रान्त के ज़िला-बोर्डों के क़ानून से निश्चित किया हुआ होता है। संयुक्त प्रान्त में सभापति चुना हुआ एवं साधारणतया ग़ैर-सरकारी रहता है। भारतवर्ष में २०७ ज़िला-बोर्ड, और उनके अधीन ५८३ अधीन-ज़िला-बोर्ड हैं । इनके अतिरिक्त ४५५ कमेटियां हैं। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त को छोड़, ज़िला व लोकल बोर्डों में प्रायः चुने हुए सदस्यों की संख्या ही अधिक है। बोर्डों के सदस्यों की संख्या सन् १९३१-३२ ई० में २१,२४६ थी, इनमें से १५,८३५ निर्वाचित और शेष सरकारी कर्मचारी, तथा नामज़द थे। भिन्न भिन्न प्रान्तों में ज़िला-बोर्डों के निर्वाचकों की योग्यता सम्बन्धी नियमों में कुछ कुछ पृथक्ता है।

बोर्डों की आय के साधन—बोर्डों की अधिकतर आय उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया जाता है। इसे सरकारी वार्षिक लगान या मालगुज़ारी के साथ ही, प्रायः एक आना फ़ी रुपये के हिसाब से, वसूल करके इन बोर्डों को देदिया जाता है। इसके अतिरिक्त विशेष कार्यों के लिये सरकार कुछ रक़म, कुछ शर्तों से प्रदान करदेती है । आय के अन्य श्रोत तालाब, घाट, सड़क पर के महसूल, पशु-चिकित्सा और स्कूलों की फ़ीस कांजी हाउस की आमदनी, मेले या नुमायशों पर कर, तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमि कर, हैं। (आसाम प्रान्त को

छोड़कर) अधीन-ज़िला बोर्डों का कोई स्वतन्त्र आय श्रोत नहीं, उन्हें समय समय पर ज़िला बोर्डों से ही कुछ मिल जाता है।

बोर्डों का कर्तव्य पालन—बोर्डों को अपने ग्राम्य क्षेत्र में वैसे सब कार्य करने होते हैं, जैसे म्युनिसिपैलिटियों को नगरों में करने होते हैं, उनके अतिरिक्त इन्हें कृषि और पशुओं की उन्नति के लिये भी विविध कार्य करने चाहियें। इस प्रकार उनका कर्तव्य कितना महान है, यह स्पष्ट ही है। इसे देखते हुये यह कहना अनुचित न होगा कि बोर्ड प्रायः बहुत ही कम कार्य कर रहे हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि उनकी आय बहुत थोड़ी है; उदाहरणवत सन् १९३१-३२ ई० में ब्रिटिश भारत के बोर्डों की कुल आय लगभग १५ करोड़ ५२ लाख रुपया थी, * जब कि उनके क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या २३ करोड़ से अधिक थी।

पंचायतें---पञ्चायतों की स्थापना और उन्नति का कार्य, अपनी अपनी परिस्थिति के अनुसार करने के लिये, प्रान्तिक सरकारों पर छोड़ा गया है। भारत सरकार निम्न लिखित सिद्धांतों के अनुसार, पंचायतें स्थापित करने के पक्ष में है:—

१—साधारणतः एक पंचायत का क्षेत्र एक गांव हो, या एक से अधिक ऐसे गांवों का समूह ही, जिनका परस्पर में घनिष्ट सम्बन्ध हो।

२—प्रत्येक गांव में पंचायतों के कर्तव्य कार्य, चाहे वे प्रबन्ध

---

* पुस्तक छपते समय तक, हमें पीछे के अंक नहीं मिल सके, अतः विवश पुराने अंक देने पड़े।

विषयक हों या न्याय सम्बन्धी, एकसा होने की आवश्यकता नहीं है।

३—जहां पंचायतों को प्रबन्ध और न्याय, दोनों कार्यों के सम्बन्ध में अधिकार देना अभीष्ट हो, वहां दोनों काम एक ही संस्था को दिये जांय।

४—जहां कहीं शिक्षा या सफ़ाई के लिये कोई कमेटी आदि बनी हो, वहां पंचायतें स्थापित हो जाने पर वह पंचायत के अन्तर्गत करदी जाय।

५—साधारणतः लोगों को यह अधिकार रहे कि वे किसी मामले का फ़ैसला पंचायत से करावें या न करावें। पर, जो लोग पंचायत से अपने मामलों का फ़ैसला करावें, उनको उत्साहित करने के लिये कुछ उचित सुभीते कर दिये जांय; जैसे, यदि कोर्ट फ़ीस लगे तो बहुत कम, न्याय पद्धति में बारीकियों से बचा जाय, और डिगरी जल्दी जारी हो।

६—जहां अभीष्ट हो, वहां प्रान्तिक सरकार के नियंत्रण में पंचायतों को कर लगाने का अधिकार दिया जाय, परन्तु पंचायत पद्धति की उन्नति के साथ ही करों की भरमार न हो।

उपसंहार--स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं के विषय में यह स्पष्ट है कि अंगरेज़ों ने प्राचीन संस्थाओं की पुष्टि नहीं की; वरन् उनके स्थान पर नवीन पौदों का बीज बोया है, तथा उन पर कलेक्टर या कमिश्नर आदि का नियंत्रण-अंकुश विशेष रूप से रखा है। लार्ड रिपन के समय (सन् १८८४ ई०) से अब तक इन्हें स्थानीय पुलिस आदि सम्बन्धी कुछ नवीन अधिकार नहीं दिये गये। पंचायतें तो नामज़द सदस्यों की ही संस्थाएं हैं, प्रतिनिधियों की

नहीं। इनकी आय के साधन भी बहुत कम हैं। इसलिये ये बहुत कम कार्य कर पाती हैं, और इसी से ये यथेष्ठ फली-फूली नहीं। इनकी वृद्धि और विस्तार की आवश्यकता असंदिग्ध है।

बहुतसी म्युनिसिपैलिटियों और ज़िला-बोर्डों के सम्बन्ध में यह शिकायत है कि सड़कों की दशा ठीक नहीं है, प्राथमिक शिक्षा से यथेष्ठ लाभ नहीं होरहा है, या कन्याओं की शिक्षा में बहुत कम प्रगति होरही है। इन दोषों का एक कारण तो यह है कि इन संस्थाओं की आय के साधन कम हैं, जिसके विषय में पहले लिखा जाचुका है। इसके अतिरिक्त, बात यह भी है कि इनमें अनेक आदमी कोई ख़ास कार्यक्रम लेकर नहीं पहुंचते, व्यक्तिगत कीर्ति, या यश आदि के लिये जाते हैं और दलबन्दी करते हैं, जिससे सार्वजनिक हित की उपेक्षा होती है। मतदाताओं को चाहिये कि मित्रता या रिश्तेदारी आदि का लिहाज छोडकर, कार्य करने वाले सदस्य निर्वाचित किया करें, और समय समय पर इस बात की जांच करते रहें कि सदस्य अपने कर्तव्य का समुचित पालन करते हैं या नहीं।

हर्ष की बात है कि आज कल जनता में स्थानीय स्वराज्य का अधिक विचार होने लगा है। कुछ समय से कहीं कहीं म्युनिसिपैलिटियों के, तथा ज़िला-बोर्डों के सम्मेलन होने लगे हैं। आशा है कि सभी प्रान्तों में, और प्रति वर्ष, ऐसे सम्मेलन हुआ करेंगे। निस्सन्देह ये सम्मेलन ग़ैर-सरकारी ढङ्ग से, तथा इनका कार्य देशी भाषाओं द्वारा, होने पर ही विशेष लाभ होगा। ये संस्थाएं अपने क्षेत्र में व्याख्यानों या ट्रेक्टों द्वारा प्रचार करके लोकमत को शिक्षित करने का भी यत्न करें तो बहुत उत्तम हो।

सत्तरहवां परिच्छेद

भारतीय शासन नीति

इस पुस्तक में भारतवर्ष की वर्तमान शासन पद्धति का वर्णन किया गया है। इस परिच्छेद में यह बताया जायगा कि अंगरेज़ों के समय में, यहां शासन नीति में किस प्रकार, तथा क्या परिवर्तन हुए हैं।

अंगरेज़ों का समय—मोटे हिसाब से भारतीय इतिहास में अंगरेज़ों का समय पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है:—

१—सन् १६०० से १७५७ ई० तक; लगभग डेढ़ सौ वर्ष, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापार की वृद्धि।

२—सन् १७५७ से १८५७ ई० तक; सौ वर्ष, कम्पनी के राज्य का विस्तार। सन् १७७३ ई० से पार्लिमैंट प्रति बीसवें वर्ष कम्पनी के प्रबन्ध की जांच करती थी। शासन व्यवस्था में भारतवासियों का कुछ हाथ न था।

३—सन् १८५८ से १९१९ ई० तक, पार्लिमैंट का प्रबन्ध, इण्डिया कौंसिल, भारतीय व्यवस्थापक सभा, प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों की सृष्टि, और स्थानीय स्वराज्य सस्थाओं की वृद्धि। सन् १८८५ ई० से भारतीय राष्ट्र सभा (कांग्रेस) का शासन सुधार सम्बन्धी वैध परन्तु सङ्गठित आन्दोलन होने लगा। सन् १९०९ ई० में मार्ले-मिंटो सुधार हुए, जिनसे व्यवस्थापक संस्थाओं के कुछ

सदस्य निर्वाचित भी होने लगे, परन्तु अधिकांश निर्वाचन अप्रत्यक्ष होता था। इन सुधारों से राष्ट्रीयता-घातक ज़ातिगत प्रतिनिधित्व की स्थापना हुई।

४—सन् १६१६ ई० से सन् १६३५ ई० तक मांटेग्यू-चेम्स-फ़ोर्ड (मान्ट-फ़ोर्ड) सुधारों के अनुसार अंशतः उत्तरदायी शासन नीति का व्यवहार, और, जनता का स्वराज्य-प्राप्ति के लिये असहयोग/आदि आन्दोलन।

५—सन् १६३५ ई० से संघ शासन योजना, वर्मा का पृथक्-करण, प्रान्तों को 'स्वराज्य'।

भारतवर्ष के विगत वर्षों के राजनैतिक आन्दोलन, और शासन सम्बन्धी मुख्य मुख्य घटनाओं का परिचय हम 'भारतीय जागृति' में दे चुके हैं, उसे यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं। यहां हम केवल यही बताते हैं कि नवीन शासन विधान से पहले क्या स्थिति थी, और अब उसमें क्या अन्तर हुआ है।

मांट-फ़ोर्ड सुधार—ये सुधार सन् १६२० ई० से कार्य में परिणित किये गये। इनका उद्देश्य भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था। इनसे भारत मंत्री के विभाग में कुछ अंतर नहीं आया, एक हाई कमिश्नर नियत किया गया जो भारत सरकार की ओर से इङ्गलैंड में एजन्ट का कार्य करे। उत्तरदायी शासन केन्द्र में आरम्भ नहीं किया गया, भारत सरकार ब्रिटिश पार्लिमैंट के प्रति ही उत्तरदायी रही। भारतीय व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी, और उसमें एक की जगह दो सभाएँ की गयीं, भारतीय व्यवस्थापक सभा और राज्य परिषद। उत्तरदायी शासन केवल नौ प्रान्तों में, और वह भी कुछ अंश में आरम्भ किया गया। प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के सदस्यों की,

एवं मतदाताओं की संख्या बढ़ी। इन सुधारों के अनुसार होने वाले वर्तमान केन्द्रीय शासन का स्वरूप पहले विस्तार पूर्वक बताया जा चुका है, और, प्रान्तीय शासन के स्वरूप का भी उल्लेख किया जा चुका है, जो अब बदल गया है।

विदित हो कि इन सुधारों के बाद भी कई बार प्रान्तों में मंत्रियों का वेतन घटाने आदि से सरकारी नीति के प्रति असन्तोष प्रकट किया गया, और विविध प्रस्तावों पर सरकार की बार बार हार हुई। ऐसी स्थिति में उत्तरदायी शासन पद्धति वाले राज्य में शासकों को त्याग पत्र देना पड़ता है, परन्तु यहां वे स्थायी रूप से बने रहे, जिससे शासन का अनुत्तरदायी होना स्पष्ट सिद्ध होगया।

नवीन शासन विधान; प्रान्तीय स्वराज्य--सन् १९१९ ई० के विधान में ऐसी व्यवस्था की गयी थी कि दस वर्ष के भीतर एक कमीशन नियत हो, और वह इस बात की रिपोर्ट करे कि उस समय जो उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन प्रचलित हो, उसे कहां तक बढ़ाना, बदलना या घटाना ठीक है। तदनुसार 'साइमन कमीशन' सन् १९२७ ई० में नियुक्त हुआ। इसके सातों सदस्य अँगरेज़ थे, और वे भी अनुदार विचार वाले। इस कमीशन की रिपोर्ट सन् १९२९ ई० में प्रकाशित हुई। पश्चात् सन् १९३० से ३२ ई० तक लन्दन में तीन बार 'गोलमेज सभा' हुई, इनमें से केवल दूसरी में कांग्रेस ने महात्मा गांधी द्वारा भाग लिया। गोलमेज सभाओं तथा विविध कमेटियों के परिणाम स्वरूप शासन सम्बन्धी प्रस्ताव 'श्वेत पत्र' में प्रकाशित किये गये। और, यह श्वेत पत्र पार्लिमैंट की दोनों सभाओं की संयुक्त कमेटी के सामने विचारार्थ उपस्थित किया गया। इस पर पार्लिमैंट ने सन् १९३५ ई० के भारतीय शासन विधान की रचना की। पहले

इसका प्रान्तों सम्बन्धी भाग ही अमल में लाया जाने लगा है। विधान का उद्देश्य भी प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना बताया गया है।

अब प्रान्तीय शासन का क्या स्वरूप है, प्रान्तों का विभाजन किस प्रकार किया गया है, गवर्नरों के क्या विशेष अधिकार हैं, प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों का संगठन किस तरह है, कहां कहां दूसरी सभा का आयोजन किया गया है, मताधिकार बढ़ने पर भी उसके स्वरूप में क्या दोष है, इत्यादि बातों की आलोचना पहले विस्तार पूर्वक की जा चुकी हैं। इस विधान से प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की बात वैसी ही निस्सार प्रतीत होती है, जैसी पिछले सुधारों से उत्तरदायी शासन स्थापित करने की बात थी।

संघ शासन का सूत्रपात—नवीन शासन विधान से, भारतवर्ष में केन्द्रीय सरकार का स्वरूप संघ शासन रखा गया है, जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्य दोनों सम्मिलित हों। वास्तव में भाषा, धर्म, जाति, व्यापार और रक्त सम्बन्ध आदि की दृष्टि से भारतवर्ष अखंड है। ब्रिटिश सरकार ने इसके नक्शे में लाल और पीले दिखाये जाने वाले कृत्रिम भेद बनाये। क्रमशः उसे भी इस विभाजन की अव्यहारिकता प्रतीत होती गयी। सन् १९१७ ई० में मांट-फ़ोर्ड रिपोर्ट में इसका उल्लेख हुआ। साइमन कमीशन ने भी उक्त दोनों भागों से सम्बिधित प्रश्नों के विचार के लिये दोनों भागों के प्रतिनिधियों की सम्मिलित सभा के आयोजन का प्रस्ताव किया था। तथापि संघ सिद्धान्त को स्थूल रूप में उपस्थित करने, तथा व्यवहार में परिणत करने की दिशा पर प्रथम बार गोलमेज़ परिषद में ही विचार आरम्भ हुआ। इसके सम्बन्ध में व्यौरेवार बातों, का वर्णन अगले खण्ड में किया जायगा।

सन् १९३५ ई० के विधान का प्रयोग — विधान की आलोचना प्रसंगानुसार कीगयी है। इसका अच्छा या बुरा होना, एक सीमा तक उसमें प्रयोग पर भी निर्भर है। यदि गवर्नर चाहें तो वे इसकी बहुतसी खटकने वाली बातों का जनता को कटु अनुभव न होने दें; वे इसी विधान से देश को राजनैतिक उन्नति कर सकते हैं। कुछ बातें ऐसी हैं, जिनकी विधान में व्यवस्था नहीं है, किन्तु उनका क्रमशः रिवाज पड़ सकता है; उदाहरणवत् गवर्नर–जनरल या गवर्नर का केन्द्रीय या प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल की उस पार्टी के सदस्य को अपना प्रधान मन्त्री बनाना जिसका उक्त मण्डल में बहुमत हो, अन्य मन्त्रियों का प्रधान मंत्री के परामर्शानुसार चुना जाना, और मन्त्री मण्डल का व्यवस्थापक मंडल के सामने संयुक्त उत्तरदायित्व होना। सम्राट् द्वारा गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के नाम जारी होने वाले आदेश पत्रों में उन्हें इस बात की हिदायत भी रहती है।

कुछ बातें ऐसी भी हैं, जिनका, विधान में व्यवस्था होने पर भी, सम्भव है उपयोग बहुत कम हो। उदाहरणवत् गवर्नर-जनरल या गवर्नरों के विशेष अधिकार की बात है। हम समझते हैं कि कोई समझदार गवर्नर या गवर्नर-जनरल अपने विशेषाधिकारों के बल पर अधिक समय तक शासन करना पसन्द न करेगा। वह साधारण अधिकारों से ही काम चलायेगा। और, संघीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों का संगठन ही ऐसा किया गया है कि पृथक् स्वार्थ या साम्प्रदायिक हित आदि को लक्ष्य में रख कर आये हुए उनके सदस्य सरकार को, उसकी इच्छानुसार क़ानून बनवाने में सहायक हों। इस प्रकार शासकों को विशेषाधिकार के प्रयोग का अवसर कम आना सम्भव है।

विधान सम्बन्धी आदर्श—यह तो व्यवहार की बात रही;

अब सिद्धान्त की बात लें। प्रत्येक देश को अपना विधान स्वयं बनाने का अधिकार होना चाहिये, वह अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझावे। यदि ऐसा करने में उससे कुछ भूलें होंगी तो इससे उसका अनुभव बढ़ेगा। दूसरा देश उस पर कोई विधान ज़बरदस्ती न लादे। यह सर्वोत्तम स्थिति है। दूसरे दर्जे की बात यह है, कि शासक देश के नीतिज्ञ शासित देश के नेताओं के समुचित सहयोग से उसके लिये विधान बनायें। तीसरे, और सबसे निकृष्ट दर्जे की बात यह है कि शासक देश स्वयं ही शासितों के लिये, चाहे जैसा विधान बना डाले।

वर्तमान विधान के निर्माण सम्बन्धी इतिहास से यह स्पष्ट है, कि यह विधान प्रथम श्रेणी का तो क्या, दूसरी श्रेणी का भी नहीं है। यद्यपि गोलमेज सभा का आयोजन अवश्य किया गया, किन्तु उस में भारतवर्ष की राष्ट्र-सभा के मत को तो क्या, नर्म-दल के प्रतिनिधियों की मांग को भी स्वीकार नहीं किया गया। भारतवर्ष के शासन विधान की रचना के लिये भारतीयों को इंग-लैंड की राजधानी तक दौड़े जाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। उसके लिये उपयुक्त स्थान देहली, या भारतवर्ष का कोई अन्य केन्द्रीय स्थान होगा, और उस में भारतीय प्रतिनिधि यदि सर्वेसर्वा न हों तो उस में कमसे कम उनका वह पद तो होना ही चाहिये, जो वर्तमान विधान के बनते समय ब्रिटिश अधिकारियों का रहा है। यह है, राजनैतिक आदर्श! यह कब पूरा होगा? जितनी जल्दी परा हो, उतना ही भारतवर्ष का, इंगलैंड का, और हां, संसार का वास्तविक हित साधन होगा।

द्वितीय खण्ड

संघ शासन

पहला परिच्छेद

संघ निर्माण

[सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार भारतवर्ष में भावी शासन का लक्ष्य संघ शासन की स्थापना है, जिससे ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों का एक संघ बन कर दोनों का एक साथ शासन हो। इस खण्ड में संघ शासन के स्वरूप और इसके गुण दोष आदि का विचार किया जायगा। पहले यह जान लेना चाहिये कि संघ किसे कहते हैं, उसके क्या लक्षण होते हैं, और नवीन विधान में, भारतवर्ष में संघ निर्माण होने के लिये क्या शर्तें रखी गयी हैं।]

संघ—जब कुछ राज्य आत्म-रक्षा या आर्थिक अथवा राजनैतिक उन्नति के लिये अपनी सेना, मुद्रा या व्यापार आदि विभागों का प्रबन्ध सामुहिक रूप से करना चाहते हैं, और इस उद्देश्य से अपना संगठन करते हैं, तो यह कहा जाता है कि उन्होंने अपना संघ (फ़ेडरेशन) बनाया।

संघ शासन में, संघान्तरित राज्यों की सरकारें अपने अपने

राज्य सम्बन्धी धर्म शिक्षा आदि विषयों में स्वाधीन रहती हैं। ऐसी शासन पद्धति आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमरीका, और जर्मनी आदि में प्रचलित है। यह उन देशों के लिये अधिक उपयुक्त होती है, जिनका विस्तार बहुत हो, जहां के विविध भागों के निवासियों की आवश्यकताओं, भाषा, रहन सहन, और रीति रस्म आदि में बहुत भिन्नता हो; कारण, इस शासन पद्धति के अनुसार विविध राज्यों को अपने आन्तरिक शासन प्रबन्ध में यथेष्ट स्वतन्त्रता होती है। ये अपनी आय का कुछ भाग और अपने कुछ अधिकार संघ सरकार को देते हैं, जो इन राज्यों के पारस्परिक झगड़े मिटाने, तथा उनको सार्वदेशिक आपत्ति से रक्षा करने के अतिरिक्त, सार्वदेशिक हित सम्पादन करने का कार्य करती हैं।*

संघ योजना के कुछ लक्षण—संगठन के इच्छुक राज्यों में, सर्वत्र या हर समय एकता के भावों में समानता नहीं होती, कभी यह भावना बहुत प्रबल होती है, कभी कम। इस लिये विविध संघों के स्वरूप में देश काल के अनुसार अन्तर होता है; तथापि उनमें कुछ बातें प्रायः मिलती हैं, यथा (१) निर्धारित क्षेत्र में संघ का अधिकार सर्वोपरि और स्थायी होता है। (२)

* संघ शासन पद्धति के विपरीत, एकात्मक ('यूनीटरी') शासन पद्धति वाले राज्य में प्रायः समस्त शासन कार्य केन्द्र से होता है। यदि ऐसे राज्य में स्थानीय सरकार हों, तो वे केन्द्रीय सरकार के सर्वथा अधीन रहती है; उन्हें उसकी आज्ञाओं के अनुसार ही अपने अपने क्षेत्र का आन्तरिक शासन प्रबन्ध करना होता है। यह शासन पद्धति उन देशों के लिये अधिक उपयुक्त होती है, जो छोटे हों, तथा जिनके निवासियों की आवश्यकताएं, भाषा, रहन-सहन और रीति रस्म आदि प्रायः समान ही हों। ऐसी शासन पद्धति वाले राज्य इंगलैंड, और फ्रांस आदि हैं।

संघ को अपने कार्य के लिये जनता में आवश्यक साधन जुटाने का पूर्ण अधिकार रहता है। (३) विधान में इस बात का स्पष्ट उल्लेख रहता है कि किन किन विषयों में केन्द्रीय सरकार का, और किनमें संघान्तरित राज्यों का, अधिकार होगा, तथा 'शेष अधिकार' किसे होंगे। (४) संघ में सम्मिलित सब राज्यों की जनता संघ की प्रजा बन जाती है। उन्हें कितने ही विषयों में संघ सरकार के कायदे क़ानून मानने पड़ते हैं। (५) संघीय न्यायालय शासन विधान सम्बन्धी समय समय पर उपस्थित होने वाले, प्रश्नों पर अपना निर्णय देता है, जो संघ, तथा संघान्तरित राज्यों की सरकारों एवं व्यवस्थापक मण्डलों को मानना होता है। (६) जब तक संघ को उसे निर्म्माण करने वाले राज्य न तोड़ दें, किसी राज्य को उससे पृथक् होने का अधिकार नहीं होता।

भारतीय संघ निर्म्माण: समय और शर्तें--नवीन विधान में बताया गया है कि भारतवर्ष में संघ निर्म्माण की घोषणा सम्राट् द्वारा उस समय की जायगी, जब कि पार्लिमैंट प्रस्ताव करके उससे इस कार्य के लिये निवेदन करेगी; और, जब इतने देशी राज्य संघ शासन को स्वीकार कर लेंगे, जितने राज्य-परिषद (कौंसिल-आफ़-स्टेट) के कम से कम ५२ सदस्य चुनने के अधिकारी हों, और जिनकी संख्या, देशी राज्यों की कुल जन संख्या की कम से कम आधी हो।

विधान में मुख्य मुख्य देशी राज्यों की पृथक् पृथक् तथा शेष की इकट्ठी जन संख्या दी हुई है, कुल जन संख्या ७,८६,८१,६१२ मानी गयी है। इस प्रकार जब संघ में ३ करोड़ ६५ लाख के लगभग जन संख्या वाले राज्य सम्मिलित होना स्वीकार कर लेंगे, तब संघ का निर्माण होगा। परन्तु यद्यपि हैदराबाद, मैसूर आदि सात आठ बड़े बड़े राज्यों के मिलने से भी जन संख्या वाली शर्त

पूरी हो सकती है, पर इससे संघ निर्माण नहीं होगा; संघान्तरित होने वाले राज्य इतने होने चाहिये कि उनके नरेशों को राज्य परिषद में कुल मिलाकर ५२ सदस्य चुनने का अधिकार हो। किस किस राज्य से अथवा राज्य-समूह से राज्य परिषद में कितने और किस प्रकार सदस्य भेजे जांयगे, यह आगे 'संघीय व्यवस्थापक मण्डल' के संगठन में बताया जायगा। उपर्युक्त दोनों शर्तें पूरी होने के अतिरिक्त, संघ निर्माण होने के लिये यह भी आवश्यक है पार्लिमेंट इस सम्बन्ध में सम्राट् से निवेदन करे। सम्भवतः यह व्यवस्था इस लिये की गयी है कि पार्लिमेंट पहले यह देखले कि देशी राज्यों का संघ के प्रति क्या रुख़ है, और भारतवर्ष की राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति ऐसी है या नहीं कि संघ सफलता-पूर्वक कार्य कर सके।

देशी राज्यों का शर्तनामा--किसी देशी राज्य का, संघ में सम्मिलित होना उस समय समझा जायगा, जब सम्राट् उस राज्य के नरेश द्वारा किया हुआ शर्तनामा (इन्स्ट्रूमैंट-आफ़-एक्सेशन) स्वीकार कर लेगा। शर्तनामे में नरेश अपनी ओर से, तथा अपने वारिसों और उत्तराधिकारियों की ओर से यह सूचित करेगा कि वह संघ में सम्मिलित होना स्वीकार करता है, और, उसके राज्य के अन्दर ख़ास ख़ास बातों की व्यवस्था वह स्वयं न करके सम्राट्, गवर्नर-जनरल, संघीय व्यवस्थापक मंडल, संघ न्यायालय और संघीय रेलवे अथारिटी करे। नरेश इस शर्तनामे से अपने ऊपर यह उत्तरदायित्व भी लेगा कि शासन विधान की, शर्तनामे सम्बन्धी बातों का उसके राज्य में ठीक तरह पालन किया जायगा।

आवश्यकता होने पर, निर्धारित नियमों से, कोई नरेश

पूरक पत्र द्वारा उपर्युक्त शर्तनामे में परिवर्तन करके, सम्राट् या किसी संघीय संस्था द्वारा किये जाने वाले कार्यों का क्षेत्र बढ़ा सकता है। संघ-निर्म्माण के बाद, किसी नरेश के संघ में सम्मिलित होने का आवेदन पत्र सम्राट् को गवर्नर-जनरल द्वारा भेजा जायगा, और संघ का निर्म्माण होने से बीस वर्ष व्यतीत होजाने के बाद गवर्नर-जनरल सम्राट् को उपर्युक्त आवेदन पत्र उस समय तक नहीं भेजेगा, जब तक कि संघीय व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाएँ उससे यह निवेदन न करें कि उपर्युक्त राज्य को संघ में सम्मिलित किया जाय।

जब सम्राट् किसी राज्य का संघ में सम्मिलित होने का शर्तनामा स्वीकार कर लेगा तो उसकी प्रतिलिपि पार्लिमैंट में रखी जायगी, और सब न्यायालयों में वह शर्तनामा तथा उसकी सम्राट् द्वारा स्वीकृति अदालती तौर पर मान्य होगी।

दूसरा परिच्छेद

सम्राट् तथा भारत मन्त्री

संघ निर्म्माण सम्बन्धी आवश्यक बातें बतलायी जा चुकने पर, अब हम उन परिवर्तनों का विचार करेंगे, जो संघ निर्माण होने पर, भारतीय शासन पद्धति में होंगे। पहले सम्राट् तथा भारत-मन्त्री का विषय लेते हैं।

सम्राट्—नवीन विधान के अनुसार, सम्राट् के भारतीय शासन सम्बन्धी सब अधिकार नये सिरे से उसे, तथा उसके अधीन या उसके प्रतिनिधि व्यक्तियों या संस्थाओं को दिये गये हैं; इनमें से भारत मंत्री और सम्राट्-प्रतिनिधि (गवर्नर-जनरल तथा वायसराय के विषय में यहां लिखा जायगा।

भारत मंत्री—भारत मंत्री के वर्तमान अधिकारों और कार्य पद्धति के सम्बन्ध में, इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में लिखा जाचुका है। नवीन विधान के अनुसार जिन विषयों में गवर्नर-जनरल को अपनी मर्ज़ी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करना होगा (ये विषय आगे बताये जांयगे।), उनमें वह भारत मंत्री के नियंत्रण में होगा और उसके द्वारा समय समय पर दी हुई आज्ञाओं का पालन करेगा। पहले (पृष्ठ ७६–७ में कहा) गया है कि जिन विषयों में प्रान्तों के गवर्नरों को अपनी मर्ज़ी या व्यक्ति-गत निर्णय के अनुसार कार्य करना होता है, उन में वे गवर्नर-जनरल के नियंत्रण में हैं, और उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं, परन्तु गवर्नर-जनरल का यह नियंत्रण अपनी मर्ज़ी से होता है, अतः इस पर भी भारत मंत्री का नियंत्रण है। इसका अर्थ यह है कि प्रान्तीय शासन सम्बन्धी इस कार्य पर भी भारत मंत्री का ही नियंत्रण है, हां, वह गवर्नर-जनरल के द्वारा है। इस प्रकार, गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को अपने विशेषाधिकारों से जो स्वतंत्रता प्राप्त होगी वह संघीय और प्रांतीय व्यवस्थापक मंडलों से तथा भारतीय मंत्रियों से ही होगी; अन्यथा वह भारत मंत्री के तो अधीन होंगे ही, जो पार्लियामैंट और ब्रिटिश मंत्री मंडल का सदस्य होने के कारण उनके प्रति उत्तरदायी होगा। भारत मंत्री गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के नाम जारी किये जाने वाले आदेश पत्रों ('इन्स्ट्रूमैंट्स-आफ़-इन्स्ट्रक्टशन्स') का मसविदा पार्लिमैंट

के सामने उपस्थित करेगा, और पार्लिमेंट की दोनों सभाएं सम्राट् से उन आदेश पत्रों को जारी करने का आवेदन करेंगी। (गवर्नर-जनरल या गवर्नर के, आदेश पत्र के विरुद्ध किये हुए कार्य के औचित्य का प्रश्न नहीं उठाया जा सकेगा)।

संघ निर्माण होने के बाद, भारत मन्त्री की सभा अर्थात् इण्डिया कौंसिल तोड़ दी जायगी; हां, उसके कुछ परामर्शदाता रहा करेंगे। भारत मन्त्री और उसकी कौंसिल के नाम से लन्दन के बैंक-आफ़ इंगलैंड में जो खाता हैं, वह पीछे भारत मन्त्री के नाम से रहेगा। भारत मन्त्री का वेतन, उसके विभाग का ख़र्च कर्मचारियों का वेतन और भत्ता ब्रिटिश सरकार के कोष से दिया जायगा, जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश मन्त्रियों सम्बन्धी ख़र्च दिया जाता है। भारत मन्त्री और गवर्नर-जनरल के पारस्परिक समझौते के अनुसार भारत मन्त्री का विभाग, जो कार्य भारतीय संघ सम्बन्धी करेगा, उसके उपलक्ष्य में संघ की ओर से निर्धारित रक़म ब्रिटिश कोष में दी जाया करेगी। अभी तक जो मुक़द्दमे भारत मन्त्री के नाम या उसकी तरफ़ से चलते थे, वे संघ स्थापना के बाद संघ सरकार या प्रान्तीय सरकार की ओर से या उनके विरुद्ध चलाये जाया करेंगे।

उसके परामर्शदाता—अपने परामर्शदाताओं की नियुक्ति, भारती मन्त्री स्वयं करेगा। उनकी संख्या तीन से कम, और छः से अधिक न होगी। उनका कार्य भारत मन्त्री को आवश्यकतानुसार परामर्श देना होगा। कम से कम आधे परामर्शदाता वे व्यक्ति होंगे जो भारतवर्ष में, भारत सरकार की नौकरी कम से कम दस वर्ष तक कर चुके हों, और जिन्हें इस पद पर नियुक्त होने के समय वह नौकरी छोड़े दो वष से अधिक न हुए हों। प्रत्येक परामर्शदाता पांच वर्ष के लिये नियुक्त होगा, और उसकी

पुनः नियुक्ति न होगी। कोई परामर्शदाता पार्लिमैंट की किसी सभा में बैठने या उसमें मत देने का अधिकारी नहीं होगा। प्रत्येक परामर्शदाता का वर्षिक वेतन १३५० पौंड होगा, भारतीय सदस्यों को ६०० पौंड वार्षिक भत्ता और मिलेगा। यह वेतन तथा भत्ता ब्रिटिश कोष से दिया जायगा। साधारणतया यह भारतमंत्री की इच्छा पर निर्भर होगा कि वह अपने परामर्शदाताओं से किसी विषय पर परामर्श ले या न ले, एवं उनसे सामुहिक रूप से परामर्श ले या उनमें से एक या अधिक से ले, तथा वह उनके परामर्श के अनुसार कार्य करे या न करे।

हाई कमिश्नर--हाई कमिश्नर के विषय में पहले (पृष्ठ २४ में) लिखा जा चुका है। यह पदाधिकारी संघ निर्म्माण के बाद भी रहेगा। उस समय यह संघ के सम्बन्ध में भी आवश्वक कार्य सम्पादन करेगा। गवर्नर-जनरल की स्वीकृति से वह किसी प्रांत, संघान्तरित राज्य या वर्मा की ओर से भी उक्त प्रकार के कार्य कर सकेगा। इसकी, तथा इसके विभाग के पदाधिकारियों की नियुक्ति, छुट्टी और पेन्शन आदि के नियम भारत मंत्री द्वारा बनाये जाया करेंगे।

सम्राट्-प्रतिनिधि--संघ निर्माण होने के बाद, यहां ब्रिटिश भारत के शासन सम्बन्धी विषयों में सम्राट् का प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल होगा, उसकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा की जाया करेगी। देशी राज्यों के शासन प्रबन्ध सम्बन्धी विषयों में सम्राट् का प्रतिनिधि वाइसराय होगा, उसकी नियुक्ति भी सम्राट् द्वारा ही हुआ करेगी। इस प्रकार उक्त दो पदों पर पृथक् पृथक् व्यक्ति रह सकते हैं, परन्तु विधान में यह व्यवस्था की हुई है कि सम्राट् को दोनों पद पर एक ही व्यक्ति की नियुक्ति का भी अधिकार है।

सम्भव है कि साधारणतया उक्त दोनों पदों पर एक ही व्यक्ति रहे, परन्तु विधान की यह पृथक् व्यवस्था भारतवर्ष के एकीकरण में एक नवीन और स्थायी बाधा है।

देशी नरेशों के सम्राट् से सीधे सम्बन्ध की बात-- पहले 'देशी राज्य' शीर्षक परिच्छेद में यह कहा जाचुका है कि देशी नरेश पूर्व संधियों के आधार पर ब्रिटिश सम्राट् से सीधा सम्बन्ध रखने के लिये परम उत्सुक हैं। वे गवर्नर-जनरल से इसी लिये सम्बन्ध नहीं रखना चाहते कि वह संघ सरकार का प्रमुख पदाधिकारी होगा। वे तो वायसराय से—सम्राट के पृथक् प्रतिनिधि से सम्बन्धित रहना चाहते हैं। परन्तु इसमें कुछ तत्व नहीं है।

[वास्तविक संधियां ईस्ट इण्डिया कम्पनी से हुई थीं, जिसे उस समय भारतवर्ष में शासन अधिकार था। बादशाह के दिये हुए जिन अधिकारों को पहले कम्पनी काम में लाती थी, उन्हें सन् १८५८ ई० से भारत सरकार और भारत मंत्री काम में लाते हैं। नरेशों पर जैसा अधिकार कम्पनी के नियत किये हुए गवर्नर रखते थे, वैसा ही अब भारत सरकार और उसके प्रतिनिधि रखते हैं। खिराज की रकम भारत सरकार के बजट में शामिल होती है। नरेशों को गद्दी पर बैठाना, या गद्दी से उतारना, जांच कमीशन नियत करना, विविध संधियों का पालन करना या उनका अर्थ लगाना सब काम भारत सरकार, भारत मंत्री के निरीक्षण में, करती है। यह कल्पनातीत है कि कोई नरेश भारत सरकार की उपेक्षा करके, सीधा सम्राट् या पार्लिमेंट से पत्र व्यवहार आदि करे, यद्यपि भारत सरकार प्रथा और रिवाजों के आधार पर देशी राज्यों के कितने ही ऐसे अधिकार ले लेती है, जो उसे संधि-पत्रों से प्राप्त नहीं होते।

फिर, प्रचलित राज्य व्यवस्था के अनुसार, सम्राट् व्यक्तिगत रूप में

कुछ नहीं है। वह नाम-मात्र का बादशाह है। शासन कार्यों के प्रसंग में उसका अर्थ है, पार्लिमैंट-युक्त बादशाह। वह व्यवहार में पार्लिमैंट के अधीन है। अतः नरेशों के, उसके अधीन होने का अर्थ है, पार्लिमैंट के अधीन होना। और, क्यों कि भारतवर्ष के शासन के लिये, पार्लिमैंट की नियुक्त सत्ता का प्रधान अंग भारत सरकार है, इस लिये पार्लिमैंट के अधीन होना, अप्रत्यत्त रूप से भारत सरकार के ही अधीन होना है।]

देशी राज्यों के सम्राट से सीधा सम्बन्ध रखने से उनका और ब्रिटिश भारत का विरोध बढ़ता है। अतः विधान में उसकी व्यवस्था भले ही हो, भारतीय एकता और स्वाधीनता का कोई प्रेमी उसका समर्थन नहीं कर सकता।

तीसरा परिच्छेद

संघ सरकार

संघ का निर्माण होजाने पर, भारतवर्ष की केन्द्रीय सरकार का नाम संघ सरकार होगा और उसका सबसे महत्व-पूर्ण अङ्ग होगा, गवर्नर-जनरल; अतः अब पहले उसके विषय में विचार करते हैं।

गवर्नर-जनरल और संघ--संघ का प्रबन्धाधिकार सम्राट् की ओर से गवर्नर-जनरल को होगा। उसका वार्षिक वेतन

२,५०,८०० रु० होगा। इसके अतिरिक्त, उसे भत्ता आदि भी काफ़ी मिलेगा। शासन विधान में इस विषय के नियम निर्धारित हैं, और इस बात की समुचित व्यवस्था कीगयी है कि वह अपने पद का कार्य सुविधा और मान मर्यादा पूर्वक सम्पादन करसके।

संघ के प्रबन्धाधिकार में निम्न लिखित बातें भी सम्मिलित हैं:—१—वे विषय जिनके सम्बन्ध संघीय व्यवस्थापक मण्डल नियम बना सकता है। २—सम्राट् की ओर से ब्रिटिश भारतवर्ष में जल सेना, स्थल सेना, या हवाई सेना संगठित करना, और सम्राट् की भारतीय सेना का प्रबन्ध करना। ३—जंगली जातियों सम्बन्धी जो अधिकार या स्वत्व आदि सम्राट को प्राप्त हैं, उनका उपयोग करना।

संघ सरकार को, संघ में सम्मिलित प्रत्येक देशी राज्य के उन विषयों के प्रबन्ध करने का अधिकार होगा, जिनके सम्बन्ध में, उक्त राज्य के शर्तनामे के अनुसार, संघीय व्यवस्थापक मंडल को क़ानून बनाने का अधिकार होगा। (उक्त राज्य अपने अन्य विषयों का प्रबन्ध स्वयं करेंगे।)

मंत्री मण्डल—संघ निर्माण होने के बाद, भारतवर्ष के शासन से सम्बन्धित सारा काम कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के नाम से न होकर गवर्नर-जनरल के नाम से हुआ करेगा। गवर्नर-जनरल का एक मन्त्री मण्डल (कौंसिल-आफ़-मिनिस्टर्स) होगा। यह मण्डल उसे, उसके विशेषाधिकार के विषयों को छोड़ कर, अन्य विषयों में सहायता या परामर्श देगा। इसमें अधिक से अधिक दस मन्त्री हुआ करेंगे। गवर्नर-जनरल अपनी मर्ज़ी से इसका सभापति होगा। किसी विषय में गवर्नर-जनरल

अपनी मर्ज़ी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता है, या नहीं, इसके सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल स्वयं जो फ़ैसला करदे, वही अन्तिम माना जायगा। गवर्नर-जनरल के किये हुए किसी कार्य के औचित्य का प्रश्न इस आधार पर नहीं उठाया जायगा कि उसे यह कार्य अपनी मर्ज़ी से करना चाहिये था या नहीं, या उसे इसमें अपने व्यक्तिगत निर्णय का उपयोग करना चाहिये था या नहीं।

गवर्नर-जनरल के मन्त्री उसी के द्वारा चुने जांयगे, और जब तक वह चाहेगा तब तक वे अपने पद पर बने रहेंगे। अगर कोई मन्त्री लगातार छः मास के लिये संघीय व्यवस्थापक मण्डल की किसी सभा का सदस्य न हो तो वह इस समय के पूरा होने पर मन्त्री न रह सकेगा। मन्त्रियों का वेतन संघीय व्यवस्थापक मण्डल समय समय पर क़ानून बनाकर निर्धारित करेगा, और जब तक उक्त मंडल निर्धारित न करे, गवर्नर-जनरल उसका निश्चय करेगा। किसी मन्त्री का वेतन उसके कार्यकाल में बदला न जायगा।

यह प्रश्न किसी न्यायालय में नहीं पूछा जा सकेगा कि मन्त्रियों ने गवर्नर-जनरल को कुछ परामर्श दिया या नहीं, और दिया तो क्या दिया।

[वर्तमान व्यवस्था के अनुसार भारतवर्ष के सिविल तथा सैनिक प्रबन्ध के निरीक्षण ,संचालन और नियंत्रण का अधिकार कौन्सिल-युक्त गवर्नर-जनरल (भारत सरकार) को है, (देखो पृष्ठ ३२)। परन्तु संघ शासन में यह अधिकार केवल गवर्नर-जनरल को होगा ! 'कौन्सिल-युक्त' शब्द हटाने से महत्वपूर्ण अन्तर होगया है। गवर्नर-जनरल की कौन्सिल के कई सदस्य भारतीय होते हैं, उनके सामने अनेक रहस्य-पूर्ण बातें

आती हैं। उन पर उनकी सलाह ली जाती है। भविष्य के लिये यह झंझट हटा कर 'सुधार' किया गया है। यद्यपि संघ शासन में मंत्री रहेंगे, परन्तु उन्हें उत्तरदायित्व से मुक्त रखा गया है। मंत्री मंडल गवर्नर-जनरल का मुखापेक्षी रहेगा।]

सुरक्षित विषय—(१) देश रक्षा अर्थात् सेना, (२) धर्म, (३) पर-राष्ट्र (भारतीय संघ और सम्राट् के अन्य राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध को छोड़कर) तथा (४) जंगली जातियों के विषय के प्रबन्ध में गवर्नर-जनरल अपनी मर्जी के अनुसार कार्य करेगा। इन चार विषयों को उसके सुरक्षित विषय कह सकते हैं। इनमें मन्त्रियों का परामर्श नहीं लिया जायगा। इनके सम्बन्ध में सहायता देने के लिये गवर्नर-जनरल अधिक से अधिक तीन सलाहकार (कौंसिलर) नियत कर सकता है। इन सलाहकारों की वेतन, और नौकरी की शर्तें सपरिषद् सम्राट् निर्धारित करेगा।

[(१) सैनिक विभाग केन्द्रीय सरकार के विभागों में मुख्य है; (देखो, पृष्ठ १४३)। इसके प्रबन्ध के लिये सम्राट् एक जंगी लाट (कमांडरन चीफ़) नियुक्त करेगा, और भारत-मंत्री अपने परामर्शदाताओं की सहमति से विविध नियम बनायेगा। इसे भारतीय मंत्री के सुपुर्द नहीं किया गया। (२) धार्मिक विभाग द्वारा बड़े बड़े ईसाई पादरियों को सहायता दी जाती है। जब कि भारतवर्ष में अनेक धर्म प्रचलित हैं, एक विशेष धर्म सम्बन्धी विभाग का कुछ औचित्य प्रतीत नहीं होता। (३) वैदेशिक विभाग गवर्नर-जनरल के अधीन होने से वही विदेशों से व्यापारिक संधियां आदि करेगा, इन संधियों में वह तो इंगलैंड के हितों की रक्षा करेगा ही, भारतवर्ष के हितों का यथेष्ट ध्यान रखा जाय और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भारतीयों के साथ जो दुर्व्यवहार होता है, उसका विरोध किया जाय, इस सम्बन्ध में भारतीय मंत्री मंडल कुछ न कर सकेगा। (४) जंगली जातियों के सम्बन्ध में प्रायः वही वक्तव्य है

जो अंशतः पृथक क्षेत्रों के सम्बन्ध में कहा गया है (देखो पृष्ठ ७४–५)।]

गवर्नर-जनरल का विशेष उत्तरदायित्व— गवर्नर-जनरल निम्न लिखित विषयों के लिये विशेष रूप से उत्तरदायी होगा। यह उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार के प्रति होगा, (भारतीय जनता के प्रति नहीं)—जब कभी उसे अपने इस उत्तरदायित्व पर आघात पहुंचता हुआ प्रतीत होगा, तो वह (मंत्रियों की सलाह के विरुद्ध भी), अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकेगा।

१—भारतवर्ष या इसके किसी भाग के शान्ति भङ्ग का निवारण। शान्ति बनायी रखने के लिये गवर्नर-जनरल को जो जो उपाय उचित प्रतीत होंगे, उन्हें वह काम में लासकेगा।

[गवर्नर के इस विषय सम्बन्धी विशेषाधिकार के प्रसंग में जो बातें कही गयी हैं, वे यहां भी विचारणीय हैं, (देखो, पृष्ठ ७२)]

२—संघ सरकार की आर्थिक स्थिरता और साख को सुरक्षित रखना। गवर्नर-जनरल को, इस उत्तरदायित्व से सम्बन्धित कार्य करने में सहायता देने के लिये एक आर्थिक परामर्शदाता ('फ़ाइनेन्शल ऐडवाइजर') होगा। वह संघ सरकार को भी आवश्यकतानुसार आर्थिक विषयों में परामर्श देगा। वह जब तक गवर्नर-जनरल चाहेगा, अपने पद पर बना रहेगा। उसकी, वेतन, भत्ता, उसके विभाग के पदाधिकारियों की संख्या, तथा उन की नौकरी की शर्तें गवर्नर-जनरल निर्धारित करेगा। इन विषयों, तथा आर्थिक परामर्शदाता की नियुक्ति और बर्ख़ास्तगी का अधिकार गवर्नर-जनरल को रहेगा, और वह इन अधिकारों का उपयोग अपनी मर्ज़ी से करेगा। अगर वह आर्थिक परामर्शदाता

को नियुक्त करने का निश्चय करे, तो वह प्रथम बार की बात को छोड़कर, इस पद पर नियुक्त किये जाने वाले व्यक्ति को चुनने से पूर्व, अपने मंत्रियों का परामर्श लेगा।

[इससे स्पष्ट है कि आर्थिक विषयों में गवर्नर-जनरल को अपरिमित अधिकार हैं। मंत्रियों में से किसी को अर्थ विभाग सौंपने की व्यवस्था विधान में नहीं की गयी है। यदि गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार किसी मंत्री उस विभाग का कार्य सौंपे भी तो आर्थिक परामर्शदाता सम्बन्धी उपर्युक्त व्यवस्था रहने से उस मंत्री के अधिकार नहीं के बराबर रह जांयगे।

३—ऐसे कार्य को (वह शासन सम्बन्धी हो, या व्यवस्था सम्बन्धो) रोकना, जिससे इङ्गलैंड या बर्मा से भारत में आने वाले माल के सम्बन्ध में भेद-नीति का व्यवहार हो।

[बर्मा को उसकी, तथा भारत की इच्छा के विरुद्ध भारत से पृथक् कर दिया गया है। अब सम्भवतः वहां अँगरेज व्यापारियों का कारोबार निर्बाध चमकेगा। उसकी, तथा इंगलैंड के व्यापार की सुरक्षा के लिये, गवर्नर-जनरल को विशेष उत्तरदायित्व देकर भारतीय मंत्रियों को यहां के व्यापार की दशा सुधारने और भारतीय व्यापारियों के हितों की यथेष्ट रक्षा करने में असमर्थ कर दिया गया है।]

४—अल्प-संख्यकों के उचित हितों की रक्षा। *

५—वर्तमान तथा भूत-पूर्व सरकारी कर्मचारियों और उनके आश्रितों के, नवीन विधान-अन्तर्गत अधिकारों और उचित हितों की रक्षा।*

६—संघीय क़ानूनों के सम्बन्ध में, इस बात की व्यवस्था

* अगले पृष्ठ के नीचे नोट देखिये।

करना कि व्यापारिक और जातिगत विषयों के भेद भाव या पक्षपात मूलक क़ानून न बनें। *

७—देशी राज्यों के अधिकारों, तथा उनके नरेशों के अधिकारों और मान मर्यादा की रक्षा। *

८—इस बात का प्रबन्ध करना कि जो कार्य गवर्नर-जनरल को अपनी मर्ज़ी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार करने हैं, उनके सम्पादन में किसी अन्य विषय सम्बन्धी कार्रवाई से कुछ बाधा उपस्थित न हो।*

कार्य संचालन सम्बन्धी नियम-निर्माण—संघ शासन में गवर्नर-जनरल को इस विषय के वैसे ही अधिकार हैं, जैसे प्रान्तीय शासन में गवर्नरों को (देखो, पृष्ठ ७६--८०)।

एडवोकेट जनरल—गवर्नर-जनरल संघ के लिये एक ऐसे व्यक्ति को ऐडवोकेट जनरल के पद पर नियुक्ति किया करेगा, जिसमें संघीय न्यायालय के जज होने की योग्यता हो। यह संघ सरकार को आवश्यक क़ानूनी विषयों पर परामर्श देगा, और ब्रिटिश भारत के समस्त न्यायालयों में, एवं जब कोई विषय संघ के हित का हो, तो संघ में सम्मिलित देशी राज्यों की सब अदालतों में पैरवी कर सकेगा। यह पदाधिकारी उस समय तक अपने पद पर आरूढ़ रहेगा, जब तक कि गवर्नर--जनरल चाहे, और इसे उतना वेतनादि मिलेगा जितना गवर्नर-जनरल निश्चय करे।

---

* गवर्नर के इन विषयों के विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है, वह यहां भी विचारणीय है, (देखो, पृष्ठ ७३–७४)।

चौथा परिच्छेद

संघीय व्यवस्थापक मण्डल

(१)

संगठन

संघीय व्यवस्थापक मंडल; दो सभाएं—संघ निर्माण होने पर भारतवर्ष के केन्द्रीय क़ानून बनाने वाली संस्था का नाम संघीय व्यवस्थापक मण्डल (फीडरल लेजिस्लेचर) होगा। उसमें सम्राट्-प्रतिनिधि (गवर्नर-जनरल) के अतिरिक्त दो सभाएं होगी, राज्य परिषद (कौंसिल-आफ़-स्टेट), और संघीय व्यवस्थापक सभा (फ़ीडरल ऐसेम्बली)।

सदस्यों की योग्यता आदि; विशेषाधिकार तथा वेतन—इन सभाओं में सदस्यता की योग्यता, अयोग्यता और अयोग्य व्यक्तियों के बैठने और मत देने के सम्बन्ध में तथा उनके विशेषाधिकार और वेतन के सम्बन्ध में वही नियम हैं, जो प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों के सम्बन्ध में पहले बताये जा चुके हैं; (देखो, पृष्ठ ८५—८)।

राज्य परिषद का संगठन—राज्य परिषद में अधिक से अधिक २६० सदस्य होंगे:—१५६ ब्रिटिश भारत के, और अधिक अधिक १०४ देशी राज्यों के। यह एक स्थायी संस्था होगी, इसके एक-तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष चुने जाया करेंगे। ब्रिटिश भारत के सदस्यों में से १५० जनता द्वारा निर्वाचित (और ६ नामज़द) होंगे। इनका ब्यौरा आगे नक्शे में दिया गया है। निर्वाचन प्रत्यक्ष रीति से होगा परन्तु निम्न लिखित दशाओं में निर्वाचन न होगा, अथवा अप्रत्यक्ष रीति का व्यवहार होगा:—

राज्य परिषद्

ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि

प्रान्त या जाति	साधारण	हरिजन	सिक्ख	मुसलमान	स्त्रियां	अन्य	योग
मदरास	१४	१	...	४	१	...	२०
बम्बई	१०	१	...	४	१	...	१६
बंगाल	८	१	...	१०	१	...	२०
संयुक्त प्रान्त	११	१	...	७	१	...	२०
पंजाब	३	...	४	८	१	...	१६
बिहार	१०	१	...	४	१	...	१६
मध्यप्रान्त बरार	६	१	...	१	...	...	८
आसाम	३	...	...	२	...	...	५
पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त	१	...	...	४	...	...	५
उड़ीसा	४	...	...	१	...	...	५
सिंध	२	...	...	३	...	...	५
ब्रिटिश बिलोचिस्तान	...	...	...	१	...	...	१
देहली	१	...	...	...	...	...	१
अजमेर मेरवाड़ा	१	...	...	...	...	...	१
कुर्ग	१	...	...	...	...	...	१
ऐंग्लो इण्डियन	...	...	...	...	...	१	१
योरपियन	...	...	...	...	...	७	७
भारतीय ईसाई	...	...	...	...	...	२	२
योग	७५	६	४	४९	६	१०	१५०

(१) ब्रिटिश बिलोचिस्तान की ओर से होने वाला सदस्य वहां की सरकार द्वारा ही नामज़द किया जायगा।

(२) जिस प्रान्त में हरिजन सदस्य लिये जाने की व्यवस्था है, उसके सदस्य उस प्रान्त की व्ययवस्थापक सभा या सभाओं के हरिजन सदस्यों द्वारा चुने जांयगे।

(३) जिस प्रांत में स्त्री-सदस्य लिये जाने की व्यवस्था है, उसके स्त्री-सदस्य उस प्रांत की व्यवस्थापक सभा या सभाओं के सदस्यों (पुरुषों एवं स्त्रियों) द्वारा चुने जांयगे।

(४) ऐंग्लो इन्डयन, योरपियन और भारतीय ईसाई सदस्य इन्हीं जातियों के उन व्यक्तियों द्वारा चुने जांयगे जो गवर्नरों के प्रान्तों की व्यवस्थापक सभा और व्यवस्थापक परिषद के सदस्य होंगे।

(५) जब योरपियन निर्वाचक संघ से एक से अधिक प्रतिनिधि लिया जाने वाला होगा तो एक ही प्रान्त में रहने वाले व्यक्तियों में से दो व्यक्ति नहीं लिये जांयगे।

राज्य परिषद के प्रथम संगठन के समय तो उसके प्रान्तों तथा जातियों की ओर से लिये जाने वाले सब ही सदस्यों का चुनाव होगा, परन्तु इस लिये कि एक-तिहाई सदस्य तीन तीन वर्ष में अवकाश ग्रहण करते जांय, उपर्युक्त सब सदस्यों में से एक-तिहाई तीन वर्ष के लिये, एक तिहाई छः वर्ष के लिये, और शेष केवल एक–तिहाई नौ वर्ष के लिये चुने जांयगे। इसके सम्बन्ध में निर्धारित व्यवस्था की गयी है, जो आगे नक्शे में सूचित की जाती है। उसके पश्चात् तीन तीन वर्ष में जो स्थान ख़ाली होंगे, उनकी पूर्ति के लिये सदस्यों का चुनाव नौ नौ वर्ष के लिये होगा।

त्रिवार्षिक चुनाव के लिये जगहों का बटवारा

प्रान्त	प्रथम बार तीन ही वर्ष के लिये भरी जाने वाली जगहें					प्रथम बार छः ही वर्ष के लिये भरी जाने वाली जगहें					प्रथम बार नौ वर्ष के लिये भरी जाने वाली जगहें				
	साधारण	हरिजन	सिक्ख	मुसलमान	स्त्रियां	साधारण	हरिजन	सिक्ख	मुसलमान	स्त्रियां	साधारण	हरिजन	सिक्ख	मुसलमान	स्त्रियां
मद्रास	...	...	...	...	...	७	...	...	२	१	७	१	...	२	...
बम्बई	५	...	...	२	१	...	...	...	...	...	५	१	...	२	...
बङ्गाल	४	१	...	५	...	...	...	...	...	...	४	...	...	५	१
संयुक्त प्रान्त	५	१	...	३	१	६	...	...	४	...	...	...	...	...	...
पञ्जाब	२	...	२	४	...	१	...	२	४	१	...	...	...	...	...

प्रान्त	सा०	ह०	सि०	मु०	स्त्री	सा०	ह०	सि०	मु०	स्त्री	सा०	ह०	सि०	मु०	स्त्री
बिहार	...	...	...	...	...	५	१	...	२	...	५	...	...	२	१
मध्यप्रान्त-बरार	...	...	...	...	...	६	१	...	१	...	...	...	...	...	...
आसाम	...	...	...	...	...	३	...	...	२	...	...	...	...	...	...
पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	१	...	...	४	...
उड़ीसा	४	...	...	१	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...
सिन्ध	२	...	...	३	..	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...
ब्रिटिश बिलोचिस्तान	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	१	...
देहली	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	१	...	...	...	...
अजमेर-मेरवाड़ा	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	१	...	...	...	...
कुर्ग	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	१	...	...	...	...

राज्य परिषद् में छः सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द रहेंगे। इसके प्रथम संगठन के समय उक्त सदस्यों में से दो तीन वर्ष के लिये, दो छः वर्ष के लिये, और शेष दो नौ वर्ष के लिये चुने जांयगे।

उपर्युक्त संगठन की आलोचना में वे बातें विचारणीय हैं, जो प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद के प्रसंग में (पृष्ठ ६६–१००) में दी गयी हैं। राज्य परिषद के देशी राज्यों की ओर से लिये जाने वाले सदस्यों का हिसाब आगे संघीय व्यवस्थापक सभा के उक्त सदस्यों के साथ लिखा जायगा।

संघीय व्यवस्थापक सभा—इस सभा में अधिक से अधिक ३७५ सदस्य होंगे, जिनमें २५० ब्रिटिश भारत के, और अधिक से अधिक १२५ देशी राज्यों के होंगे। ब्रिटिश भारत के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष होगा, अर्थात् सीधे जनता द्वारा न होगा* वरन् प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं (ऐसेम्बली) के सदस्यों द्वारा प्रति पांचवें वर्ष होगा। देशी राज्यों के सदस्यों के बारे में पीछे लिखा जायगा ब्रिटिश भारत के सदस्यों का हिसाब आगे नक्शे में दिया गया है।

नक्शे के सम्बन्ध में ये बातें उल्लेखनीय हैं:—

जो जगह साधारण निर्वाचक संघों से चुने जाने वाले सदस्यों की सूचित की गयी हैं, उनमें से, कुछ प्रांतों में हरिजनों के लिये कुछ स्थान सुरक्षित हैं। इनका ब्यौरा इस प्रकार है। मदरास ४, बम्बई २, बंगाल ३, संयुक्त प्रान्त ३, पंजाब १, बिहार २, मध्यप्रान्त-बरार २, आसाम १, उड़ीसा १।

* इस समय भारतीय व्यवस्थापक सभा का चुनाव प्रत्यक्ष होता है। नवीन विधान का यह परिवर्तन चिन्तनीय है।

इन के चुनाव के वास्ते यह व्यवस्था होगी :—गवर्नरों के प्रान्तों में, व्यवस्थापक सभाओं के पिछले चुनाव के समय इन जातियों के सदस्यों के प्रारम्भिक चुनाव में जो व्यक्ति सफल उम्मेदवार थे, उनके समूह को संघीय व्यवस्थापक सभा की एक एक हरिजन जगह के लिये चार चार उम्मेदवार चुनने का अधिकार होगा। जो व्यक्ति उम्मेदवार नहीं चुना जायगा, वह सदस्य चुना जाने योग्य न होगा। उपर्युक्त चार चार उम्मेदवारों में से एक एक सदस्य का चुनाव, प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सदस्य करेंगे।

गवर्नरों के प्रान्तों में जो जगह साधारण, सिक्ख या मुसलिम सदस्यों के लिये हैं, उनके वास्ते चुनाव, उन प्रान्तों की व्यवस्थापक सभा के साधारण, सिक्ख और मुसलिम सदस्य किया करेंगे। इसमें एकाकी हस्तान्तरित मताधिकार द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त काम में लाया जायगा (देखो पृष्ट ९७–८)। इसमें शर्त यह है कि पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त की व्यवस्थापक सभा में सिक्खों के लिये, तथा अन्य किसी प्रान्त में पिछड़ी हुई जाति के लिये जो जगह सुरक्षित हैं, वे इस प्रसङ्ग साधारण जगह समझी जांयगी।

संघीय व्यवस्थापक सभा की स्त्री-सदस्याओं के चुनाव के लिये, गवर्नरों के प्रान्तों को व्यवस्थापक सभाओं की स्त्री-सदस्याएं मत देंगी, नौ स्त्रियों में से कम से कम दो मुसलमान और एक भारतीय ईसाई होगी।

किसी गवर्नर के प्रान्त की ओर से चुने जाने वाले ऐंग्लो-इण्डियन, और भारतीय ईसाई सदस्यों का चुनाव उस प्रान्त की व्यवस्थापक सभा के क्रमशः इन्हीं जातियों के सदस्य करेंगे। मदरास प्रान्त से लिये जाने वाले भारतीय ईसाई सदस्यों के चुनाव में एकाकी हस्तान्तरित मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त काम में लाया जायगा; (देखो पृष्ट ९७–८)।

संघीय व्यवस्थापक सभा

बृटिश भारत के प्रतिनिधि

प्रान्त	साधारण	सिक्ख	मुसलिम	भारतीय ईसाई	एंग्लो इण्डियन	योरपियन	स्त्रियां	व्यापार और उद्योग	ज़मींदार	मज़दूर	कुल
मदरास	१९	०	८	२	१	१	२	२	१	१	३७
बम्बई	१३	०	६	१	१	१	२	३	१	२	३०
बङ्गाल	१०	०	१७	१	१	१	१	३	१	२	३७
संयुक्त प्रान्त	१९	०	१२	१	१	१	१	०	१	१	३७
पञ्जाब	६	६	१४	१	०	१	१	०	१	०	३०
बिहार	१६	०	९	१	०	१	१	०	१	१	३०
मध्य प्रान्त बरार	९	०	३	०	०	०	१	०	१	१	१५
आसाम	४	०	३	१	०	१	०	०	०	१	१०

प्रान्त	साधारण	सिक्ख	मुसलिम	भारतीय ईसाई	एंग्लो इण्डियन	योरपियन	स्त्रियां	व्यापार और उद्योग	ज़मींदार	मज़दूर	कुल
पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त	१	०	४	०	०	०	०	०	०	०	५
सिन्ध	१	०	३	०	०	१	०	०	०	०	५
उड़ीसा	४	०	१	०	०	०	०	०	०	०	५
दिल्ली	१	०	१	०	०	०	०	०	०	०	२
अजमेर-मेरवाड़ा	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१
कुर्ग	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१
विलोचिस्तान	०	०	१	०	०	०	०	०	०	०	१
ग़ैर-प्रान्तीय	०	०	०	०	०	०	०	३	०	१	४
योग (दोनों पृष्ठ का)	१०५	६	८२	८	४	८	९	११	७	१०	२५०

व्यापार, उद्योग, ज़मींदार और मज़दूर सदस्यों का चुनाव इस प्रकार होगा :—किसी प्रान्त की ओर से व्यापार और उद्योग का प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति चेम्बर–आफ़–कामर्स और इस प्रकार की अन्य संस्थाओं द्वारा, और ज़मींदारों का प्रतिनिधित्व करले वाला व्यक्ति ज़मींदारों के निर्वाचक संघ द्वारा, निर्धारित रीति से चुना जायगा। तीन ग़ैर–प्रान्तीय व्यापार सदस्यों में से एक एक को ऐसोसियेटेड चेम्बर–आफ़–कामर्स, और उत्तर भारत की व्यापारिक संस्थाएं चुनेंगी। ग़ैर-प्रान्तीय मज़दूर सदस्य का चुनाव, मज़दूरों की संस्था द्वारा निर्धारित रीति से किया जायगा।

चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों से लिये जाने वाले साधारण और मुसलिम सदस्यों के चुनाव के लिये यह व्यवस्था है :—कुर्ग की ओर से लिया जाने वाला सदस्य वहां की व्यवस्थापक परिषद के सदस्यों द्वारा चुना जायगा। ब्रिटिश बिलोचिस्तान, देहली और अजमेर-मेरवाड़ा की ओर से लिये जाने वाले सदस्य निर्धारित रीति से चुने जायंगे।

किसी गवर्नर के प्रान्त तथा कुर्ग से साधारण सिक्ख, मुसलिम, ऐंग्लो-इंडियन, योरपियन, भारतीय ईसाई, या स्त्री-सदस्य के लिये वही व्यक्ति चुना जा सकेगा जो किसी प्रान्त की व्यवस्थापक सभा या कुर्ग की व्यवस्थापक परिषद का सदस्य चुना जाने योग्य हो।

देशी राज्यों के सदस्य—देशी राज्यों की ओर से लिये जाने वाले सदस्यों का निर्वाचन न होकर उनकी नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है। नियुक्ति नरेशों द्वारा होगी। कोई व्यक्ति किसी सभा का सदस्य नियत नहीं किया जायगा, जो ब्रिटिश प्रजा, या संघान्तरित राज्य की प्रजा या नरेश न हो। राज्य परिषद के लिये नियुक्त होने वाला सदस्य तीस वर्ष से कम, और संघीय व्यवस्थापक सभा के लिये नियुक्त होने वाला सदस्य पच्चीस वर्ष से कम आयु का न होना चाहिये।

किस किस संघान्तरित राज्य से अथवा राज्यों के समूह से राज्य परिषद् और संघीय व्यवस्थापक सभा में कितने कितने सदस्य लिये जांयगे, यह आगे दिये हुए नक्शे में बताया गया है:-

राज्य परिषद् और संघीय व्यवस्थापक सभा में

देशी राज्यों के सदस्य

राज्य और राज्य-समूह	राज्य परिषद् में सदस्य	राज्य और राज्य-समूह	संघीय व्यव-स्थापक सभा में सदस्य	जन संख्या
		श्रेणी १.		
हैदराबाद	५	हैदराबाद	१६	१,४४,३६,१४८
		श्रेणी २.		
मैसूर	३	मसूर	७	६५,५७,३०२
		श्रेणी ३.		
कशमीर	३	कशमीर	४	३६,४६,२४३
		श्रेणी ४.		
गवालियर	३	गवालियर	४	३५,२३,०७०
		श्रेणी ५.		
बड़ौदा	३	बड़ौदा	३	२४,४३,००७

राज्य और राज्य-समूह	राज्य परिषद् में सदस्य	राज्य और राज्य-समूह	संघीय व्यवस्थापक सभा में सदस्य	जन संख्या
		श्रेणी ६.		
कलात	२	कलात	१	३,४२,१०१
		श्रेणी ७.		
सिक्किम	१	सिक्किम	...	१,०९,८०८
		श्रेणी ८.		
१ रामपुर	१	१ रामपुर	१	४,६५,२२५
२ बनारस	१	२ बनारस	१	३,९१,२७२
		श्रेणी ९.		
१ ट्रावंकोर	२	१ ट्रावंकोर	५	५०,९५,९७३
२ कोचीन	२	२ कोचीन	१	१२,०५,०१६
३ पद्दूकोटा		३ पद्दूकोटा		४,००,६९४
बंगनपल्ले	१	बंगनपल्ले	१	३९,२१८
संदूर		संदूर		१३,५८३
		श्रेणी १०		
१ उदयपुर	२	१ उदयपुर	२	१५,६६,९१०
२ जैपुर	२	२ जयपुर	३	२६,३१,७७५
३ जोधपुर	२	३ जोधपुर	२	२१,२५,९८२
४ बीकानेर	२	४ बीकानेर	१	९,३६,२१८

राज्य और राज्य-समूह	राज्य परिषद् में सदस्य	राज्य और राज्य-समूह	संघीय व्यव-स्थापक सभा में सदस्य	जन संख्या
५ अलवर	१	५ अलवर	१	७,४६,७५१
६ कोटा	१	६ कोटा	१	६,८५,८०४
७ भरतपुर	१	७ भरतपुर	१	४,८६,६५४
८ टोंक	१	८ टोंक	१	३,१७,३६०
९ धौलपुर	१	९ धौलपुर	१	२,५४,९८६
१० करौली	१	करौली		१,४०,५२५
११ बून्दी	१	१० बून्दी	१	२,१६,७२२
१२ सिरोही	१	सिरोही		२,१६,५२८
१३ डूंगरपुर	१	११ डूंगरपुर	१	२,२७,५४४
१४ बांसवाडा	१	बांसवाडा		२,६०,६७०
१५ प्रतापगढ़	१	१२ प्रतापगढ़	१	७६,५३९
झालावाड़		झालावाड़		१,०७,८९०
१६ जैसलमेर	१	१३ जैसलमेर	१	७६,२५५
किशनगढ़		किशनगढ़		८५,७४४

श्रेणी ११.

राज्य और राज्य-समूह	राज्य परिषद् में सदस्य	राज्य और राज्य-समूह	संघीय व्यव-स्थापक सभा में सदस्य	जन संख्या
१ इन्दौर	२	१ इन्दौर	२	१३,२५,०८९
२ भोपाल	२	२ भोपाल	१	७,२९,९५५
३ रीवां	२	३ रीवां	२	१५,८७,४४५
४ दतिया	१	४ दतिया	१	१,५८,८३४
५ ओरछा	१	ओरछा		३,१४,६६१

राज्य और राज्य-समूह	राज्य परिषद् में सदस्य	राज्य और राज्य-समूह	संघीय व्यवस्थापक सभा में सदस्य	जन संख्या
६ धार	१	५ धार		२,४३,४३०
देवास (सीनियर)	१	देवास (सीनियर)	१	८३,३२१
देवास (जूनियर)		देवास (जूनियर)		७०,५१३
७ जावरा	१	६ जावरा	१	१,००,१६६
रतलाम		रतलाम		१,०७,३२१
८ पन्ना		७ पन्ना		२,१२,१३०
समथर	१	समथर	१	३३,३०७
अजयगढ़		अजयगढ़		८५,८६५
९ बीजावर		८ बीजावर		१,१५,८५२
चरखारी	१	चरखारी	१	१,२०,३५१
छतरपुर		छतरपुर		१,६१,२६७
१० बावनी		९ बावनी		१९,१३२
नागौद		नागौद		७४,५८९
मैहर	१	मैहर	१	६८,९९१
बरौंढा		बरौंढा		१६,०७१
११ बरवानी		१० बरवानी		१,४१,११०
अलीराजपुर	१	अलीराजपुर	१	१,०१,९६३
शाहपुरा		शाहपुरा		५४,२३३
१२ झाबुआ		११ झबुआ		१,४५,५२२
सैलाना	१	सैलाना	१	३५,२२३
सीतामऊ		सीतामऊ		२८,४२२

राज्य और राज्य-समूह	राज्य परिषद् में सदस्य	राज्य और राज्य-समूह	संघीय व्यवस्थापक सभा में सदस्य	जन संख्या
१३ राजगढ़	१	१२ राजगढ़	१	१,३४,८६१
नरसिंहगढ़		नरसिंहगढ़		१,१३,८७३
खिलचीपुर		खिलचीपुर		४५,५८३
		श्रेणी १२.		
१ कच्छ	१	१ कच्छ	१	५,१४,३०७
२ ईदर	१	२ ईदर	१	२,६२,६६०
३ नवानगर	१	३ नवानगर	१	४,०६,१९२
४ भावनगर	१	४ भावनगर	१	५,००,२७४
५ जूनागढ़	१	५ जूनागढ़	१	५,४५,१५२
६ राजपीपला	१	६ राजपीपला	१	२,०६,११४
पालनपुर		पालनपुर		२,६४,१७६
७ ध्रांगधर	१	७ ध्रांगधर	१	८८,६६१
गोंडल		गोंडल		२,०५,८४६
८ पोरबन्दर	१	८ पोरबन्दर	१	१,१५,६७३
मोरवी		मोरवी		१,१३,०२३
९ राधनपुर	१	९ राधनपुर	१	७०,५३०
बांकानेर		बांकानेर		४४,२५९
पलिताना		पलिताना		६२,१५०
१० केम्बे	१	१० केम्बे	१	८७,७६१
धरमपुर		धरमपुर		१,१२,०३१
बालसिनोर		बालसिनोर		५२,५२५

राज्य और राज्य-समूह	राज्य परिषद् में सदस्य	राज्य और राज्य-समूह	संघीय व्यवस्थापक सभा में सदस्य	जन संख्या
११ बरिया	१	११ बरिया	१	१,५९,४२९
छोटा उदयपुर		छोटा उदयपुर		१,४४,६४०
सन्त		सन्त		८३,५३१
लूनावाड़ा		लूनावाड़ा		९५,१६२
१२ बांसड़ा	१	१२ बांसड़ा	१	४८,८३९
सचिन		सचिन		२२ १०७
जौहर		जौहर		५७,२६१
दांता		दांता		२६,१९६
१३ ध्रोल	१	ध्रोल		२७,६३९
लिम्बड़ी		लिम्बड़ी		४०,०८८
वधवान		वधवान		४२,६०२
राजकोट		राजकोट		७५,५४०

श्रेणी १३.

राज्य और राज्य-समूह	राज्य परिषद् में सदस्य	राज्य और राज्य-समूह	संघीय व्यवस्थापक सभा में सदस्य	जन संख्या
१ कोल्हापुर	२	१ कोल्हापुर	१	९,५७,१३७
२ सांगली	१	२ सांगली	१	२,५८,४४२
सावंतवाड़ी		सावंतवाड़ी		२,३०,५८९
३ जंजीरा	१	३ जंजीरा	१	१,१०,३७९
मुढोल		मुढोल		६२ ८३२
भोर		भोर		१,४१,५४६

राज्य और राज्य-समूह	राज्य परिषद में सदस्य	राज्य और राज्य समूह	संघीय व्यवस्थापक सभा में सदस्य	जन संख्या
४ जमखंडी		४ जमखंडी		१,१४,२७०
मिराज (सीनियर)		मिराज (सीनियर)		९३,९३८
मिराज (जूनियर)	१	मिराज (जूनियर)	१	४०,६८४
कुरंडबाद (सीनियर)		कुरंडबाद (सीनियर)		४४,२०४
कुरंडबाद (जूनियर)		कुरंडबाद (जूनियर)		३९,५८३
५ अकलकोट		५ अकलकोट		९२,६०५
फलटन		फलटन		५८,७६१
जाठ	१	जाठ	१	९१,०९९
औन्ध		औन्ध		७६,५०७
रामदुर्ग		रामदुर्ग		३५,४५४
		श्रेणी १४		
१ पटियाला	२	१ पटियाला	२	१६,२५,५२०
२ बहावलपुर	२	२ बहावलपुर	१	९,८४,६१२
३ खैरपुर	१	३ खैरपुर	१	२,२७,१८३
४ कपूर्थला	१	४ कपूर्थला	१	३,१६,७५७
५ जीन्द	१	५ जीन्द	१	३,२४,६७६
६ नाभा	१	६ नाभा	१	२,८७,५७४
		७ टेहरी-गढ़वाल	१	३,४९,५७३

राज्य और राज्य-समूह	राज्य परिषद में सदस्य	राज्य और राज्य-समूह	संघीय व्यवस्थापक सभा में सदस्य	जन संख्या
७ मण्डी		८ मण्डी		२,०७,४६५
बिलासपुर	१	बिलासपुर	१	१,००,९९४
सुकेत		सुकेत		५८,४०८
८ टेहरी-गढ़वाल		९ सिरमौर	१	१,४८,५६८
सिरमौर	१	चाम्बा		१,४६,८७०
चाम्बा				
९ फरीदकोट		१० फरीदकोट		१,६४,३६४
मलेरकोटला	१	मलेरकोटला	१	८३,०७२
लोहारू		लोहारू		२३,३३८
		श्रेणी १५		
१ कूचबिहार	१	१ कूचबिहार	१	५,९०,८८६
२ त्रिपुरा	१	२ त्रिपुरा	१	३,८२,४५०
मनीपुर		३ मनीपुर	१	४,४५,६०६
		श्रेणी १६		
१ मयूरभञ्ज	१	१ मयूरभञ्ज	१	८,८९,६०३
सोनपुर		२ सोनपुर	१	२,३७,९२०
२ पटना	१	३ पटना	१	५,५६,९२४
कलहंडी		४ कलहंडी	१	५,१३,७१६

राज्य और राज्य-समूह	राज्य परिषद् में सदस्य	राज्य और राज्य-समूह	संघीय व्यवस्थापक सभा में सदस्य	जन संख्या
३ केवंकर		५ केवंकर	१	४,६०,६०९
ढेंकनल		६ गंगपुर	१	३,५६,६७४
नयागढ़	१	७ बस्तर	१	५,२४,७२१
तलचेर		८ सरगुजा	१	५,०१,९३९
नीलगिरि				
४ गंगपुर		९ ढेंकनल		२,८४,३२६
बामरा		नयागढ़		१,४२,४०६
सरायकेला	१	सरायकेला		१,४३,५२५
बौद		बौद		१,३५,२४८
बोनाई		तलचेर	३	६९,७०२
५ बस्तर		बोनाई		८०,१८६
सरगुजा	१	नीलगिरि		६८,५९४
रायगढ़		बामरा		१,५१,०४७
नांदगांव				
६ खैरगढ़		१० रायगढ़		२,७७,५६९
जशपुर		खैरगढ़		१,५७,४००
कांकेर		जशपुर		१,९३,६९८
कोरया	१	कांकेर		१,३६,१०१
सारंगढ़		सारनगढ़		१,२८,९६७
		कोरया		९०,८८६
		नांदगांव		१,८२,३८०
		श्रेणी १७.		
अन्य राज्य	२	अन्य राज्य	५	३०,३२,१९७

नक्शे के सम्बन्ध में निम्न लिखित बातें उल्लेखनीय हैं:—

इस नक्शे के राज्यों की कुल जन संख्या ७,८६,८१,६१२ है।

पन्द्रहवीं श्रेणी तक के जिन राज्यों के समूहों के सदस्य के लिये राज्य परिषद् में स्थान निर्धारित है, उनके नरेश उस स्थान के लिये सदस्य बारी-बारी से नियत करेंगे; इनमें से जो चाहें, ये आपस में समझौता करके, गवर्नर-जनरल की स्वीकृति से, संयुक्त रूप से उस सदस्य को नियत कर सकेंगे। जिन राज्यों के समूहों के सदस्य के लिये संघीय व्यवस्थापक सभा में स्थान निर्धारित है उनके नरेश संयुक्त रूप से उस स्थान के लिये सदस्य नियत करेंगे।

कोई सदस्य राज्य परिषद् में कितने समय के लिये रहेगा, इस विषय में यह व्यवस्था निर्धारित की गयी है :—

(क) पृथक प्रतिनिधित्व वाले राज्य के नरेश से नियुक्त किया हुआ व्यक्ति नौ वर्ष। [राज्य परिषद् के प्रथम संगठन के समय गवर्नर-जनरल नियम बनाकर ऐसी व्यवस्था करेगा, कि इन नरेशों से नियत किये हुए व्यक्तियों में से लगभग एक–तिहाई तीन वर्ष के लिये रहें, लगभग एक-व‍र्ष के लिये, और लगभग एक-तिहाई नौ वर्ष के लिये रहें।] (ख) उन तिहाई छः संघान्तरित राज्यों के समूहों के नरेशों से नियत किया हुआ व्यक्ति, जो मिलकर नियुक्ति करते हैं, तीन वर्ष। (ग) उस राज्य के नरेश से नियत किया हुआ व्यक्ति, जो बारी-बारी से नियुक्त करेंगे, एक वर्ष। परन्तु पन्ना और मयूरगंज के नरेश दो दो वर्ष और पद्दूकोटा का नरेश तीन वर्ष के लिये नियुक्ति करेगा। (घ) अन्य दशाओं में तीन वर्ष।

संघीय व्यवस्थापक सभा में नियत किया हुआ व्यक्ति, उस सभा के भंग होने तक सदस्य रहेगा।

जिन दो या अधिक राज्यों के एक एक सदस्य के लिये संघीय

व्यवस्थापक मण्डल की किसी सभा में स्थान निर्धारित है, उनके नरेश मिलकर चुनाव करते समय एक एक एक मत देसकेंगे, परन्तु पन्ना और मयूरभंज को दो दो और पद्दूकोटा को तीन मत का अधिकार होगा। दो या अधिक उम्मेदवारों के लिये समान मत प्राप्त होने की दशा में चिट्ठी डालकर निर्णय किया जायगा।

मण्डल की किसी सभा में, जहां किसी एक राज्य को ही सदस्य नियत करने का अधिकार है, उस सदस्य का स्थान रिक्त रहेगा, जब तक कि उक्त राज्य संघ में सम्मिलित न होजाय, और जहां कई राज्यों के समूह को एक सदस्य नियत करने का अधिकार है, उस सदस्य का स्थान उस समय तक रिक्त रहेगा जब तक कि उन राज्यों में से कम आधे संघ में सम्मिलित न होजांय।

सोलहवीं श्रेणी के जिन राज्यों के समूह से संघीय व्यवस्थापक सभा में तीन तीन व्यक्ति नियत किये जाने वाले हैं, उनकी नियुक्ति के विषय में ये नियम हैं:— (क) जब तक उनमें दो राज्य, संघ में सम्मिलित न हों, तीनों स्थान रिक्त रहेंगे। (ख) जब तक कि उन में से चार राज्य संघ में सम्मिलित न हों, तीन स्थानों में से दो रिक्त रहेंगे। (ग) जब तक कि उन में से छः राज्य संघ में सम्मिलित न हों, तीन स्थानों में से एक रिक्त रहेगा।

सत्तरहवीं श्रेणी के राज्य ऐसे हैं जो १| जनवरी १९३५ ई० को राज्यों की पश्चिम भारत एजन्सी, गुजरात एजन्सी, दक्षिण एजन्सी, पूर्वीय एजन्सी, मध्य भारत एजन्सी या राजपूताना एजन्सी में सम्मिलित थे, या जिनका आसाम, या पंजाब प्रान्त की सरकारों से राजनैतिक सम्बन्ध था। गवर्नर-जनरल नियम बनाकर उन्हें पांच समूहों में विभक्त करदेगा, उनमें से प्रत्येक समूह को संघीय व्यवस्थापक सभा में एक सदस्य भेजने का अधिकार होगा। इन समूहों में से किसी को ओर से लिये जाने वाले

सदस्य का स्थान रिक्त रहेगा, जब तक कि उस समूह के राज्यों में से कम से कम आधे राज्य संघ में सम्मिलित न होजांय। इन राज्यों की ओर से, राज्य परिषद में लिये जाने वाले दो सदस्यों की नियुक्ति उन व्यक्तियों द्वारा की जायगी, जो संघीय व्यवस्थापक सभा के स्थानों की पूर्ती के लिये नियुक्त हों। जब तक कि संघीय व्यवस्थापक सभा के पांच सदस्यों के स्थानों में से तीन की पूर्त्ति न होजाय, राज्य परिषद में दो में से एक स्थान रिक्त होगा।

संघ निर्म्माण सम्बन्धी शर्त (देखो, पृष्ठ २०३–४) के प्रसंग में, जिस राज्य समूह को एक सदस्य भेजने का अधिकार होगा, यदि उसके कम से कम आधे राज्य, संघ में सम्मिलित हो जांय, तो उन राज्यों को राज्य परिषद का एक सदस्य चुनने का अधिकारी माना जायगा। यदि सत्तरहवीं श्रेणी के राज्यों के बनाये जाने वाले समूहों के राज्यों में से इतने राज्य संघ में सम्मिलित होजाय जो संघीय व्यवस्थापक सभा के लिये एक या दो सदस्य भेजने के अधिकारी हों, तो इन राज्यों को राज्य परिषद का एक सदस्य चुनने का अधिकारी माना जायगा, और यदि संघान्तरित राज्य संघीय व्यवस्थापक सभा में तीन या अधिक सदस्य भेजने के अधिकारी हों, तो वे राज्य, राज्य परिषद में दो सदस्य चुनने के अधिकारी माने जांयगे।

जब तक मंडल की किसी सभा में, राज्यों या राज्य-समूहों की ओर से नियुक्त होने वाले सदस्यों में से दसांश के स्थान नरेशों के, संघ में सम्मिलित न होने के कारण (यह चाहे नाबालग़ी या अन्य किसी कारण से हो) रिक्त हों, उन स्थानों में से आधे तक की पूर्ति नरेशों से नियत किये हुए सदस्य निर्धारित रीति से अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति करके, कर सकेंगे।

[जब राज्य परिषद में ५२ सदस्य नियुक्त करने के अधिकारी नरेश

संघ में सम्मिलित होना स्वीकार करलेंगे, तब संघ का निर्माण होगा; यह पहले कहा जाचुका है। इसके बाद जब तक इस सभा के कुल राज्यों के १०४ सदस्यों के दसांश अर्थात् ११ तक स्थान रिक्त रहेंगे, इन में से आधे की पूर्ति उपर्युक्त नियम से हो सकेगी। उदाहरणवत ५४ सदस्य साधारण नियम से बनजाने पर, शेष ५० के आधे अर्थात् २५ तक की पूर्ति अतिरिक्त सदस्यों द्वारा होजायगी; इस प्रकार कुल सदस्य ५४+२५= ७९ तक होसकेंगे।]

अतिरिक्त सदस्यों सम्बन्धी उपर्युक्त व्यवस्था संघ निर्माण होने के बाद बीस वर्ष तक रहेगी, इसके बाद नहीं। अतिरिक्त सदस्य अपने स्थान पर एक एक वर्ष रहेंगे।

पांचवां परिच्छेद

संघीय व्यवस्थापक मण्डल
(२)
कार्य पद्धति

पिछले परिच्छेदों में संघीय व्यवस्थापक मंडल का संगठन बताये जा चुकने पर, अब हम उसकी कार्य पद्धति का विचार करते हैं।

संघीय व्यवस्थापक मंडल का अधिवेशन आदि—यह मंडल कब से कार्य आरम्भ करेगा, इसका ठीक समय निश्चित नहीं है। संघ का निर्माण होजाने पर सम्राट् द्वारा यह निश्चय किया जायगा कि निर्धारित दिन तक इस मंडल का प्रथम अधिवेशन किया जाय। अधिवेशनों, उसमें गवर्नर-जनरल के भाषण और सन्देश सम्बन्धी अधिकार, मंत्रियों और ऐडवोकेट जनरल के अधिकार, सभाओं के पदाधिकारी, सभाओं में मत प्रदान, और सदस्यों सम्बन्धी नियम उसी प्रकार के हैं, जैसे प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल की कार्य पद्धति के विषय में बताये गये हैं, (देखो, पृष्ठ १०१-४)। उसमें जो स्थान गवर्नर का है, यहां, संघीय व्यवस्थापक मंडल में गवर्नर--जनरल का है। गवर्नर-जनरल के सलाहकार का, इस मंडल में ऐडवोकेट जनरल या मंत्रियों के समान अधिकार रहेगा।

संघीय व्यवस्थापक मण्डल का कार्य क्षेत्र—निर्धारित नियमों या सीमा को ध्यान में रखते हुए, संघीय व्यवस्थापक मंडल समस्त ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग के लिये, या किसी संघान्तरित राज्य के लिये क़ानून बना सकता है। और, उसका बनाया निम्न विषयों का क़ानून, उसके क्षेत्र से बाहर होने के आधार पर अवैध नहीं ठहराया जायगा— १ सम्राट् की भारत-स्थित ब्रिटिश प्रजा और नौकर। २—भारतवर्ष में बसी हुई ब्रिटिश प्रजा, वह चाहे कहीं भी हो। ३—ब्रिटिश भारत में रजिस्टरी किये हुए जहाज़, हवाई जहाज़, और उन पर रहने वाले आदमी। ४—संघान्तरित राज्य की किसी भी जगह रहने वाली प्रजा के लिये ऐसा विषय जिसके सम्बन्ध में उस राज्य ने शर्तनामे में यह स्वीकार करलिया है कि संघीय व्यवस्थापक मंडल क़ानून बना सकता है। ५—ब्रिटिश भारत में संगठित जल, स्थल या हवाई सेना में कार्य करने वाले या उससे सम्बन्धित व्यक्ति।

पहले बताया जाचुका है कि क़ानून निर्माण की दृष्टि से विविध विषय तीन भागों में विभक्त किये गये हैं, उनमें प्रान्तीय व्यवस्था सूची के विषय प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल में दिये जा-चुके हैं, (पृष्ठ १०४)। संघीय और संयुक्त विषयों की सूची भी काफ़ी बड़ी हैं। जिन विषयों के सम्बन्ध में संघीय व्यवस्थापक मण्डल क़ानून बना सकता है, (और प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल नहीं बना सकता) उनमें से मुख्य निम्न लिखित हैं :— सेना, छावनियां, मुद्रा और टकसाल, डाक, तार, टेलीफ़ोन, बेतार का तार, ध्वनि-विस्तार ('ब्राड कास्टिंग') संघ की सरकारी नौक-रियां, काशी और अलीगढ़ के विश्वविद्यालय, मनुष्य गणना, आयात निर्यात, बड़ी बड़ी संघीय रेलवे, हवाई जहाज़, समुद्र-यात्रा, मुद्रणाधिकार (' कापी राइट '), युद्ध-सामग्री, पेट्रोलियम, खान और तेल के कुए, संघीय व्यवस्थापक मंडक का चुनाव, नमक, नागरिककरण, आय-कर, आयात निर्यात कर, उत्तराधि-कार कर, कारपोरेशन कर आदि संघीय आय के साधन।

'संयुक्त' विषयों के सम्बन्ध में संघीय व्यवस्थापक मंडल क़ानून बना सकता है; और अगर वह न बनाये तो प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल भी बना सकता है। इन विषयों के दो भाग हैं। पहले भाग में कुछ मुख्य विषय ये हैं :— फ़ौजदारी क़ानून और कार्य पद्धति, किसी प्रान्त में उसके बाहर के आदमियों से वसूल होने वाला कर या मालगुज़ारी, विवाह और सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक़), वसीहत, दस्तावेजों की रजिस्टरी, ट्रस्ट, ठेका, दिवाला, क़ानून, चिकित्सा और अन्य पेशे; पत्र पत्रिकाएं और छापेखाने, मोटर आदि। दूसरे भाग के मुख्य मुख्य विषय निम्न लिखित हैं :— कारख़ाने, मज़दूरों का कुशल क्षेम, मज़दूर संघ, बिजली, छूत की बीमारियों को रोकना, बेकारी का बीमा आदि।

इन (दूसरे भाग के) विषयों के क़ानूनों को अमल में लाने के लिये संघ सरकार प्रान्तीय सरकारों को आवश्यक हिदायतें कर सकती हैं।

व्यवस्था सम्बन्धी अवशिष्ट अधिकार—जो विषय संघीय या प्रान्तीय व्यवस्था सूची में नहीं हैं, उनके सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल अपनी मर्ज़ी से संघीय या किसी प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल को क़ानून बनाने का अधिकार, सार्वजनिक विज्ञप्ति करके देसकता है, इस में ऐसे कर लगाने का विषय भी सम्मिलित किया जासकता है, जो उक्त सूची में न हो।

मंडल का विशेष अधिकार—साधारणतया संघीय व्यवस्थापक मंडल किसी प्रान्तीय विषय के सम्बन्ध में क़ानून उस दशा में ही बना सकता है, जब उसका सम्बन्ध एक ही प्रान्त या उसके भाग से न हो। परन्तु यदि गवर्नर-जनरल अपनी मर्ज़ी से, घोषणा द्वारा यह सूचित करदे कि युद्ध या आन्तरिक अशांति के कारण ऐसा घोर संकट विद्यमान है कि भारतवर्ष की रक्षा ख़तरे में है, तो संघीय व्यवस्थापक मंडल को किसी प्रान्त या उसके किसी भाग के सम्बन्ध में भी क़ानून बनाने का अधिकार होगा। ऐसा मसविदा या संशोधन गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति बिना उपस्थित नहीं किया जायगा; और, इससे प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून बनाने के निर्धारित अधिकारों में बाधा न होगी, परन्तु यदि उसका क़ानून उक्त नियम के अनुसार बनाये हुए, संघीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून से असंगत हो, तो संघीय व्यवस्थापक मंडल का क़ानून व्यवहृत होगा, चाहे वह प्रान्तीय क़ानून से पहले बना हो या पीछे; और, प्रान्तीय क़ानून, जितने अंश में वह संघीय क़ानून से असंगत है, रद्द होगा।

संकट की घोषणा, पीछे होने वाली दूसरी घोषणा से मन-सूख़ की जा सकती है। उक्त घोषणा की सूचना भारत-मंत्री को दी जायगी, और उसके द्वारा पार्लिमैंट की दोनों सभाओं के सामने रखी जायगी। यह घोषणा छः माह के बाद अमल में आनी बन्द हो जायगी, अगर इस बीच में पार्लिमैंट की दोनों सभाएं इसे स्वीकार न करलें। संकट कालीन-क़ानून, घोषणा के व्यवहृत होने के छः मास बाद अमल में आना बन्द होजायगा।

दो या अधिक प्रान्तों के लिये क़ानून बनाने का अधिकार—अगर दो या अधिक प्रान्तों के व्यवस्थापक मंडलों को यह अभीष्ट प्रतीत हो और वे इस आशय का प्रस्ताव पास करदें कि कोई प्रान्तीय विषय उक्त प्रान्तों में संघीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा नियमित होना चाहिये तो यह मंडल उस विषय का क़ानून बना सकता है। यह क़ानून किसी सम्बधित प्रान्त के व्यवस्थापक मंडल द्वारा संशोधित अथवा रद्द किया जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों सम्बन्धी क़ानून बनाने का अधिकार--संघीय व्यवस्थापक मंडल किसो प्रान्त या संघान्तरित राज्य के लिये अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और समझौतों के सम्बन्ध में कोई क़ानून उस समय तक न बना सकेगा, जब तक प्रांत के लिये उसके गवर्नर की, और संघान्तरित राज्य के लिये उसके नरेश की, पूर्व स्वीकृति न हो; चाहे इस क़ानून का विषय संघीय सूची के अन्तर्गत हो।

संघीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकारों की सामा—
गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति बिना, संघीय व्यवस्थापक मंडल

की किसी सभा में कोई ऐसा मसविदा या संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकता :—

(क) जो पार्लिमैंट के ब्रिटिश भारत सम्बन्धी किसी क़ानून को रद्द या संशोधित करता हो, या उससे असंगत हो, या

(ख) जो गवर्नर-जनरल, या गवर्नर के क़ानून या आर्डिनैंस को रद्द या संशोधित करता हो, या उससे असंगत हो, या

(ग) जिसका प्रभाव किसी ऐसे विषय पर पड़ता हो जो गवर्नर-जनरल को नवीन विधान के अनुसार, अपनी मर्ज़ी से करना हो, या

(घ) जो पुलिस सम्बन्धी किसी क़ानून को रद्द या संशोधित करता हो, या उस पर असर डालता हो, या

(च) जो योरपियन ब्रिटिश प्रजा सम्बन्धी फ़ौजदारी कार्य पद्धति पर प्रभाव डालता हो, या

(छ) जो ब्रिटिश भारत से बाहर के आदमियों और कम्पनियों पर ब्रिटिश भारत के आदमियों तथा कम्पनियों की अपेक्षा अधिक कर लगाता हो, या

(ज) जो ब्रिटिश संयुक्त राज्य में कर लगने वाली आय को संघीय कर से मुक्त करने के विरोध में हो।

अगर संघीय व्यवस्थापक मंडल के किसी क़ानून या उसके किसी भाग को गवर्नर-जनरल या सम्राट् स्वीकार करलें तो वह रद्द नहीं होगा, चाहे उसके लिये उपर्युक्त पूर्व स्वीकृति न दी गयी हो। ब्रिटिश पार्लिमैंट, सम्राट् और भारत मंत्री आदि सम्बन्धी

जिन विषयों के लिये प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल क़ानून नहीं बना सकता (देखो, पृष्ठ १०७), उनके लिये संघीय व्यवस्थापक मंडल भी क़ानून नहीं बना सकता।

भेदभाव सम्बन्धी व्यवस्था—अंगरेज़ व्यापारियों कम्पनियों तथा पेशेवालों को यहां क़ानून से भारतीय व्यापारियों, कम्पनियों तथा पेशेवालों के समान सुविधाएं दीगयी हैं। इस सम्बन्ध में प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल के प्रसंग में कहा जा चुका है, (देखो पृष्ठ १०७–८)। वैसी ही व्यवस्था संघीय व्यवस्थापक मंडल के विषय में भी है।

संघीय व्यवस्थापक मण्डल के क़ानून कैसे बनते हैं ?—संघीय व्यवस्थापक मंडल के नियम उसी प्रकार के हैं और वह क़ानून उसी प्रकार बनाता है, जिस तरह ऐसे प्रान्त का व्यवस्थापक मंडल जिसमें व्यवस्थापक सभा और परिषद दोनों सभाएं हों, (देखो, पृष्ठ १०८–१२); जहां साधारणतया प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल की संयुक्त बैठक बारह मास समाप्त होने से पूर्व कराने का उल्लेख है, संघीय व्यवस्थापक मण्डल में, छः मास बाद कराने का नियम है। इसके अतिरिक्त, प्रान्त के गवर्नर और सम्राट् के बीच में गवर्नर-जनरल होता है, और गवर्नर को यह अधिकार है कि वह प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल से स्वीकृत मसविदे को गवर्नर-जनरल के विचारार्थ भी रख सकता है, संघीय व्यवस्थापक मंडल के स्वीकृत मसविदे को गवर्नर-जनरल सम्राट् की ही इच्छा प्रकट होने के लिये रोक सकता है। संघीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून सम्राट् द्वारा स्वीकृत होने के सम्बन्ध में वैसा ही नियम है, जैसा प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून के प्रसंग में है।

आर्थिक विषयों सम्बन्धी कार्य पद्धति—गवर्नर-जनरल

संघोय व्यवस्थापक मंडल को दोनों सभाओं के सामने आगामी वर्ष के अनुमानित आय व्यय का नक्शा उपस्थित कराएगा। उसमें दो प्रकार की मदों की रक़में पृथक् पृथक् दिखायी जांयगी:— (१) जिन पर संघोय व्यवस्थापक मंडल का मत लिया जायगा, और (२) जिन पर मत नहीं लिया जायगा। व्यय की निम्न लिखित मदों पर संघीय व्यवस्थापक मंडल को मत देने का अधिकार न होगा:—

(क) गवर्नर-जनरल का वेतन और भत्ता तथा उसके कार्यालय सम्बन्धी निर्धारित व्यय।

(ख) संघोय ऋण सम्बन्धी व्यय, सूद आदि।

(ग) मंत्रियों, सलाहकारों, आर्थिक परामर्शदाता, ऐडवोकेट जनरल, तथा चीफ़-कमिश्नरों का, और आर्थिक परामर्शदाता के कर्मचारियों का वेतन और भत्ता।

(घ) संघीय न्यायालय के जजों का वेतन, भत्ता और पेन्शन, और हाईकोर्ट के जजों की पेन्शन।

(च) गवर्नर--जनरल के सुरक्षित विषय, सेना, ईसाई धर्म, वैदेशिक विषय, और जंगली जातियों के ('ट्राइबल') क्षेत्र का व्यय (देखो, पृष्ट २१३)। [धार्मिक मद में, पेन्शनों के अतिरिक्त ४२ लाख रुपये से अधिक ख़र्च न होगा।]

(छ) संघ से सम्राट् को मिलने वाली ऐसी रक़म जो सम्राट् का, देशी राज्यों से सम्बन्ध होने के कारण व्यय हो।

(ज) प्रान्तों के 'पृथक्' क्षेत्रों (पृष्ट ७४–५) के लिये होने वाला व्यय।

(झ) अदालती निर्णयों के अनुसार होने वाला व्यय।

(ट) अन्य व्यय जो शासन विधान अथवा संघीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून के अनुसार किया जाना आवश्यक हो।

कोई प्रस्तावित व्यय उक्त मदों में से किसी में आता है, या नहीं, इसका निर्णय गवर्नर-जनरल अपनी मर्ज़ी से करेगा। (क) और (छ) को छोड़ कर अन्य मदों पर मंडल की किसी भी सभा में वादानुवाद होसकेगा।

उपर्युक्त (क) से (ट) तक की मदों को छोड़कर, शेष मदों के ख़र्च के प्रस्ताव संघीय व्यवस्थापक सभा के मत के लिये, और उसके पश्चात् राज्य परिषद् के मत के लिये, मांग के रूप में रखे जांयगे। प्रत्येक सभा को अधिकार है कि वह उस मांग को स्वीकार करे, अस्वीकार करे, या उसे घटा कर स्वीकार करे। यदि संघीय व्यवस्थापक सभा किसी मांग को (१) अस्वीकार करदे, या (२) घटाकर स्वीकार करे तो जब तक गवर्नर-जनरल आदेश न करे वह पहली दशा में राज्य परिषद के सामने न रखी जायगी और दूसरी दशा में कम की हुई रक़म के लिये ही मांग की जायगी। गवर्नर-जनरल का आदेश होने पर, राज्य परिषद् में उतनी रक़म के लिये मांग की जायगी जितनी आदेश में सूचित हो, और जो मूल मांग से अधिक न हो।

अगर दोनों सभाओं में किसी मांग के सम्बन्ध में मतभेद हो तो उसके सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक कराएगा, और दोनों सभाओं के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के बहुमत का निर्णय दोनों सभाओं का निर्णय माना जायगा।

गवर्नर-जनरल की सिफ़ारिश के बिना, किसी काम के लिये रुपये की मांग का प्रस्ताव नहीं किया जासकता। यदि सभाओं ने कोई मांग स्वीकार नहीं की, या घटाकर स्वीकार की, और, इससे गवर्नर-जनरल की सम्मति में उसके उत्तरदायित्व को पूरा करने में वाधा उपस्थित हो तो वह अपने विशेषाधिकार से, रद्द की हुई या घटाई हुई मांग की पूर्ति कर सकता है।

व्यय के पूरक नक्शे, कर-निर्धारण के विशेष नियमों तथा बजट अधिवेशन के सम्बन्ध में, वैसी ही व्यवस्था है, जैसी प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के प्रसंग में बतायी जा चुकी हैं, (पृष्ठ ११४–६)।

कार्य पद्धति के नियमों का निर्माण आदि–कार्य पद्धति के नियमों के निर्माण, मंडल की सभाओं में अंगरेज़ी भाषा के प्रयोग, तथा बादानुवाद न किये जाने योग्य विषयों के सम्बन्ध में वे ही बातें उल्लेखनीय हैं, जिनका पहले (पृष्ठ ११७–८) में उल्लेख किया जाचुका है।

गवर्नर-जनरल के क़ानून बनाने के अधिकार–गवर्नर-जनरल (१) संघीय व्यवस्थापक मण्डल के अवकाश के समय आर्डिनैंस (अस्थायी क़ानन) बना सकता है, (२) अपने उत्तर-दायित्व के विचार से आवश्यक समझने पर, कुछ दशाओं में संघीय व्यवस्थापक मण्डल के कार्य काल में भी आर्डिनैंस बना सकता है, (३) विशेष दशाओं में वह स्थायी रूप से भी (मंडल की इच्छा के विरुद्ध) क़ानून बना सकता है। इस सम्बन्ध में विधान में उसी प्रकार के नियम हैं, जैसे गवर्नरों के सम्बन्ध में हैं, (देखो, पृष्ठ ११९–२१)।

विधानात्मक शासन न चलने के समय की व्यवस्था–

यदि किसी समय गवर्नर-जनरल को यह निश्चय होजाय कि तत्कालीन परिस्थित में संघ सरकार का कार्य नवीन विधान के अनुसार नहीं चल सकता, तो वह घोषणा निकाल कर समस्त शासन कार्य अपने हाथ में लेसकेगा। इस सम्बन्ध में विधान में वैसी ही व्यवस्था है, जैसी प्रान्तीय कार्य के सम्बन्ध में गवर्नरों के लिये है, (देखो, पृष्ठ १२२-३)। वहां जो प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल, हाईकोर्ट और गवर्नर शब्द प्रयुक्त हुए हैं, यहां उनकी जगह संघीय व्यवस्थापक मंडल, संघ न्यायालय और गवर्नर--जनरल समझना चाहिये। प्रान्त में गवर्नर की घोषणा, गवर्नर-जनरल की सहमति बिना न कीजाने की बात है, संघ शासन में घोषणा करने वाला स्वयं गवर्नर-जनरल ही होता है। इसके अतिरिक्त, संघ शासन के सम्बन्ध में यह भी नियम निर्धारित है कि अगर किसी समय लगातार तीन साल तक गवर्नर-जनरल की घोषणा के अनुसार कार्य चलता रहे तो इस समय के बाद वह घोषणा अमल में आनी बन्द होजायगी और संघ का शासन, सन् १९३५ ई० के शासन विधान के अन्य नियमों के अनुसार, तथा उन संशोधनों के अनुसार किया जायगा, जिनको करना पार्लिमेंट आवश्यक समझे।

संघीय व्यवस्थापक मंडल के संगठन और कार्य पद्धति सम्बन्धी बातों की आलोचना, संघ शासन की अन्य बातों के साथ, आगे इस पुस्तक के अन्तिम परिच्छेद में की जायगी।

छटा परिच्छेद

संघ, प्रान्तों और देशी राज्यों का सम्बन्ध

संघ का प्रान्तों और देशी राज्यों से शासन विषयक सम्बन्ध—विधान में कहा गया है कि प्रत्येक प्रान्त तथा संघान्तरित राज्य को ऐसी व्यवस्था करनी होगी, कि संघ के शासन कार्य में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो, वे संघ के उन सब क़ानूनों का सम्यग् पालन करें, जिनका उनसे सम्बन्ध हो । इस दृष्टि से संघ, आवश्यकता होने पर उन्हें यथोचित हिदायतें करेगा। गवर्नर-जनरल किसी गवर्नर को सेना, विदेश नीति, ईसाई धर्म, तथा जंगली जातियों के सम्बन्ध में निर्धारित कार्य करने की हिदायत कर सकता है। गवर्नर इन कार्यों को अपनी मर्ज़ी से करेगा। गवर्नर-जनरल या संघ किसी प्रान्त की सरकार या संघान्तरित राज्य के नरेश की सहमति से उस सरकार या नरेश को या उनके कर्मचारियों को ऐसा कार्य सौंप सकता है, जिसका संघ के शासनाधिकार से सम्बन्ध हो, (उदाहरणवत् छावनियां, सेना का आना जाना और रसद आदि)। ऐसी दशा में उक्त प्रान्त या राज्य का जो अतिरिक्त व्यय होगा, वह संघ देगा।

संघ द्वारा प्रान्तीय सरकारों तथा संघान्तरित राज्यों को ध्वनि-विस्तार ('ब्राड कास्टिंग') सम्बन्धी सुविधाएं दी जाने के लिये, विधान में व्यवस्था की गयी है। इसी प्रकार इस विषय के भी मुख्य नियम निर्धारित हैं कि यदि प्रान्तों तथा संघान्तरित राज्यों

में नदी या बड़े तालाब आदि के पानी के सम्बन्ध में कोई विवाद हो तो संघ सरकार उसका निपटारा करे।

अगर ऐसा प्रश्न उपस्थित हो कि संघ का किसी राज्य में किसी विषय के प्रबन्ध सम्बन्धी कुछ अधिकार है या नहीं, अथवा कितना अधिकार है, तो यह प्रश्न संघ या नरेश की प्रेरणा से, संघीय न्यायालय में निर्णय के लिये उपस्थित किया जा सकता है।

अन्तर्प्रान्तीय सहयोग--गवर्नर-जनरल के दर्ख़ास्त देने पर, यदि सम्राट् उचित समझे तो वह अन्तर्प्रान्तीय कौंसिल की स्थापना कर सकता है। इस कौंसिल का कार्य यह होगा:—(क) भिन्न भिन्न प्रान्तों के पारस्परिक विरोध सम्बन्धी बातों की जांच करना तथा उनके सम्बन्ध में परामर्श देना, और (ख) उन विषयों की जांच तथा उन पर विचार करना जो सब या कुछ प्रान्तों के, अथवा संघ और एक या अधिक प्रान्तों के, समान हित के हों। ऐसी कौंसिल में देशी राज्यों के प्रतिनिधियों के भाग लेने का भी नियम बनाया जा सकता है।

संघ और प्रान्तीय सरकारों की आय--संघ सरकार की आय के मुख्य साधन निम्न लिखित हैं:— आयात निर्यात कर अफ़ीम, पेट्रोलियम, तमाखू और अन्य देशी माल पर कर, नमक, आय कर, डाक, तार, बेतार का तार, ध्वनि विस्तार, कारपोरेशन कर।* इन्हें संघ सरकार लगाएगी और वसूल करेगी। आय-कर

---

* कारपोरेशन कर किसी संघान्तरित राज्य में उस समय तक नहीं लगाया जायगा, जब तक कि संघ को स्थापित हुए दस वर्ष न होजांय। इस कर को लगाने वाले संघीय क़ानून में इस बात की व्यवस्था होगी कि संघान्तरित राज्य के नरेश इस कर के उपलक्ष्य में संघ को, संघीय आडीटर जनरल द्वारा निर्धारित रकम दें। यदि कोई नरेश आडीटर जनरल के निश्चय से असन्तुष्ट हो तो वह संघीय न्यायालय में अपील कर सकेगा।

का निर्धारित प्रतिशत भाग प्रान्तों तथा संघान्तरित राज्यों में वितरण किया जायगा।

कुछ कर या शुल्क ऐसे हैं जिनकी आय संघ सरकार की आय न होने पर भी उन्हें लगाने और वसूल करने का कार्य वह ही करेगी। संघ सरकार इस आय को (चीफ़ कमिश्नरों वाले प्रान्तों से मिलने वाले भाग को छोड़ कर, शेष) गवर्नरों के प्रांतों तथा संघान्तरित राज्यों में संघीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून के अनुसार, वितरण कर देगी। यह व्यवस्था इस लिये की गयी है कि संघ सरकार के द्वारा यह कार्य किये जाने में सुविधा, समानता तथा मितव्ययिता होगी। उपयुक्त कर या शुल्क निम्न लिखित हैं:- कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर उत्तराधिकार कर, ग़ैर-अदालती (हुंडी, चेक, प्रामिसरी नोट और बीमा पालिसी; आदि पर लगाने वाला) स्टाम्प शुल्क, रेल या वायुयान से जाने वाले यात्रियों तथा सामान पर अन्तिम स्थान कर (टरमिनल टेक्स), रेल के किराये भाड़े पर कर।

प्रान्तीय सरकारों की अन्य आय के मुख्य साधन निम्न लिखित हैं:—अदालतों की फ़ीस, जंगल, आबपाशी, मादक पदार्थ कर (आबकारी), मछलियों का व्यवसाय, भूमि कर, मालगुज़ारी, कृषि-भूमि पर उत्तराधिकार कर, विलासिता (जिसमें जुआ सट्टा आदि भी सम्मिलित हैं) का कर, नदियों या नहरों के रास्ते जाने वाले यात्रियों तथा सामान पर कर। इन करों को प्रान्तीय सरकारें लगाएंगी और वसूल करेंगी।

संघ की विशेष आय---संघ की आय के साधन पहिले बताये जा चुके हैं। यदि उनसे संघ सरकार को काफ़ी आय न हो तो विधान में यह व्यवस्था की गयी है कि संघीय व्यवस्थापक

मंडल, उन मदों पर, जिनकी आय प्रान्तों में वितरण की जाती है अतिरिक्त कर लगा कर उनकी आय बढ़ाले । इन अतिरिक्त करों से जो आय होगी, वह संघ की आय होगी। जब संघीय व्यवस्थापक मंडल अतिरिक्त कर लगाएगा, तो जिन संघान्तरित राज्यों में आय कर न लगे, वे संघ को इतनी रक़म देंगे, जितनी उसको उनमें आय-कर लगने की दशा में मिलती।

घाटे पर चलने वाले प्रान्तों की सहायता—इस बात के लिये व्यवस्था कीगयी है कि घाटे पर चलने वाले प्रान्तों को संघ सरकार सहायता देकर उनकी स्थिति दृढ़ करे। आवश्यकता होने पर, संघीय व्यवस्थापक मंडल के क़ानून के अनुसार नमक कर, तमाखू आदि देशी माल पर कर, तथा निर्यात कर से होने वाली आय का कुछ भाग प्रान्तों तथा संघान्तरित राज्यों को दिया जासकेगा।

ज्यूट, या ज्यूट के समान के निर्यात कर से होने वाली आय का आधा, या सम्राट् द्वारा निर्धारित आधे से अधिक, भाग बंगाल आदि प्रान्तों तथा संघान्तरित राज्यों को उनके उत्पादन के अनुपात से दिया जायगा। इसके अतिरिक्त, संघ की आय में से, सपरिषद् सम्राट् द्वारा निर्धारित रक़में प्रान्तों की सहायतार्थ दी जांयगी; ये रक़में भिन्न भिन्न प्रान्तों में उनकी आवश्यकतानुसार पृथक् पृथक् होंगी, परन्तु पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त को छोड़कर अन्य किसी प्रान्त को दी जाने वाली निर्धारित रक़म साधारणतया बढ़ायी न जायगी।

संघ, प्रान्तों और देशी राज्यों का ऋण— स-परिषद भारत मन्त्री अब भारतवर्ष की आय की ज़मानत पर ऋण न ले सकेगा। संघ को एवं प्रान्तों को अपनी अपनी आय की

जमानत पर ऋण लेने का अधिकार होगा। ऋण उस सीमा तक लिया जायगा जो क्रमशः संघीय या प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल क़ानून द्वारा निश्चित करें। कोई प्रान्त, संघ की स्वीकृति बिना, भारतवर्ष के बाहर से कोई ऋण नहीं ले सकेगा।*

संघ प्रान्तों को, एवं संघान्तरित राज्यों को ऋण दे सकता है, और जामिन होकर दूसरों से भी दिला सकता है, यह ऋण देना या दिलाना उस सीमा तक होगा, जो संघीय व्यवस्थापक मण्डल निश्चय करे।

सरकार के वर्तमान ऋण सम्बन्धी व्यवस्था—सपरिषद भारत मंत्री का जो ऋण या अर्थिक दायित्व भारतवर्ष के सम्बन्ध में है, वह संघ और प्रांतों के नाम हो जायगा। उसके, इंगलैंड में दिये जाने वाले मूल धन या सूद के सम्बन्ध में संघीय या प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल को किसी कर की रक़म काटने का अधिकार न होगा।

[भारतवर्ष के सरकारी ऋण के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है, (देखो, पृष्ठ १४४)। कांग्रेस द्वारा नियुक्त कमेटी ने प्रमाण तथा आंकड़े देकर बताया है कि इस का दो तिहाई भाग ब्रिटिश साम्राज्य के हित के लिये ख़र्च किया गया है; उससे भारतवर्ष का कुछ लाभ नहीं हुआ। ब्रिटिश सरकार चाहे तो इस विषय में निस्पक्ष जांच की अन्य व्यवस्था करे। तदुपरान्त यह निश्चय किया जाय कि ऋण का कितना कितना भार इंगलैंड और भारतवर्ष पर रहना चाहिये। पुनः इस समय इंगलैंड से ली हुई रक़म पर जो सूद भारतवर्ष को देना होता है, उस पर

* हमें ऋण लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिये, जहां से कम सूद तथा अच्छी शर्तों पर मिल सके, लें। इंगलैंड आदि किसी स्थान विशेष से ही ऋण लेने में यह बात नहीं होती।

कोई कर नहीं लगता, इससे भारत सरकार को प्रति वर्ष लगभग एक करोड़ रुपये की हानि होती है। जिन ब्रिटिश नागरिकों को भारतवर्ष से सूद आदि की आमदनी होती है, उन पर हमें आय-कर लगाने का अधिकार होना चाहिये।]

भारत मंत्री को आवश्यक धन देने की व्यवस्था— संघ और प्रत्येक प्रान्त इस बात की व्यवस्था करेगा कि भारत-मंत्री और हाई कमिश्नर के पास समय समय पर इतना रुपया रहे कि वह ऐसा खर्च कर सकें जो उन्हे संघ या प्रान्त के सम्बन्ध में करना हो, तथा वह पेन्शन दे सकें जो ब्रिटिश संयुक्त राज्य में, या भारत-मंत्री अथवा हाई कमिश्नर द्वारा, दी जाने वाली हो।

संघ, देशी राज्यों, और प्रान्तों की, कुछ करों से मुक्ति— संघ की सम्पत्ति प्रान्त या सघान्तरित राज्य के लगाए हुए करों से मुक्त रहेगी, सिवाय उस दशा के जब कि संघीय क़ानून में ही ऐसी व्यवस्था हो। कुछ अपवादों को छोड़कर, किसी प्रान्तीय सरकार पर, या संघान्तरित राज्य के नरेश पर, ब्रिटिश भारत की भूमि या इमारतों, या ब्रिटिश भारत में होने वाली आय के सम्बन्ध में कोई संघीय कर न लगाया जायगा।

हिसाब की जांच----संघ और प्रान्तों के हिसाब की जांच 'संघीय आडीटर जनरल' करेगा। उसकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होगी, और वह अपने पद से संघीय न्यायालय के जज की तरह ही हटाया जायगा। उसकी, तथा उसके विभाग के सदस्यों की, वेतन, भत्ता और पेन्शन संघ की आय से दी जायगी। यदि किसी प्रान्त का व्यवस्थापक मण्डल, प्रान्तीय शासन सम्बन्धी परिवर्तनों के अमल में आने (सन् १९३७ ई०) के दो वर्ष बाद,

अपने प्रान्त के आडिटर-जनरल का वेतन उक्त प्रान्त की आय से देने का क़ानून पास करदे तो सम्राट् उस प्रान्त के हिसाब की जांच के लिये आडिटर-जनरल की नियुक्ति कर देगा। यह नियुक्ति उक्त क़ानून के बनने के तीन वर्ष से पहिले न होगी।

संघ का हिसाब संघीय आडिटर जनरल द्वारा निर्धारित, और गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृत रीति से रखा जायगा। और, प्रांतों का हिसाब संघीय आडिटर जनरल की हिदायतों के अनुसार तथा गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृति रीति और सिद्धान्त से रखा जायगा। (संघान्तरित देशी राज्यों के हिसाब के लिये कोई व्यवस्थ निर्धारित नहीं है)।

इंगलैंड में होने वाले आय व्यय के हिसाब की जांच--ब्रिटिश संयुक्त राज्य में होने वाले भारतीय आय व्यय के हिसाब की जांच करने वाला अधिकारी 'इंडयन होम एकाउंट्स आडिटर' कहलायेगा। इसकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल अपनी मर्ज़ी से करेगा। वह सपरिषद सम्राट् या संघीय व्यवस्थापक मंडल के आदेशानुसार संघ, संघीय रेलवे अधिकारियों, तथा प्रान्तों के उस आय व्यय की जांच करेगा, जो ब्रिटिश संयुक्त राज्य में हो। यह अधिकारी संघीय आडीटर-जनरल के निरीक्षण में रहेगा। इस की, तथा इसके विभाग की वेतन, भत्ता और पेन्शन संघ की आय से दी जायगी।

ब्रिटिश सरकार के, देशी राज्यों सम्बन्धी कार्यों के हिसाब की जांच संघीय आडिटर-जनरल करेगा, और जहां तक उस हिसाब का सम्बन्ध ब्रिटिश संयुक्त राज्य से है, उसकी [illegible] उक्त अधिकारी की ओर से 'इंडयन होम एकाउंट्स आडि[illegible] करेगा। उक्त अधिकारी सब हिसाब की वार्षिक रिपोर्ट भारत-मंत्री को देगा।

संघ और देशी राज्य; राजस्व सम्बन्ध—ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों में राजस्व सम्बन्धी कई समस्याएं हैं। उदाहरण-वत् एक मुख्य विषय सेना है। अभी तक भारत सरकार ही इस सम्बन्ध में सब व्यय करती रही। हैदराबाद आदि कुछ राज्यों ने अपने हिस्से के सैनिक व्यय से मुक्त होने के लिये ब्रिटिश सरकार को कुछ ज़मीन दे दी, वे इस ज़मीन का साधारण कर लेते रहे। कुछ राज्य अपने यहां कुछ सेना रखते अवश्य हैं, पर अधिकांश राज्यों की सेना प्रदर्शन मात्र के लिये होती है, वह देश-रक्षा के कार्य में सहायक नहीं हो सकती। अतः इसके आधार पर, वे संघान्तरित होजाने पर अपने हिस्से के सैनिक व्यय से मुक्त नहीं रह सकते। कुछ राज्य केन्द्रीय सरकार को प्रति वर्ष ख़िराज ('ट्रीब्यूट') के रूप में निर्धारित रक़म देते हैं। यह रक़म प्रायः प्रान्तीय सरकारें वसूल करती हैं। (कुछ छोटे छोटे राज्य अपने पास के बड़े राज्यों को उक्त प्रकार की रक़में देते हैं।) संघ शासन में ऐसी देनगी बन्द हो जांयगी। अस्तु, विचारणीय प्रश्न यह है कि राज्यों पर सैनिक व्यय का कितना भार रहे, और जिन राज्यों की कुछ भूमि संघ सरकार के अधीन रहे उसके उपलक्ष्य में वे उक्त भार के कितने हिस्से से मुक्त रहें।

दूसरा प्रश्न आयात निर्यात कर सम्बन्धी है। देशी राज्यों में ब्रिटिश भारत से जो माल आता है, तथा उनका जो अन्न आदि ब्रिटिश भारत में जाता है, उस पर देशी राज्य कर लेते हैं। कुछ देशी राज्य बन्दरगाहों पर अधिकार रखने के कारण आयात निर्यात कर वसूल करते हैं, यद्यपि भारत सरकार भी वह कर लेती है। देशी राज्यों के, संघ में सम्मिलित होने की दशा में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब देशी राज्यों को उक्त कर लेने से वंचित होना पड़े तो इसके उपलक्ष्य में उन्हें संघ की आय में से

कितनी रक़म मिले। इसी प्रकार नमक कर आदि की अन्य समस्याएं भी हैं।

समस्याओं का हल—विविध राज्यों की इन समस्याओं का स्वरूप और परिमाण उनकी परिस्थिति के अनुसार भिन्न भिन्न है। प्रत्येक राज्य संघ में सम्मिलित होते समय जो शर्तनामा उपस्थित करेगा, उसमें उस राज्य की उक्त समस्याओं के सम्बन्ध में व्यौरे-वार विचार रहेगा। विधान में कुछ मोटी मोटी व्यापक बातें दी गयी हैं। संघ सम्राट् को संघान्तरित राज्यों सम्बन्धी कार्य सम्पादन के लिये आवश्यक रक़म दिया करेगा। सम्राट् चाहे तो निर्धारित नियमों के अनुसार किसी राज्य से मिलने वाली कुछ रक़म या उसका कोई भाग बीस साल तक माफ़ कर सकता है। संघ या प्रान्तों की आय से कोई ख़र्च ऐसा न किया जायगा, जो भारतवर्ष या इसके किसी भाग के लिये न हो; परन्तु संघ या प्रान्त ऐसे कार्य के लिये सहायता दे सकते हैं। गवर्नर-जनरल तथा गवर्नर संघ या प्रान्त की आय की रक़म सुरक्षित रखे जाने और उसके ख़र्च किये जाने की पद्धति के विषय में नियम, अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार, बना सकते हैं।

विशेष वक्तव्य--संघ सरकार द्वारा अतिरिक्त कर लगाने का उल्लेख इस परिच्छेद में पहले किया जा चुका है, पर इस दशा में भी, विधान में यह व्यवस्था नहीं है कि संघ सरकार इस बात की पूर्ण रूप से जांच पड़ताल करे कि संघ का प्रत्येक भाग (ब्रिटिश भारत का प्रान्त, या संघान्तरित राज्य) अपने निवासियों के हित का सम्यग् लक्ष्य रखते हुए ख़र्च कर रहा है। इस [illegible] अधिकांश राज्यों के नरेश अपने व्यक्तिगत या पारिवारिक [illegible] के लिये मनचाही रक़में ख़र्च कर डालते हैं; उसकी कोई [illegible]

नहीं है। बड़ी आवश्यकता है कि जब तक राज्यों में उत्तरदायी शासन स्थापित न हो, संघ सरकार उन पर इस सम्बन्ध में नियन्त्रण रखे, जिससे जनता का यथेष्ट हित साधन हो।

सातवां परिच्छेद

संघ विधान और भारतवर्ष

नवीन विधान सम्बन्धी अन्य विविध बातों की आलोचना प्रसंगानुसार पहले की जा चुकी है। इस परिच्छेद में इस बात का विचार किया जायगा कि भारतवर्ष में संघ निर्म्माण का क्या उद्देश्य होना चाहिये, और वर्तमान विधान में क्या त्रुटियां हैं, जिन्हें दूर किया जाना आवश्यक है।

संघ निर्म्माण का उद्येश्य--भारतवर्ष में संघ निर्म्माण का उद्देश्य यह होना चाहिये कि यहां विविध भागों में भाषा, रहन सहन आदि की भिन्नता होते हुए भी यह राष्ट्र इस प्रकार शासित हो कि इसके सब अंग सम्मिलित रूप से सोचना विचारना और व्यवहार करना सीखें:—संघ की सब महत्व-पूर्ण [illegible] में समान नीति हो; व्यापार वाणिज्य, राजस्व और वित[illegible]ता में एक निर्दिष्ट सीमा तक समानता रहे। संघ को प्रश्न उ[illegible]ना करने तथा विदेशों से राजनैतिक और आर्थिक सम्बन्ध वंचि[illegible]त करने की स्वतन्त्रता हो; उसे अपना आदर्श प्राप्त करने

में, संसार में अपना आर्थिक और राजनैतिक पद प्राप्त करने में, सुविधा हो।

भारतीय संघ—जैसा पहले कहा जा चुका है, भारतीय संघ के दो मुख्य भाग ब्रिटिश भारत और देशी राज्य होंगे। इन दोनों की शासन पद्धति में महत्व-पूर्ण अन्तर है। ब्रिटिश भारत में लोक सत्तात्मक शासन पद्धति और संस्थाएं कुछ अपूर्ण रूप में ही सही, विद्यमान हैं। इसके विपरीत देशी राज्यों में राज-सत्तात्मक शासन पद्धति है, प्रजा प्रतिनिधियों का उसमें प्राय: भाग ही नहीं है। ऐसे दो भागों का संघ बड़ा विचित्र ही होगा। विधान में, इनके अन्तर को घटाने के लिये यह व्यवस्था भी नहीं की गयी है कि देशी राज्यों में क्रमश: उत्तरदायी शासन पद्धति प्रचलित की जाय। इसके विपरीत उनका सम्राट् से पृथक् और सीधा सम्बन्ध रहने की व्यवस्था करके उन्हें ब्रिटिश भारत से और भी दूर करने की योजना की गयी है, (देखो पृष्ठ २०६-१०)।

संघ विधान—भारतवर्ष का नवीन विधान इस देश को न केवल विदेश नीति और व्यापार के सम्बन्ध में, वरन् अपनी रक्षा और आन्तरिक प्रबन्ध में भी परतंत्र बनाये हुए है। प्रांतीय शासन के सम्बन्ध में, पहले कहा जा चुका है। केन्द्रीय कार्यों के सञ्चालन के लिये प्राय: समस्त शक्तियां और अधिकार गवर्नर-जनरल को सौंप दिये गये हैं। उसके भारतीय मंत्री तभी इस अपने पद पर रहेंगे, जब तक कि वे उसकी इच्छानुसार भाग करेंगे, फिर उसके सलाहकारों की तो बात ही क्या, वे तो [illegible] उसके अधीन ही हैं। इस प्रकार, संघ सरकार का कार्[illegible]व्यवस्था कुछ गवर्नर-जनरल की मर्ज़ी, विवेक या व्यक्तिगत नि[illegible]ारत-अवलम्बित होगा, और जब वह अपने विशेषाधिकारों से

लेगा—जैसा कि वह विधान के अनुसार कर सकता है—तो भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति कैसी होगी इस बात का सहज ही अनुमान किया जा सकता है

संघीय व्यवस्थापक मण्डल——संघीय व्यवस्थापक मंडल में व्यवस्थापक सभा के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष रखा गया है, और साथ में दूसरी सभा (राज्य परिषद्) की व्यवस्था करदी गयी है। यह अत्यन्त हानिकर है। फिर, मंडल के अधिकार भी अत्यल्प हैं। संघ सरकार बहुत ही कम विषयों में उसके प्रति उत्तरदायी होगी। जिस प्रकार सन् १९३५ ई० के विधान के अमल में आने से पूर्व भारत सरकार ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी थी, उसी प्रकार भावी संघ सरकार भी उसी की इच्छानुसार शासन कार्य सम्पादन करेगी। भारत और इङ्गलैंड के हितों के संघर्ष के अवसर पर उसका भारतीय हितों की अवहेलना और इङ्गलैंड के हितों की रक्षा करना स्वाभाविक है।

देशी राज्यों के प्रतिनिधि—संघीय व्यवस्थापक मंडल में देशी राज्यों के प्रतिनिधियों का, बहुत बड़ा भाग है। पहले बताया जाचुका है, ये प्रतिनिधि केवल ७,८९,८१,९१२ जन-संख्या वाले राज्यों के हैं, जब कि उनकी कुल जन संख्या ८,१३,१०,८४५ है। इस प्रकार २३ लाख से अधिक जन संख्या वाले राज्यों की शास्ि से कोई प्रतिनिधि नहीं है। फिर, जिनके प्रतिनिधियों की व्यवस्था है, वह भो कैसी है? जनता के निर्वाचित सदस्य संघीय व्यवस्थापक मंडल में भाग नहीं ले सकेंगे। वरन् नरेश और उनके वेतन[illegible]द व्यक्ति ही राज्यों के प्रतिनिधि माने जांयगे। इनसे राज्यों प्रश्न जनता की हानि ही होगी। कारण, नरेशों को विशाल भारतवर्ष वंचि शासन में भाग लेने का अवसर मिलेगा, और उनका महत्व

बहुत बढ़ जायगा; ब्रिटिश साम्राज्य तथा राष्ट्र-संघ में भी उन्हें इस समय की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा; फलस्वरूप, प्रजा को उनकी निरंकुशता के विरुद्ध आन्दोलन करने में और भी अधिक कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ेगा।

देशी राज्यों से इस समय ब्रिटिश भारत को आयात कर आदि के रूप में काफ़ी आय होती है, संघ-स्थापना के बाद वह आय संघ सरकार को होगी। अतः इन राज्यों की प्रजा को संघ द्वारा उसका ख़र्च किये जाने में, अपना मत देने का प्रत्यक्ष अधिकार होना चाहिये।

ब्रिटिश भारत को चिन्ता--संघीय व्यवस्थापक मंडल में नरेशों या उनके द्वारा नामज़द व्यक्तियों का सदस्य होना ब्रिटिश भारत की जनता के लिये और भी चिन्तनीय है। बर्तमान अवस्था में मध्य श्रेणी के तथा राष्ट्रीय विचारों वाले सदस्य कभी कभी अपना बहु-मत बना सकते हैं, और किसी न किसी सीमा तक प्रजा के भावों को व्यक्त कर सकते हैं। संघ शासन में, जनता का भाग्य-निर्णय करने में पूँजीवादियों, जमीं-दारों, अंगरेज़ व्यापारियों और ऐंग्लो--इंडियनों का ही हाथ नहीं होगा, वरन् देशी राज्यों के विशुद्ध सत्तावादियों के गुट्ट का भी हाथ होगा। राज्य परिषद के २५० सदस्यों में से १०० अर्थात् चालीस फी सदी और सङ्घीय व्यवस्थापक सभा (ऐसेम्बली) के ३७५ सदस्यों में से १२५ अर्थात् एक-तिहाई सदस्य राजाओं की ओर से होंगे। ये प्रजा प्रतिनिधित्व और प्रतिनिधि-मूलक भी संस्थाओं के प्रायः विरोधी होंगे और अपने से विचार वाले अन्य सदस्यों को अपनी ओर मिलाकर, अपने बहुमत से ब्रिटिश भारत के राष्ट्रीय और प्रजा सत्तात्मक शासन के प्रेमी सदस्यों को सहज

हो हरा सकेंगे। इस प्रकार, भारतीय राजनीति के अधिक अग्रसर होने के स्थान में उसके और प्रतिगामी होने की आशंका है।

यह भी विचारणीय है कि सङ्घीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकांश विषय ब्रिटिश भारत सम्बन्धी हैं, और उनके निर्णय में देशी राज्यों के 'प्रतिनिधियों' का भारी हाथ रहेगा—और वे प्रायः ब्रिटिश सरकार के संकेतानुसार चलने वाले होंगे। इसके साथ ही संघ शासन विधान में इस बात को बड़ी सतर्कता-पूर्ण व्यवस्था की गयी है कि देशी राज्यों सम्बन्धी विषयों के निर्णय में ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों को भाग लेने का कोई अधिकार न हो। अतः ब्रिटिश भारत के निवासियों को चिन्ता है कि संघ शासन का जो स्वरूप रखा गया है, उससे वे देशी राज्य निवासी बन्धुओं की दशा सुधारने में सफल न होंगे, उलटा, नरेशों का सम्बन्ध ब्रिटिश भारत की राजनैतिक उन्नति और प्रगति के मार्ग में कांटे डालने वाला सिद्ध होगा।

सुधार की आवश्यकता- —उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रस्तावित संघ शासन, बहुत दोष-पूर्ण है। इसके प्रति भारतीय जनता की उदासीनता, तथा निरुत्साह होना स्वाभाविक है। परन्तु इसका यह आशय नहीं कि संघ शासन पद्धति भारतवर्ष के लिये उपयोगी नहीं। बात यह है कि संघ शासन वास्तव में संघ शासन होना चाहिये। उसकी वर्तमान योजना में निम्नलिखित सुधार होने अत्यन्त आवश्यक हैं:—

(१) भारतीय संघ अपने आन्तरिक तथा वाह्य राजनैतिक सम्बन्धों में स्वतंत्र होना चाहिये वह किसी अन्य राज्य के अधीन नहीं होना चाहिये; उसे अपनी राष्ट्र नीति, सैन्य नीति तथा व्यापार और विदेश नीति निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार होना

चाहिये। (२) संघीय विषयों में उन सब केन्द्रीय विषयों का समावेश होना चाहिये, जो देश-हित की दृष्टि से आवश्यक हों, चाहे उनका इस समय देशी राज्यों से ही सम्बन्ध क्यों न हो। (३) संघीय व्यवस्थापक सभा का चुनाव प्रत्यक्ष होना चाहिये, और मंडल की दोनों सभाओं में राज्यों की ओर से भाग लेने वाले सदस्य उनकी प्रजा के द्वारा निर्वाचित व्यक्ति होने चाहिये, न कि नरेश या नामज़द किये हुए व्यक्ति। (४) विधान में नागरिकों के मूल अधिकारों की सुरक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। (५) नई सरकार का कार्य सफलता-पूर्वक चलाने के लिये आर्थिक अनुकूलता होनी चाहिये। इसके वास्ते प्रथम तो संघ को सार्वजनिक ऋण के भार से मुक्त किया जाना चाहिये; उसका दो-तिहाई भाग साम्राज्य-हित के लिये ही ख़र्च किया गया है (देखो, पृष्ट २५४), और एक-तिहाई का मुक्त करना इंगलैंड के लिये कोई बड़ी बात नहीं है; आयर्लैंड के साथ वह ऐसा कर चुका है। आर्थिक सफलता के लिये शासन कार्य का व्यय भी कम होना चाहिये, प्रजा के कर-भार को कम करने, अथवा प्राप्त करों के राष्ट्रोत्थान सम्बन्धी कार्यों में लगाने की आवश्यकता है। (६) देशी राज्यों से प्रजातंत्र-मूलक शासन स्थापित करने का अनुरोध किया जाना चाहिये और जब तक वैसा शासन स्थापित न हो, उन पर संघ सरकार सार्वभौम सत्ता के अधिकारों का उपयोग करे। (७) संघ को अपने शासन विधान में परिवर्तन, संशोधन आदि करने का पूर्ण अधिकार रहना चाहिये।

शासन विधान के रचना सम्बन्धी आदर्श की बात हम पहले कह चुके हैं, (देखो, पृष्ट २००)। वह इस प्रसङ्ग में भी विचारणीय है। इन सुधारों के बाद संघ शासन भारतवर्ष के लिये यथेष्ट कल्याणप्रद होगा। शुभम्।

सरकारी स्कूलों तथा राष्ट्रीय विद्यालयों में प्रचलित
पाठ्य पुस्तकों, पारितोषिक और पुस्तकालयों के लिए
— विशेष उपयोगी —

भारतीय ग्रन्थमाला

१—भारतीय शासन (सातवां संस्करण) ... ... १)
२—भारतीय विद्यार्थी विनोद (तीसरा संस्करण) ... ।।=)
३—भारतीय राष्ट्र निर्म्माण (दूसरा संस्करण) ... ।।।=)
४—हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य ... ।।।)
५—सरल भारतीय शासन ... ... ।।)
६—भारतीय जागृति Indian Awakening
(दूसरा संस्करण) ... १।)
७—विश्ववेदना ... ... ।।।=)
८—भारतीय चिन्तन ... ... ।।।=)
९—भारतीय राजस्व Indian Finance ... ... ।।।=)
१०—निर्वाचन नियम Election Guide ... ... ।।—)
११—बालब्रह्मचारिणी कुन्ती देवी ... ... १।।)
१२—राजनीति शब्दावली Political Terms ... ।—)
१३—नागरिक शिक्षा Elementary Civics
(दूसरा संस्करण) ... ।।=)
१४—ब्रिटिश साम्राज्य शासन ... ... ।।।=)
१५—श्रद्धाञ्जलि ... ... ।।।=)
१६—भारतीय नागरिक Indian Citizens ... ।।)
१७—भव्य विभूतियां ... ... ।।=)
१८—अर्थशास्त्र शब्दावली Economic Terms ... [illegible]
१९—कौटिल्य के आर्थिक विचार ... ... [illegible]
× भारतीय सहकारिता आन्दोलन ... ...
× नागरिक शास्त्र Citizenship ... ... १।)

भगवानदास केला, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन ।